तीर्थंकर महावीर

(महाकाव्य)

डॉ. छैलबिहारी गुप्त

श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर
१९७६

मंत्री, बाबूलाल पाटोदी,
श्री वीर निर्वाण-ग्रन्थ-प्रकाशन-समिति,
४८, सीतलामाता बाजार,
इन्दौर ४५२००२, मध्यप्रदेश

© वी. नि. ग्रं. प्र. स.

☐ तीर्थंकर महावीर
महाकाव्य
छैलबिहारी गुप्त

☐ प्रकाशक
श्री वीर निर्वाण-ग्रन्थ प्रकाशन समिति,
४८ सीतलामाता बाजार,
इन्दौर ४५२००२, मध्यप्रदेश

☐ मध्यप्रदेश शासन के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित

☐ मुद्रक
नईदुनिया प्रेस,
इन्दौर–४५२००२

☐ प्रथम आवृत्ति
वी. नि. संवत् २५०२
मार्च १९७६

☐ [illegible] रुपये
५०

समर्पण

रह कर इतनी दूर भी
दिया ज्ञान आनन्द
तुम्हें समर्पित काव्य यह
मुनि श्री विद्यानन्द

—छैलबिहारी गुप्त

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

प्रकाशकीय

डॉ. छैलबिहारी गुप्त के महाकाव्य "तीर्थंकर महावीर" को प्रकाशित करते हुए श्री वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति को अत्यन्त गौरव का अनुभव हुआ है। इसके पूर्व समिति ने भगवान् महावीर के पच्चीस सौवें निर्वाण-महोत्सव-वर्ष में साहित्य की अन्यान्य विधाओं में उनके जीवनवृत्त तथा उपदेशों पर बहुमूल्य कृतियों का प्रकाशन किया है, जिनमें मुख्य हैं पूज्य उपाध्याय मुनि श्रीविद्यानन्दजी, पं. पद्मचन्द्रजी तथा श्री वीरेन्द्रकुमार जैन की कृतियां। ये तीनों ही अत्यधिक लोकप्रिय हुई हैं और इन्हें व्यापक रूप में बड़े उत्साहपूर्वक पढ़ा गया है। इसके बाद प्रस्तुत है डॉ. गुप्त का महाकाव्य "तीर्थंकर महावीर" जिसमें आठ सर्ग हैं और जो सरल-सरस भाषा में लिखा गया है। उक्त महाकाव्य काव्य की कसौटियों पर तो खरा उतरेगा ही, हमारा विश्वास है, इसे बड़े चाव से अधिकाधिक पढ़ा भी जाएगा। इसमें भगवान् महावीर के लोकहितरत जीवन को हिन्दी की प्रसादगुण-संपन्न शैली-शिल्प में रचा गया है। सम्पूर्ण ग्रंथ के वाचन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने कविकर्म-रत होने से पूर्व महावीर के जीवन पर उपलब्ध प्रायः सभी पूर्व एवं परवर्ती संदर्भों का गहरा अध्ययन किया है और इतिहासिक तथ्यों का ध्यान रखकर ही अपनी कल्पना में उन्हें गूंथा है। देखा गया है, काव्य और इतिहास प्रायः समानान्तर नहीं चल पाते; इतिहास की नीरसता और अविकल तथ्यनिष्ठा काव्य की रसवन्ती धारा को उसकी यात्रा में रुद्ध करती है; किन्तु कवि ने, जो निश्चय ही जैन संस्कारों में पला हुआ नहीं है, काव्य और इतिहास को एकीकृत और परस्पर उपकारक रखने में आशातीत सफलता प्राप्त की है। महाकाव्य में कहीं कोई ऐसा प्रसंग नहीं है जो इतिहास या परम्परा से असंगत हो। इस माने में डॉ. गुप्त की काव्य-यात्रा एक अद्वितीय उपलब्धि है। कहा जाएगा कि प्रस्तुत काव्य में सहज ही तथ्य,सत्य और कल्पना की एक ऐसी त्रिमिति प्रस्तुत हुई है जो समाज और व्यक्ति दोनों को ही कृतकृत्य करती है।

कवि की लेखन-शैली उनके निश्छल और शब्दाडम्बर-रहित व्यक्तित्व के अनुरूप ही है। अपनी निष्कपट-वीतराग पदावली में भगवान् महावीर को आहूत करते हुए लेखक ने पूरी सावधानी से काम लिया है, यह सावधानी इतनी सम्पूर्ण है कि इसने स्वयमेव सहजता का रूप ले लिया है। इसीलिए महा-काव्य के कई प्रसंग इतने मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं कि सामान्य पाठक भी उन पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह पाता।

कहा जाता रहा है कि भगवान् महावीर के या किसी भी तीर्थंकर के जीवन-वृत्त पर महाकाव्य लिखना लगभग असंभव है। जहाँ मात्र शान्तरस ही है अन्य किसी भावगतिक स्थिति की कोई संभावना नहीं है, वहाँ काव्य के लालित्य और उसकी सुषुमा का निर्वाह भला कैसे संभव हो सकता है? वैविध्य

की अनुपस्थिति में भगवान् महावीर के जीवन में साहित्य की कोई स्पष्ट संभावनाएं अब तक नहीं दिखायी दी थीं या रचनाकारों ने उनका ठीक से आविष्करण नहीं किया था; किन्तु श्री वीरेन्द्रकुमार जैन, श्रीमती कुन्था जैन और डॉ. छैलबिहारी गुप्त ने उक्त चुनौतियों को पूरी तरह अविकल झेला है और क्रमशः उपन्यास, नाटक और काव्य-विधाओं में महावीर के जीवन को उसकी संपूर्ण गरिमा और पवित्रता के साथ प्रस्तुत कर लगाये गये आरोपों को असिद्ध कर दिया है। श्री वीरेन्द्रकुमार जैन का उपन्यास "अनुत्तर योगी : तीर्थंकर महावीर", श्रीमती कुन्था जैन की तीन विभिन्न नाट्य शिल्प-शैलियों में रचित अप्रतिम कृति "वर्धमान रूपायन" (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन) तथा डॉ. गुप्त के प्रस्तुत महाकाव्य "तीर्थंकर महावीर" ने संभावनाओं के कई द्वार खोल दिये हैं। उक्त तीनों को भगवान् महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण-शती की महोपलब्धि कहा जाएगा। ये कालजयी हैं, शेष जो भी लोकप्रिय-तल पर हुआ है, आवश्यक तो था किन्तु मनुष्य के विस्मरण में उसकी कोई स्थिति नहीं है वह डूब जाएगा अतल कहीं किन्तु इन तीन नौकाओं पर अखिल मानवता युगयुगों तक भवसमुद्र में नौकाविहार का आनन्द तो लेगी ही साथ ही उसे उत्तीर्ण करने का सामर्थ्य भी संपादित कर सकेगी।

प्रस्तुत कृति का प्रकाशन श्री वीर निर्वाण-ग्रन्थ-प्रकाशन-समिति, मध्यप्रदेश शासन के अनुग्रहपूर्ण वित्तीय सहयोग से संपन्न कर रही है। प्रकाशन में समिति के अध्यक्ष आदरणीय भैया श्री मिश्रीलालजी गंगवाल, उपाध्यक्ष श्री राजकुमारसिंहजी तथा अन्य बन्धु-बांधवों ने समय-समय पर जो सहयोग दिया है और हमारा बहुमूल्य मार्गदर्शन किया है, समिति उनका आभार मानती है। विद्वान् लेखक की भी हृदय से कृतज्ञ है जिसने भगवान् महावीर पर महाकाव्य रचकर मां-भारती के मंदिर में एक अखण्ड जोत प्रज्वलित की है। इसी तरह नई दुनिया प्रेस के प्रबन्धक श्री हीरालाल झांझरी की भी समिति अनुगृहीत है जिन्होंने अत्यल्प समय में इस महाकाव्य को छापने के दायित्व को बड़े कलात्मक रूप में सम्पन्न किया है। समिति के कोषाध्यक्ष भाई श्री माणक चन्द पांड्या की तत्परता का ही यह सुफल है कि महाकाव्य इतने कम समय में प्रकाश में आ सका है। समिति उनके प्रति भी कृतज्ञ है। हम विक्रम विश्व-विद्यालय, उज्जैन के संस्कृत-विभागाध्यक्ष डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन के भी आभारी हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ की भूमिका लिखकर समिति को सहज ही अनुगृहीत किया है।

हमें विश्वास है कि काव्य-जैसी सरस विधा में लिखा गया यह काव्य उन सबको कृतार्थ करेगा जो वर्तमान जीवन के संत्रास, तनाव और क्लेश के बावजूद उदात्त जीवन-मूल्यों की खोज-तलाश में अविराम यात्रायित हैं।

१ मार्च १९७६

बाबूलाल पाटोदी,
मन्त्री

निवेदन

लोकनायक या युगपुरुष की प्राप्ति हेतु युग को और समाज को सदियों तक साधना करनी होती है। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार–

'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।'

और तब नव सूर्योदय के समान ही कोई युगपुरुष क्रान्ति-दूत के रूप में जन्म लेकर अपनी समकालीन सामन्तशाही-रूढ़िवादिता-धर्मान्धता सामाजिक कुरीतियों एवं समाजद्रोही तत्त्वों से डटकर टक्कर लेता है, संघर्ष करता है; तब देश में दिग्-दिगन्त में धर्म और शान्ति का विजय-नाद अनुगुंजित हो उठता है। यही तथ्य तीर्थंकर भगवान् महावीर के साथ भी चरितार्थ हुए।

आज से ठीक ढाई हजार वर्ष पूर्व वैशाली के कुण्डग्राम में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र का उदय हुआ। एक ऐसा नक्षत्र कि युग बीत गये, शताब्दियाँ बीत गयीं, किन्तु उसका अस्त नहीं हो सका। उस नक्षत्र ने भगवान् तीर्थंकर महावीर के रूप में एक हाथ में क्रान्ति की मशाल थामी और दूसरे से सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय और ब्रह्मचर्य का शंखनाद किया।

भगवान् महावीर के युग में भौतिकतावादी एवं संशयमूलक जीवन-दर्शन के मतानुयायी चिन्तकों ने समस्त धार्मिक मान्यताओं चिर-संचित आस्थाओं एवं विश्वासों के प्रति प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया था। पूरण कस्सप, मक्खलिगोसाल, अजित केसकम्बलि, पकुद्ध कच्चायन, संजय बेलट्ठिपुत्त आदिके विचारों को पढ़ने पर यह आभास हो जाता है कि इस युग के जनमानस को संशय-त्रास-अविश्वास-अनास्था-प्रश्नाकुलता आदि वृत्तियों ने किस सीमा तक जकड़ लिया था। वे जीवन में नैतिक एवं आचारमूलक सिद्धान्तों की अवहेलना करने एवं उनका तिरस्कार करने पर बल दे रहे थे। मानवीय सौहार्द एवं कर्मवाद के स्थान पर घोर भोगवादी, अक्रियावादी एवं उच्छेदवादी प्रवृत्तियाँ पनप रही थीं।

महावीरयुगीन अहिंसा राजनयिक और वैदिक विकृतियों की उपज थी। तत्कालीन समाज के प्रभावशाली अंग क्षत्रियों और ब्राह्मणों की राज्य-

लिप्सा, कीर्ति-कामना और स्वार्थ-साधना की सुशृंखल और सुनियोजित देन वह थी—दूसरे शब्दों में तलवार और कलम का मिला-जुला कमाल वह था—जिसने शोषण के द्वार खोले, मानव-समता की अनुभूति को खण्डित किया, सामाजिक-उच्चता-निम्नता के तमगे लगाकर सामाजिक-आर्थिक विभेदों के उत्तुंग दुर्ग खड़े किये।

शांकर वेदान्त में ब्रह्म को केवल सत्य माना गया; तथा जगत् को स्वप्न एवं मायारहित गन्धर्व नगर के समान पूर्णतया मिथ्या एवं असत्य घोषित किया गया। इस दर्शन के कारण आध्यात्मिक साधकों के लिए जगत् की सत्ता ही असत्य एवं मिथ्या हो गयी। परिणाम यह हुआ कि दार्शनिकों का सारा ध्यान परब्रह्म प्राप्ति में ही लगा रहा; और इस प्रकार दर्शन के धरातल पर तो अद्वैतवाद की स्थापना होती रही; किन्तु दूसरी ओर समाज के धरातल पर ही समाज के हितैषियों ने उसे साग्रह वर्णों, जातियों-उपजातियों में बाँट दिया। एक परब्रह्म द्वारा बनाये जाने पर भी जन्मना आदमी और आदमी के बीच तरह-तरह की दीवारें खड़ी कर दी गयीं।

जात-पाँत और ऊँच-नीच की भेद-भावना के विकास में मध्ययुगीन राज-तन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था एवं धार्मिक आडम्बरों का बहुत योग रहा। इस युग में राजागण सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए 'शरीर' को अमर बना रहे थे और देव-मन्दिर 'सुरति-कियारत स्त्री-पुरुषों' के चित्रों से सज्जित हो रहे थे।

इन्हीं परिस्थितियों में भगवान् महावीर ने प्राणिमात्र के कल्याण हेतु अपने प्रयत्नों द्वारा उच्चतम विकास कर सकने का आस्थापूर्ण मार्ग प्रशस्त कर अनेकान्तवादी जीवन-दृष्टि पर आधारित स्याद्वादवादी कथन-प्रणाली द्वारा बहुधर्मों को प्रत्येक कोण, दृष्टि एवं संभावना द्वारा उसके वास्तविक रूप में जान पाने का मार्ग बदल कर सामाजिक जीवन की शान्ति के लिए अपरिग्रह एवं अहिंसा का सन्देश दिया था।

यही इतिहास-प्रसिद्ध तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर मेरे महाकाव्य के चरित-नायक बन गये। यों तो किसी भी युगपुरुष का जीवन-वृत्तान्त स्वयं ही एक काव्य होता है और कोई भी इसे काव्यबद्ध कर सकने में पूर्ण समर्थ हो सकता है। यही मेरे साथ भी सम्भव हो सका। मैं भी भगवान् तीर्थंकर महावीर के जीवन-वृत्त को एक नये परिवेश में देख-रख सकने एवं उसे अभि-व्यक्ति दे पाने के संकल्प को लेकर काव्यबद्ध करने में जुट गया।

आज मैं यह कह सकने की स्थिति में हूँ कि मेरी समस्त रचनावधि में एक अदृश्य शक्ति मेरे साथ सदैव रही, जो मुझे बार-बार लिखते रहने की सशक्त प्रेरणा एवं मानसिक बल प्रदान करती रही है। कई बार ऐसा लगा कि मेरी समस्त मानसिक शक्तियाँ और मेरी लेखनी देशकाल से परे हटकर समाधिस्थ हो गयी है और मैं लिखता जा रहा हूँ, लिखता ही जा रहा हूँ। कोई दिव्यवाणी मेरे अन्तःस्थल से मानों ऊपर फूट पड़ना चाहती है, एक वेगवती धारा के समान और मैं देखता हूँ कि मेरी लेखनी चली जा रही है आगे अपनी अविराम गति से। और अन्त में नित्य के कई घंटों की यह अनवरत काव्य-साधना प्रस्तुत महाकाव्य का स्वरूप ग्रहण कर सकने में समर्थ हो सकी।

संभव है काव्य-शास्त्र के अनुसार इसमें महाकाव्य के लक्षणों का यथाविधि निर्वाह नहीं हो पाया है; किन्तु इसे लिखकर मुझे पूर्ण आत्मतोष ही प्राप्त हुआ है। 'सर्गबद्धो महाकाव्यम्'–सूत्र के आधार पर मैंने भगवान् महावीर के समस्त इतिवृत्त को आठ सर्गों में विभाजित किया है। भाषा को मैंने उसकी दुरूहता से मुक्त रखकर उसे सरल, सरस एवं प्रवाहपूर्ण बनाने का पूरा प्रयास किया है। इस काव्य के रचनाकाल में मैं काव्य के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर उसे अच्छी तरह भोग चुका हूँ; समझ सका हूँ।

प्रस्तुत महाकाव्य को सम्पूर्ण कर सकने का श्रेय विक्रम विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभागाध्यक्ष एवं विद्वान् प्राध्यापक डा. हरीन्द्रभूषण जैन को देना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिनका कुशल मार्ग-दर्शन एवं जिनकी सद्प्रेरणा हरबार सहज ही उपलब्ध होती रही। मैं उनका अत्यन्त विनम्रतापूर्वक आभारी हूँ।

भगवान् महावीर के सम्बन्ध में अब तक लिखे गये महाकाव्यों में श्री नवलशाहकृत 'वर्द्धमान पुराण' कवि अनूप शर्मा कृत 'वर्द्धमान', रघुवीरशरण 'मित्र' द्वारा 'वीरायण' तथा श्री वीरेन्द्र कुमार जैन का हाल ही में लिखा गया उपन्यास 'अनुत्तर योगी; तीर्थंकर महावीर' भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस सम्बन्ध में परोक्ष या प्रत्यक्ष में मुझे जिनकी प्रेरणा या सहयोग मिल सका है उनका हृदय से आभारी हूँ।

यह महाकाव्य मेरा एक विनम्र प्रयास है–पाठकों को यदि यह संतुष्ट कर सका तो अपना श्रम सफल समझूँगा अन्यथा स्वान्तःसुखाय तो है ही।

विनीत,

छैलबिहारी गुप्त

३ मार्च १९७५–
आनन्द सदन, माधव नगर,
उज्जैन, (म. प्र.)

पुरोवाक्

अति प्राचीन काल से तीर्थंकरों के चरित्र लिखने की परम्परा रही है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के जीवन पर आधारित, ११००० श्लोक प्रमाण 'आदिणाह चरियं' नामक प्राकृत महाकाव्य, सर्वप्रथम ११०३ ईस्वी में वर्धमान सूरि ने लिखा था; तत्पश्चात् विभिन्न तीर्थंकरों के जीवन पर प्राकृत भाषा में अनेक काव्य लिखे गये।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के जीवन का सबसे प्राचीन उल्लेख आचाराङ्ग तथा कल्पसूत्रों में पाया जाता है। गुणचन्द्र गणि, देवेन्द्रगणि तथा देवभद्रसूरि द्वारा पृथक्-पृथक् लिखित 'महावीर चरियं' तीन प्राकृत-महाकाव्य भगवान् महावीर के जीवन पर लिखी गयीं सबसे प्राचीन रचनाएँ हैं। संस्कृत भाषा में तीर्थंकरों के चरित्र-ग्रन्थों का प्रारम्भ १३ वीं शताब्दी के श्री अमरचन्द्र कविकृत 'चतुर्विंशति जिनचरित' से होता है। महावीर के चरित्र पर १८ सर्गों का सुन्दर संस्कृत काव्य 'वर्धमान-चरित्र' (शक संवत् ८१०) महाकवि असग कृत पाया जाता है। गुणभद्र कृत 'उत्तर पुराण' में तथा हेमचन्द्र कृत 'त्रिषष्ठि शलाका-पुरुष चरित' के दसवें पर्व में महावीर-चरित्र वर्णित है। सकलकीर्ति कृत 'वर्धमान पुराण' (वि. सं. १५१८) १९ सर्गों में है। पद्मनन्दि, केशव तथा वाणीवल्लभ कृत 'वर्धमान पुराण' भी पाये जाते हैं।

हिन्दी भाषा में संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थों के अनुवाद के तथा स्वतन्त्र रचनाओं के रूप में विपुल मात्रा में महावीर-चरित्र उपलब्ध है। प्रसन्नता की बात है कि अवन्तिका के प्रबुद्ध शब्दशिल्पी डॉ. छैलबिहारी गुप्त ने तीर्थंकरों के चरित्र-वर्णन की प्राचीन परम्परा के प्रबुद्ध शब्द-शिल्पी डॉ. छैलबिहारी गुप्त ने तीर्थंकरों के चरित्र-वर्णन की प्राचीन परम्परा को प्रवहमान करते हुए 'तीर्थंकर महावीर' नामक महाकाव्य की रचना की है। उनका यह महाकाव्य वर्तमान समय में भगवान् महावीर के जीवन पर हिन्दी भाषा में लिखे गये महाकाव्यों में तृतीय है। प्रथम श्री अनूप शर्मा द्वारा लिखित तथा उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत 'वर्द्धमान' महाकाव्य तथा द्वितीय श्री रघुवीरशरण मित्र द्वारा लिखित 'वीरायन' महाकाव्य है।

प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने आठ सर्गों में भगवान् महावीर के गर्भ में आने से लेकर उनके परिनिर्वाण तक की विशाल आध्यात्मिक जीवन-यात्रा को परम्परा के आलोक में अपनी कल्पना एवं प्रखर प्रतिभा के द्वारा सुन्दर रीति से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। काव्य की भाषा सरल, ओजपूर्ण, तथा भावानुगामिनी है। मेरी कामना है कि भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण-पर्व पर, उन्हीं के चरणों में समर्पित डॉ. गुप्त की यह साहित्य-श्रद्धाञ्जलि, महावीर के आदर्शों एवं सिद्धान्तों को जन-जन में प्रसारित करने में समर्थ हो।

—डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन
प्राध्यापक, संस्कृत अध्ययन शाला
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

१४ मार्च, १९७५

उपक्रमणिका

प्रथम सर्ग (१-३०)

वन्दना; पूर्वाभास; महारानी त्रिशला का स्वप्न-दर्शन; राजकुमार वर्द्धमान का जन्म; इन्द्र द्वारा जन्म कल्याणक आयोजन; देवेन्द्र द्वारा भगवान का अभिषेक, स्तुति के पश्चात् महावीर तथा वर्द्धमान नामकरण; राजकुमार सहित नन्द्यावर्त (कुण्डपुर) को प्रस्थान; प्रासाद में इन्द्र द्वारा महाराज सिद्धार्थ एवं महारानी त्रिशला की स्तुति; राजकुमार का सौंपा जाना; जन्मोत्सव; बाल-लीलाएँ; आठवें वर्ष में बारह व्रतों का ग्रहण।

द्वितीय सर्ग (३१-६६)

इन्द्रसभा में देवों द्वारा राजकुमार की प्रशस्ति; ईर्ष्यावश संगम देव का परीक्षा हेतु प्रस्थान; महावन में बालसखाओं सहित आमली क्रीड़ा; संगम देव का महाविषधर स्वरूप धारण करना; राजकुमार का सर्प-फण पर आरूढ़ हो क्रीड़ा करना; संगम द्वारा प्रकट होकर स्तुति; वन-क्रीड़ा, जल-क्रीड़ा, आमोद-प्रमोद; काव्य-धर्म-चर्चा; मुनिद्वय द्वारा सन्मति नामकरण; तीस वर्ष की वय में क्षयोपशम से पूर्वजन्म का ज्ञान; वैराग्योत्पत्ति, राज्य-भोगादिकों के प्रति विरक्ति।

तृतीय सर्ग (६७-१४२)

वैराग्य, सांसारिक भोगों के प्रति पूर्ण विरक्ति; बारह भावनाओं का चिन्तन; वनगमन; माता त्रिशला का वियोग-विलाप; महत्तर देवों का आगमन, धैर्य बंधाना; मातृहृदय में विवेकोत्पत्ति, शोक-निवारण; ज्ञातृ वनखण्ड

में संयम धारण; दस परिग्रहों एवं चौदह अन्तरंग परिग्रहों का परित्याग; पल्यंकासन; केश-लुंचन, कर्मशत्रु नाशक योग क्रियावरोध पारणा, कुरु नगर-प्रवेश, राजा द्वारा महावीर-वन्दन-अर्चन; भगवान् द्वारा अंजलिपुट द्वारा नृप का खीर-आहार-ग्रहण।

चतुर्थ सर्ग (१४३-१६७)

विभिन्न स्थानों का भ्रमण; निर्जन-भयंकर वन में निवास; छठे-आठवें उपवास का आरम्भ एवं छह मास तक का अनशन तप; कठोर तप-साधन, कठिन परीषहों पर विजय; उज्जयिनी के महाश्मसान में प्रतिमा-योग साधन; स्थाणु रुद्र द्वारा धैर्य-परीक्षा, स्तवन-वन्दन; कौशाम्बी का चन्दना-प्रसंग; महावीर स्वामी का आगमन, चन्दना का आहार-दान एवं यश:प्राप्ति।

पंचम सर्ग (१६९-२११)

जृम्भिका ग्राम के बाहर ऋजुकूला-तट पर प्रतिमायोग हेतु षष्ठोपवास; तेरहवें गुणस्थान की प्राप्ति; कैवल्य-प्राप्ति; ज्ञान कल्याणक उत्सव; समवशरण-वर्णन; समवशरण-सभा में देवराज इन्द्र का देवों सहित स्तवन एवं धर्मोपदेश श्रवण; इन्द्र का गौतम ब्राह्मण के यहाँ गमन; गौतम इन्द्र संवाद; गौतम द्वारा महावीर प्रभु की स्तुति एवं सम्यक्दर्शन, ज्ञान-प्राप्ति।

षष्ठ सर्ग (२१३-२७९)

गणधर गौतम तथा भगवान् महावीर के मध्य प्रश्नोत्तर; भगवान् महावीर द्वारा सात तत्वों का उपदेश; मुक्ति-रहस्योद्घाटन; गणधर गौतम का दिगम्बर मुद्रा-धारण; भगवान् का गौतम तथा उनके पाँच सौ शिष्यों को तत्व-स्वरूप का उपदेश एवं उनका मुनिचरित्र का धारण; राजकन्याओं का अर्जिकाएँ बनना; अन्य नर-नारियों का श्रावक-व्रत ग्रहण; गणधरों द्वारा द्वादशांग शास्त्रों की रचना; दिव्यवाणी की विश्राम-

प्राप्ति; इन्द्र द्वारा इन्द्राणी सहित महावीर-स्तुति; भगवान् महावीर का भव्यों हेतु विहार-निर्णय।

सातवाँ सर्ग (२८१-३३०)

राजगृही-महाराज श्रेणिक द्वारा विपुलाचल-गमन, दर्शन-वन्दना, उपदेश-श्रवण-लाभ; गणधर गौतम स्वामी द्वारा राजा के पूर्वजन्म-वृत्तान्त-वर्णन; जिज्ञासाओं का समाधान; महाराज श्रेणिक के हृदय में परिताप, ग्लानि का उदय; गणधर गौतम स्वामी द्वारा उपदेश, राजा की वापसी।

आठवाँ सर्ग (३३१-३५६)

भगवान् महावीर का पावापुर आगमन; कर्मशत्रुओं एवं औदारिक आदि शरीरों का नाश; ऊर्ध्वगति मोक्षप्राप्ति; परिनिर्वाण।

□□

"तिलोए सव्वजीवाणं
हिव धम्मोवदेसिणं ।
वड्ढमाणं महावीरे
वंदेहं सव्ववेदिणं ।।"

तीन लोक के प्राणीजन हित
दिया धर्म उपदेश ।
वन्दन है उन महावीर का
वर्द्धमान अखिलेश ।।

—छैलबिहारी गुप्त

महाकाव्य-प्रारंभ : १७ अक्टूबर १९७४, गुरुवार, प्रातः ७–१०
महाकाव्य-समापन : १७ फरवरी १९७५, सोमवार, प्रातः ८–१७

प्रथम सर्ग

प्रथम सर्ग

नमस्कार शत अरिहन्तों को
नमस्कार शत सिद्धों का
नमस्कार शत आचार्यों को
युग के पुरिस प्रसिद्धों को

उपाध्याय को नमस्कार शत
ज्ञानी जन - विद्वज्जन को
सकल लोक के साधुजनों को
झुका शीश शत वन्दन को–

लोकनायक युग पुरुष अवतार
तुम मिटाने को धरा का भार
अवतरित होते धरा पर नाथ
तव-युगल-पद में झुका यह माथ–

जयति जय हे महावीर जिनेन्द्र
व्यष्टि होकर भी जगत के केन्द्र
धर्म रूपी चक्र के धारक
सृष्टि के भगवान अघहारक–

पुण्य के आगार-गुण सागर
छल छलाती करुन रस गागर
काम रूपी शत्रु का कर त्याग
राज वैभव को समझकर आग–

चल दिये तुम छोड़कर धन-धाम
चल दिये तप हेतु जिन भगवान
धर्म का तुमने जलाया दीप
कर्म विजयी वीर धन्य महीप–

अर्चना में गीत के नव छन्द
उड़ चले खग मुक्त से निर्बन्ध
आज मैं आया तुम्हारे द्वार
वन्दना के स्वर करो स्वीकार–

जग युग-युग तक कठिन साधना
करता है मनुहार
और याचना करता प्रभु से
लो कोई अवतार।

तब युग पुरुष दया कर कोई
कर में थाम मशाल,
होते हैं अवतरित धरा का
करते उन्नत भाल–

पूर्वाभास

विश्व का प्राचीन भारत देश
सिन्धु धोता चरण
हिम का था किरीट सुवेश–

खुल गया इतिहास लो प्राचीन
थे बहुत से राज्य
केन्द्रित शक्ति सारी क्षीण–

रो उठा था देखकर आकाश
बन रहा था मनुज
धरती के मनुज का दास–

घिर रहे पीड़ा सघन बादल
दीन-पीड़ित-जन बने
निरुपाय – निःसम्बल

आह प्यासों को विवर्जित नीर
कौन उतरे भूमि पर
रे बादलों को चीर–

बह रही अविरल नयन-जल-धार
किन्तु सीने से लगाकर
कौन देता प्यार–

हाय रे-पथ भ्रष्ट जीर्ण समाज
नृपति शासन था – कि
क्षत्रिय कर रहे थे राज–

नृत्य ताण्डव कर रही तलवार
यज्ञ में पशु बलि भयानक
प्रतिध्वनित चीत्कार–

थी न ब्राह्मण की कलम निष्पाप
काटती तलवार सी
जड़ धर्म की - बन शाप–

वर्ण में थे जाति-भेद-विभेद
कर रहे – निष्प्राण मानव-
धर्म का विच्छेद–

फैलती जाती सहज दिग्-भ्रान्ति
आग अन्तर में धधकती
किन्तु मुख पर शान्ति–

स्वार्थ साधन बढ़ चला मुँह खोल
मंत्र शोषण का बना
जीवन – अमोलक बोल–

राज्य लिप्सा के अनेकों द्वार
युद्ध ही जीवन – कि
होता – सतत नर संहार–

गगन भेदी कीर्ति का जय घोष
भोग – भौतिक आवरण
भीतर भरा था क्रान्तिदायी रोष–

नीच पर होता नियति का हास
क्यों कि बनना था
सवर्णों का उसे बस दास–

कर्म को कर क्षीण पनपा भोग
आपसी सौहार्द्र डूबा
क्यों कि थे उच्छेदवादी लोग–

वेदना की उतर आई शाम
तिर रहे हर आँख में
बन कर सजल घनश्याम
धर्म पर आस्था–अटल–विश्वास
फैलता ही गया
संशय – त्रास का आकाश–

शांकर वेदान्त-"सत्य केवल ब्रह्म-
जगत् मिथ्या स्वप्नवत"
फिर कौन किससे कम–

लग रहा था दार्शनिक का ध्यान
ब्रह्म की उपलब्धि में–रे
बन गया अद्वैतवाद – विधान–

था सभी दर्शन – धरातल पर
एक जल को – ज्यों कई
हम कलश में दें भर–

प्रारम्भ

जयति भारत-भव्य देश विशाल
वन्दना नत कोटि जन के भाल
देश है यह देश अति प्राचीन
विश्व में इस-सा कि कोई भी न–

शीश पर नग राज हेम किरीट
चरण धोती सिन्धु जल की छींट
गोद में गंगा-यमुन अभिराम
ब्रह्मपुत्रा नर्मदा छवि धाम–

खेलती सरिता न एक अनेक
आह मिलता सुख हृदय को देख
हैं सघन गिरि शृंखला मैदान
रे यहीं आलोक का अभियान–

उदित होता यहीं स्वर्ण प्रभात
ताम्र-सा खिलता मुदित हो गात
सुरमई भू पर उतरती शाम
रात गोदी में जहाँ विश्राम–

बढ़ चलें कुछ दूर आगे और
उठ धरा नभ से लगाती होड़
धर्म का फहरा जहां से केतु
चल हिमालय से पहुंच आ–सेतु–

एक विस्तृत राज्य नाम विदेह
शीत आतप औ समय पर मेह
मन्दिरों की धवल पंक्ति सुकाम
पाप कैसा और क्या है नाम?

केवली भगवान श्री अर्हन्त
थी उन्हीं की भूमि मोक्ष अनन्त
देव विद्याधर सभी गण जन
वन्दना में रत सभी का मन–

शृंखला गिरि सघन उपवन वन
ध्यान रत योगी लगा आसन
वन थली तरु गुल्म पुष्प अनन्य
पठन-पाठन मनन–चिन्तन धन्य–

मध्य-स्थित था नगर कुण्डनपुर
दर्शनों की ललक रखते सुर
घेरता था नगर को दृढ़ कोट
ध्वंश कर पाती न कोई चोट–

चतुर्दिशि में लोह तोरण द्वार
नगर रक्षा के सुदृढ़ आधार
खाइयां चौड़ी अलंघ्य गंभीर
था भरा जिनमें कि गहरा नीर–

द्वार पर थे नियत पहरेदार
सैनिकों का वेश भव्य अपार
थे नगर वासी सभी सम्भ्रान्त
धर्म-पालक धीर-वीर महान्–

थे सभी के गगन चुम्बित सौध
था विभव-ऐश्वर्य का ही बोध
पण्यशाला में भरी हलचल
आ रहे क्रेता यहाँ पल-पल–

कौन निर्धन कौन था धनवान
एक से बढ़कर सभी की शान
देखकर होता न कुछ आभास
वह मनुज स्वामी कि है रे दास–

स्वर्ण - चाँदी - हीर-मुक्ता हार
और था धन-धान्य का व्यापार
था नृपति का राज्य-सद्-आचार
था प्रजा-वत्सल लुटाता प्यार–

ब्राह्मण मंत्रित्व पद आसीन
वणिक जन व्यापार-कृषि में लीन
राज पथ आवागमन से पूर
अश्व-गज-रथ औ पदातिक शूर–

नागरिक जन का कि सुललित वेश
बन रहे भू पर सभी देवेश
वस्त्र आभूषण सुसंस्कृत ढंग
थे सुलेपन से सुगंधित अंग–

कुण्डपुर के नृपति थे सिद्धार्थ
धीर-वीर वरेण्य जग अवदात
सप्त खण्डों का बना प्रासाद
आह नन्द्यावर्त की क्या बात–

चूम नभ को, बोल मीठे बोल
या कि कर में ले गगन दे तोल
धवल निर्मल कीर्ति-सा नभ सौध
या कि हिंसा का सबल नव बोध–

खेलते थे नृप स्वयं आखेट
शत्रु से करते समर में भेंट
दान में कोई न उन-सा और
ज्यों लुटाती रश्मियों को भोर–

और उनके राज्य में साहित्य
था समुन्नत ज्यों उठे आदित्य
उठ रही संगीत ध्वनि घर-घर
ज्यों उठे गिरि-शृंग से निर्झर–

भित्तियों पर कला अंकित चित्र
पारखी भी कलाकार विचित्र
थे गुणीजन और नृपति उदार
कुशल शासक नीति के आगार–

और रानी नवल परिणीता
नाम त्रिशला सुन्दरी प्रीता

पातिव्रत था धर्म, गुणशीला
मुखकमल ज्यों चन्द्र चमकीला–

थे सुकोमल चरण ज्यों जलजात
चन्द्र किरणों सी धवल नख पांत
आह कदली स्तम्भ से युग जानु
नयन अलसित खुलें उगता भानु–

नाभि गहरी ज्यों उदधि गंभीर
संकुचित हो देख रति का धीर
कण्ठ कोमल वाणि में रस घोल
बोलती थी कोकिला सी बोल–

जब वलय मणि-जटित कर में डाल
कर्ण कुण्डल केश जैसे व्याल
जब धरा पर चरण धरती वाम
देख मोहित एक क्षण को काम–

संकुचित भ्रू-खिची काम कमान
अंग लतिका से सुकोमल कान्त
प्रियतमा पति की बनी धन्या
कौन थी उस-सी सुखी अन्या–

बीतता जीवन कि सुख के क्षण
बीतती थी रात चाँदी बन
और सोने से कि जिसके दिन
क्या कभी कोई सका है गिन

रत्न खचित स्वर्णिम शैया
पर त्रिशला सोई
देख रही थी स्वप्न गहन
निद्रा में खोई–

समय नहीं था दूर कि
जब कोई अवतारी
त्रिशला की कर कोख धन्य
प्रकटे दुख हारी–

गर्भ भार से मुख की
आभा पीली-पीली–
कनक लता-सी देह यष्टि
सुरभित गरबीली–

मुंदे नयन ज्यों ध्यानावस्थित
योगी कोई–
या शत दल हो गया बन्द
पंखुड़ियां सोई–

वातायन से चल कर आया
पवन हठीला–
खेल खेलता अलक जाल से
खड़ा रंगीला–

दीपाभा भी केन्द्रित थी, आनन
पर शत-शत–
तन की सुध-बुध-खोई त्रिशला
सोई अविरत–

चल रहा क्रम स्वप्न का साकार
देखती रानी स्वयं साभार
स्वप्न पहिला मत्तमद गजराज
फिर वृषभ भारी लिये आवाज–

कंध ऊँचे और शशि सी कान्ति
देखकर होती सहज दिग्-भ्रान्ति
तीसरा था कान्तिमय मृगराज
लाल कंधे थे बृहत् तन साज–

कमल सिंहासन कि थी आसीन
वह महालक्ष्मी महालय लीन
और ऐरावत कि शुण्ड उछाल
स्नान करते देवि को जल डाल–

पाँचवाँ था दो सुगन्धित माल
तारकों से घिरा-शशि का भाल
सृष्टि आलोकित सघन आलोक
उग गया सूरज मिटा तम शोक–

कमल पत्रों से ढके छविमान
स्वर्ग के युग कलश थे रसखान
और फिर देखा सरोवर जल
केलि क्रीड़ा रत कि मीन युगल–

खिल रहे सरसिज कमलिनी भी
तैरती पीली कमल रज भी
लहरता सागर विशाल अथाह
गरजता गम्भीर ऊर्मि प्रवाह–

दिव्य मणि गण से जटित नव एक
उच्च सिंहासन अमरता-लेख
लो उतर आया कि स्वर्ग विमान
दिव्य रत्नों से सतत छविमान–

फाड़कर भू को सहज गतिमान
बन उठा प्रासाद एक महान
स्वामि थे जिसके फणीन्द्र भुवाल
और देखी रत्न राशि विशाल–

ज्योति से जगमग धरा नभ छोर
फिर निकट आने लगी जब भोर
स्वप्न अन्तिम भी लिया वह देख
अग्नि थी निर्धूम फिर भी रेख–

काल चक्र घूमा अपनी गति से सयास
पूर्ण हुआ रानी त्रिशला का नवम मास
चैत्र मास की त्रयोदशी था यमण योग
प्रसवकाल हर्षातिरेक से भरे लोक–

दीप्ति मान थीं सभी दिशा निर्मल-निर्मल
भू से समीर उड़ चला गगन की ओर विकल
माता त्रिशला ने दिया जन्म हो गया प्रसव
अवतरण धरा पर वर्द्धमान प्रभु का अभिनव–

बज उठी देव दुन्दुभी हुआ जयनाद-गहन
शंखाध्वनि से आपूरित धरती और गगन
स्वर्ग से वृष्टि थी पारिजात के पुष्पों की
हो गई ध्यान मुद्रा विभंग ऋषि-मुनियों की–

उत्सव के आयोजन में रत पाताल धरा
औ स्वर्ग लोक उत्साह अमित उन्माद भरा
फैला विद्युत-सा समाचार शुभ हर्षित जन
हर्षित वन-उपवन सकल राज-पथ घर-आंगन–

महारानी त्रिशला आज बनी जब जाया
श्री महावीर ने जन्म धरा पर पाया
हो गये इन्द्र भी हर्षमना यह सुन कर
उल्लास नृत्य का फूट पड़ा था निर्झर–

मन में विचार था मने जन्मकल्याणक
अभिषेक हेतु लाना होगा यह बालक

चल पड़े देवगण कर प्रभु का जयकारा
प्रतिध्वनित हो रहा भू-नभ का पथ सारा–

कोई करता था नृत्य दौड़ता कोई
मंगल बेला की बेलि किसी ने बोई
जा पहुंचे कुण्डलपुर में क्रम से सुरगण
भर गया सुरों से राजमहल का आंगन–

पहुंची प्रसूतिगृह में पहिले इन्द्राणी
देखा शिशु को सो रहा 'वीर' वरदानी
उनके समीप ही शायित थी जिन माता
करके प्रणाम पूछी उनसे कुशलाता–

फिर बोली उनसे : "धन्य-धन्य जग माया
दे दिया जन्म प्रभु से सुत को वरदाया
हे देवि धन्य तुम-तुमसे धन्य धरा है
जिसके सम्मुख नत मस्तक स्वर्ग खड़ा है"–

कह, सुला दिया इन्द्राणी ने त्रिशला को
चल पड़ी उठा बालक को पूर्ण कला को
पर माया का शिशु, स्वा और धर आई
शिशु को पाकर शचि बनी आज शुचि माई–

लेती थी शिशु का प्यार भरा मुख चुम्बन
शिशु के प्रकाश से आल्हादित थे तन-मन
नभ-पथ से होकर चली लिये जब बालक
ज्यों दिव्य ज्योति हो नीलाम्बर में लक-दक–

या सूरज जैसे चले वेग से रथ में,
वे दिक्-कुमारिका बनीं सेविका पथ में,
थे चमर-छत्र ध्वज-कलश आदि मुद मंगल
स्वागत में गाती नभ गंगा भी कलकल–

शचि ने लाकर शिशु दिया इन्द्र को सत्वर
सुरराज लगे करने वन्दन नत होकर
"तुम ज्ञान सूर्य के उदयाचल हे योगी
हो तुम ही रक्षक मोक्ष प्रिया के भोगी–

जो अंध कूप में पड़े हुए अज्ञानी
तुम धर्म करों से उठा सहज हे स्वामी
तुम करते हो उद्धार पतित जन-जन का
तुमसे ज्योतिर्मय कन-कन सकल भुवन का–

हैं नमित सभी हम करें तुम्हारी सेवा
हैं श्रद्धा पूरित, भक्तिभाव से देवा"
कर इस प्रकार शिशु का नत-शत शतवन्दन
गोदी में ले चल पड़े इन्द्र सब सुरगण–

जा रहे मोद में भर सुमेरु पर्वत पर
जय हो! जयहो! ! जय ध्वनि से गुंजित अंबर
उल्लसित सभी हर्षातिरेक मन वाणी
तन रोमांचित ले चली सहज इन्द्राणी–

गन्धर्व गान-अप्सरा-नृत्य करती थी
वह देव दुन्दुभी विजय घोष भरती थी
वीणा वादन में सरस्वती लीं लीना
वे किन्नरियां हर्षित गुण-गान प्रवीणा

जीवन सार्थक हो गया हुए प्रभुदर्शन
रह-रह करते दिव्यांगों का अवलोकन
गोदी के शिशु पर दिव्य छत्र डुलता था
गाते थे सनत-महेन्द्र सुयश की गाथा–

था जिन प्रभु का ऐसा सम्पदा प्रसारण
सम्यक्त्व देव गण ने कर डाला धारण
मानी प्रामाणिक बात इन्द्र की सारी
रे ज्योति चक्र को लांघ चले अवतारी–

तन की आभूषण किरण छटा थी फैली
नभ के पीले परिधान संग जा खेली
था एक नहीं उत्सव अनेक आयोजन
जा पहुंचे ऊंचे गिरि सुमेरु पर सुरगण–

लो भद्रशाल वन सबसे पहिले आया
वन में परकोट ध्वजाओं से लहराया

थे चार सुशोभित जैन सुमंगल मन्दिर
कुछ ऊंचाई पर एक सौमनस वन फिर–
थे वृक्ष एक सौ आठ–चार चैत्यालय
मधु फल वाले तरु मीठा एक जलाशय
चौथा पाण्डुक वन बहुत-बहुत ऊंचाई
जिन चैत्यालय वृक्षों की पांत सुहाई–
वन में अपूर्व सुन्दरता फैली–फैली
थी एक चूलिका मध्य बनी अलबेली
वह सिद्ध शिला पाण्डुक ईशान दिशा में
इतनी शोभित ज्यों जगमग चन्द्र निशा में–
थे कलश ध्वजा स्वस्तिक ठोना शुभ दर्पण
औ चमर छत्र पंखा शुभ आठ निकेतन
थे रखे गये पहिले ही पुण्य शिला पर
इक सिहासन था दिव्य ज्योति का निर्झर–
दक्षिण में था सौधर्म अन्य सिहासन,
तारक मणियों से जटित-खचित मणि कांचन
उत्तर दिशि में सुरराज इन्द्र का आसन
मानों उनको प्रिय था कठोर अनुशासन–
सम्पन्न महोत्सव हुआ बज उठे बाजे
पावन शिल पर प्रभु करने स्नान बिराजे
की परिक्रमा यों प्रथम इन्द्र ने गिरि की
अन्तिम तीर्थंकर की नव ज्योति प्रखर थी–

छा रहे थे अम्बुद अभिषेक
मयूरों से सुर नाचे देख
घेर कर बैठ गये नग राज
सज गया दिक्पालों का साज–

बना था मण्डप एक विशाल
कल्पतरु के पुष्पों की माल
लता मण्डप-सी टंगी अनेक
खिंची हो ज्यों विद्युत की रेख–

मधुप आ मालाओं पर बैठ
चढ़ाते थे गुञ्जन की भेंट
देव गन्धर्वों ने स्वर साध
किया जिन-प्रभु गुण-गान अबाध–

किया कल्याणक का गुणगान
उठी किन्नरियों की मधु तान
अप्सराओं का मादक नृत्य
हाव भावों का भंगिम कृत्य–

वाद्य यंत्रों की मधु-झंकार
हो रहा पुण्योदय साकार
देवगण ने बरसाये फूल
काल रह गया आज गति भूल–

इन्द्र ने रखा तभी प्रस्ताव
रहे फिर पीछे क्यों पछताव
करें प्रभु का अभिषेक महान
वन्दना से शोभित गुण-गान–

कलश की रचना हुई सवेग
ललकने लगे देख कर मेघ
झिलमिलाती थी मुक्तामाल
लगे चन्दन से पावन भाल–

इन्द्र ने कलश करों में थाम
सुरों से चर्चा करी ललाम
कल्पवासी सुर का जय नाद
हुई प्रभु कल्याणक की बात–

कार्य में इन्द्राणी लीना
हर्ष की सीमा को छीना

स्वयंभू का शुभ चरित पवित्र
श्वेत रेखा से अंकित चित्र–

दूध-सा श्वेत रक्त का रंग
सुशोभित श्वेत माधवी अंग
अपेक्षित क्षीर सिन्धु का जल
स्नान होगा उससे केवल–

तभी गिरि से सागर पर्यन्त
खड़े थे पंक्तिबद्ध सुर वृन्द
इन्द्र ने कर निज भुजा हजार
स्वर्ण कलशों को धर साभार–

इन्द्र की शोभा बनी अलेख
कल्पतरु का भ्रम होता देख
मेघ स्वर-सा कर जयजयकार
बना कर मोटी जल की धार–

शीश पर प्रभु के डाल सहर्ष
हर्ष का किया और उत्कर्ष
'करो प्रभु रक्षा, हों निर्भय'
देवगण बोले-"जय हो जय"–

मच गया गिरि पर कोलाहल
डालने लगे देवगण जल
तीव्र ज्यों भागीरथी प्रवाह
बना लेता गिरि में भी राह–

तीव्र गति वाली बही अपार
शीश पर पड़ती थी जल धार
सरल प्रभु सहज रहे थे झेल
सुमन से करते जैसे खेल–

स्नान से उठते जल के कण
उछल कर छूते नील गगन
मोतियों की टूटी ज्यों माल
स्नान जल बहता राह उछाल–

प्रवाहित था गिरिवन में आज
तैरते-से जल में गिरिराज
स्नात जल में डूबा वनथल
क्षीर सागर की-सी हलचल–

देवगण का उत्साह प्रवाह
बढ़ चला आगे पाकर राह
इस तरह आत्मशुद्धि को स्नान
कर रहे थे प्रभु जिन भगवान–

सुतनु का पाकर स्पर्श सुप्रीत
स्नात जल धारा बनी पुनीत
समापित था प्रभु का अभिषेक
इन्द्र बोले भर मुद अतिरेक–

"शांति हो-भव्यों को सुख-शान्ति
मिटे रे सकल सृष्टि दिक्-भ्रान्ति"
हुई यों सुरगण शुद्धि विमल
शीश से लगा सुगन्धित जल–

इन्द्र देवों से वन्दित वर
हो रहे पूजित तीर्थंकर
हो रहा था पूजन अभिराम
दिव्य गन्धायित पुष्प सकाम–

सुधा का पिण्ड रूप नैवेद्य
मधुर फल कल्पवृक्ष की भेंट
रत्न से जटित स्वर्ण के दीप
कि थी अष्टांग धूप नवनीत–

अर्घ्य पुष्पाञ्जलि आदि सप्रीत
हो रहा पूजन परम पुनीत
इन्द्र ने भक्ति-भाव सम्पन्न
किया अभिषेक समापन धन्य–

नमन श्रद्धापूरित आनत
कर रहे शचि-सुरगण आदृत

हुआ प्रकृति सौन्दर्य महान
गगन ने ताना नील वितान–

बरसने लगा सुगन्धित जल
पुष्प की वर्षा थी अविरल
सुगन्धित शीतल मन्द बयार
चल पड़ी खोल प्रकृति का द्वार–

फैलता गया और आलोक
सृष्टि हो गई सकल हत शोक
कि लेकर उज्ज्वल वसन ललाम
पोंछ कर प्रभु के अंग सकाम–

सुगन्धित पुष्पों का कर लेप
भाल पर तिलक लगाया एक
शीश पर चूड़ामणि फिर बांध
दिया नयनों में काजल आंज–

श्रवण के रत्नों के कुण्डल
कण्ठ में हार-हीर उज्ज्वल
भुजाओं में प्रिय बाजूबन्द
हाथ पहुंचों में कड़े सुबन्ध–

मुद्रिका उंगलियों में डाल
दे रही क्षुद्र घंटिका ताल
करधनी कटि में पड़ी अमोल
रही थी दीप्ति दिशा में घोल–

गोमुखी कड़े पगों में डाल
दिव्य मंडन मंडित तन साल
सुशोभित प्रभु के दिव्य सुअंग
कान्तिमय लक्ष्मी पुंज अभंग–

इन्द्र की गोदी में छविमान
सुशोभित थे बालक भगवान
हुई विस्मित इन्द्राणी देख
अमरता का सक्षम आलेख–

देखती थी छवि बार हजार
तृप्ति पा सकी न कोई पार
किया शिशु रूप सुधा का पान
हो रहा केन्द्रित क्रमशः ध्यान–

प्रशंसा में बोले सुरराज:-
"देव हे सकल गुणों के साज
स्नान बिन ही सर्वांग पवित्र
तुम्हारा दिव्य अपूर्व चरित्र–

विश्व के पाप-शान्ति के काज
स्नान करवाया तुमको आज
जगत के आभूषण सुख हेतु
किया यह हमने ही अभिषेक–

तुम्हारी सत्ता अखिल महान
प्रभावित अग जग जिसको जान
देव कल्याणक भक्ति अनन्य
कामना करने वाले जन–

करोगे तुम उनका कल्याण
पतित जन को निज कर से थाम
उठा कर दोगे निज संबल
बनोगे हे निर्बल के बल–

अमृत-मय वाणी मोह विनाश
करेगी दूर तिमिर की राशि
उतारोगे भव सागर पार
डूबते होंगे जो मझधार–

बने जन के अधिकारी भोग
ज्ञान पायेंगे तुमसे लोग
मोक्ष-नारी तुम में आसक्त
प्रतीक्षा रत अग-जग के भक्त–

भक्त जन भक्ति भाव में लीन
मीन ज्यों हो जल से अनिभिन्न

नाथ हे सकल लोक के नाथ
झुका पग वन्दन में यह माथ–

धर्म का कर में लिये कुठार
कर्म अरिगण पर घोर प्रहार
तुम्हीं भागी कल्याणक पंच
धर्म का निर्मल तुमसे मंच–

कि तुम-सा दाता कहीं न और
तुम्हीं से उठती धर्म हिलोर
तुम्हारा नामकरण छविमान
विश्व में 'महावीर' भगवान–

कर्म अरिगण के विजयी वीर
तुम्हीं में पुण्य प्रवाहित नीर
वृद्धि सद्गुण की हुई सुधाम
विश्व में वर्द्धमान हो नाम–

हुआ प्रभु चरणों में तत्काल
देवताओं का आनत भाल
सुरों की गूंज रही वाणी
'जयति जय' की शुभ कल्याणी–

सिन्धु में आई एक हिलोर
उतरने लगी धरा पर भोर
खिल उठे वन-उपवन में फूल
उड़ा वासन्ती पवन दुकूल–

समापित नामकरण का काज
चल पड़े कुण्डलपुर सुरराज
बिठा ऐरावत पर प्रभु बाल
चले सुर, मग में उड़ी गुलाल–

घिरा देवों से नगर विशेष
कि किन्नरियों का अनुपम वेश
पहुंच कुण्डलपुर में पश्चात
इन्द्र कुछ देवों को ले साथ–

भवन में नृप के किया प्रवेश
उदित हो नभ में ज्यों राकेश
भवन में मनहर था आंगन
रत्नमय स्वर्णिम सिंहासन–

किया शिशु को उस पर आसीन
हुए सब शिशु दर्शन में लीन
नृपति सिद्धार्थ और प्रियजन
हुआ उल्लसित सभी का मन–

गई इन्द्राणी त्रिशला पास
जगाया जाकर हुआ प्रकाश
रही जो अब तक निद्रा लीन
जगी ज्यों जागी ज्योति नवीन–

नयन भर देखा बहुत उमंग
चन्द्रमुख देखा उठी तरंग
कान्ति भी फैली एक अपूर्व
चमकते नभ में सौ सौ सूर्य–

उपस्थित थे, सन्मुख सुरराज
कि सन्मुख इन्द्राणी भी आज
हर्ष का था अब ओर न छोर
हुई त्रिशला आनन्द विभोर–

पूर्व अभिलाषा पूर्ण सकाम
पूर्ण था जीवन सकल ललाम
आज थी त्रिशला रानी धन्य
कौन क्या इस-सा होगा अन्य–

इन्द्र ने, और स्वयं सोल्लास
वसन आभूषण धवल सुवास

नृपति-रानी जो लोक सुधाम
अलंकृत-भूषित किया ललाम–

और पूजन कर विधि के साथ
वन्दना से था प्रमुदित गात
युगल दम्पति हो जग में धन्य
नहीं है तुमसा कहीं अनन्य–

पिता जिनसे त्रैलोक्य सनाथ
उन्हीं के तुम्हीं पिता-औ मात
मान्य हो मेरे विश्व वरेण्य
तुम्हारे आगे संसृति दैन्य–

आज से होगी कीर्ति अक्षुण्य
तुम्हारे उदित हो गये पुण्य
हुआ यह आलय चैत्यालय
हमारे मान्य पूण्य गुरु जय–

सौंपते तुम्हें आज भगवान
अहिंसा करुणा दया निधान"
इन्द्र से सुन अभिषेक कथा
हो गये प्रमुदित काम-गता–

पिता सिद्धार्थ नृपति वर राज
कि माता त्रिशला बनी सुकाज
नृपति से कहने लगे सुरेन्द्र
बने यह नगर आज से केन्द्र–

जन्म उत्सव का आयोजन
मनायें सभी राज्य के जन"
हो गया नरपति का आदेश
बन गया जन्मोत्सव परिवेश–

हो गया एकत्रित परिवार
और वन्दन-अर्चन सुविचार
जैन मन्दिर में सुखद-सुमन
अष्ट द्रव्यों से कर पूजन–

लुट रहा राजभवन में द्रव्य
दान भी राजा का था भव्य
दास-दासी जन-दीन-अनाथ
हर्ष से रोमांचित थे गात–

नगर के आज सभी वर द्वार
सुगन्धित माला तोरण वार
लगी बाजों की मानों भीर
हो रही शंखध्वनि गम्भीर–

नृत्य का भारी आयोजन
घुंघरुओं की थी छुम-छन-नन
गीत में था उन्माद भरा
उल्लसित थे नभ और धरा–

दीप घर-घर में जगे अनूप
दिवाली उतरी धर नव रूप
रात में होता दिन का भान
दिव्य दीपावलि पर्व महान–

स्वर्ग से उपमा बहुत सरल
वहां सुरपति अनुशासन बल
यहां जन-जन का था जन तन्त्र
न कोई था किंचित परतन्त्र–

देख जन-जन का मुद मंगल
खिले हों ज्यों कमलों के दल
इन्द्र ने कर निज प्रकट विनोद
हर्ष से भरी नृपति की गोद–

सभी सुरललनाओं के साथ
लगे नाटक करने सुरनाथ
कि जो साधक त्रिवर्ग फल का
पुण्य का दिव्य दीप जलता–

इन्द्र ने किया नृत्य आरम्भ
सुधा से छलक पड़ा हो कुम्भ

वाद्य की उठी मधुरतम तान
सरसतम गन्धर्वों का गान–

गोद में सुत को बिठा प्रवीण
नृपति सिंहासन पर थे आसीन
निकट बैठी माता त्रिशला
दीप ज्यों बाती संग जला–

दृश्य था प्रथम-जन्म अभिषेक
रहे सब तन्मय होकर देख
जन्म के पूर्व कई अवतार
दृश्य में अंकित किया संवार–

नृत्य पारंगत कला प्रवीण
नृत्य में थे जब सुरपति लीन
कल्पतरु से लगते सुरराज
फूल-सा लगता देव समाज–

थिरककर चलते पग गतिमान
मंच पर शोभित पुष्प विमान
हुआ फिर ताण्डव का प्रारम्भ
बज उठे सुमधुर बाजे शंख–

सभी रस का ताण्डव में योग
पुष्प वर्षा करते सुर-लोग
अप्सरायें करतीं गुणगान
जयति जय महावीर भगवान–

इन्द्र भी जिनकी भुजा हजार
पड़ा पग गति का भारी भार
धरा होती क्षण-क्षण चंचल
नृत्य का वेग बढ़ा प्रतिपल–

रूप भी बनते गये अनेक
कि ज्यों मिटतीं बनतीं हो रेख
सूक्ष्म थे कभी-या कि थे स्थूल
कि ज्यों मुरझाता-खिलता फूल–

निकट आ गये कि क्षण में दूर
नृत्य गति ताल लास 'रपूर
धरा पर क्षण में थे नभ पार
पहुंच जाता कर वेग प्रसार–

अप्सरायें थी नृत्य प्रवीन
नृत्य करतीं ज्यों जल में मीन
भुजाओं पर इन्द्र की समोद
नृत्य करती थीं सब अविरोध–

शुण्ड ऐरावत पर चढ़ खेल
कर रहीं नृत्य गीत का मेल
प्रकट हो-होतीं अन्तर्ध्यान
नृत्य करती थीं बन छविमान–

इन्द्र थे मानों जादूगर
देखते थे रानी नृपवर
नृत्य की सारी कला समेट
लुटा दी किन्नरियों को भेट–

सौंपकर प्रभु सेवा का भार
देवियों को औ असुर कुमार
छोड़कर दे आदेश सुरेश
देवगण को ले चले स्वदेश

चले गये सुरराज-सुरों की
करके सहज नियुक्ति
प्रभु की सेवा में रत रहना
अन्य न कोई उक्ति–

राजमहल में करती थीं सब
अपना अपना कार्य

कोई प्रभु की बनी सेविका
कोई बनकर धाय–

वस्त्राभूषण से आभूषित
करती कोई अंग
कोई खेल खिलौने देती
लेपन करती गंध–

कोई प्रभु के कमल-नयन में
अंजन देतीं आंज
जैसे सूरज पर घिर जाती
हलकी हलकी सांझ–

कोई स्नान करा मस्तक पर
केशर का चन्दन
कोई लगा डिठौना-पहिना
देती दिव्य वसन–

कोई खड़ी-बुलाती प्रभु को
ले लेकर प्रिय नाम
करते थे मन का रंजन वे
रंजित लोक ललाम–

आते थे मुसकान छोड़ते
घुटरुन चल कर पास
माता त्रिशला का बढ़ता था
देख-देख उल्लास–

घुटनों के बल गिरे-सरकते
चले पेट के बल
रत्न खिलौने हाथी घोड़ा
पाना था केवल–

माता त्रिशला ने देखा तो
बोल उठी "आ लाल।"

"मां आ - मां आ" कहकर बालक
बोल उठा तत्काल–

चन्द्रकला की तरह स्वयं ही
शिशु का हुआ विकास
नव विहान में बढ़ता जाता
जैसे नवल प्रकाश–

और अवस्था हुई अधिक कुछ
फूट पड़ी वाणी
सरस्वती ही जैसे मुख से
बोली कल्याणी–

चलते थे जब रत्न भूमि पर
तन के आभूषण
लकदक करते थे ऐसे ज्यों
चमके सूर्य किरण–

औ दिनकर की तरह स्वयं भी
किरणें करतीं वास
अन्धकार को मिटा-सृष्टि को
देते नवल प्रकाश–

खेल खिलौने जो भी कृत्रिम
मिलते करते खेल
हाथी को पकड़ा तो घोड़ा
पीछे दिया धकेल–

काल डांड़ से उमर नाव को
चले लगाने पार
धीरे-धीरे चलकर बालक
अब हो गया कुमार–

था क्षायिक सम्यक्त्व पूर्व ही
हुआ उसी से ज्ञान

सकल पदार्थों की अब उनमें
थी पूरी पहिचान–

दिव्यांगों में पहिले ही से
था स्वाभाविक ज्ञान

अवधि ज्ञान मति श्रुति से विकसित
पाकर समय प्रमाण–

और हुई उपलब्ध स्वतः ही
विद्या कला सकल

इसीलिए प्रभु सुर-वर मुनि के
गुरु बन गये सफल–

पर उनका गुरु कौन-कि जो
गुरु मन्त्र उन्हें देता

वह थे नित्य-अनित्य स्वयं ही
जग के अभिचेता–

चढ़ चुकी थी आयु प्रभु की
सीढ़ियां जब आठ

एक क्षण हक कर लिया
बारह व्रतों को साथ–

स्वेदहीन शरीर था वह
श्वेत जैसे दुग्ध

श्वेत था तन रक्त-लक्षण
आठ उनमें शुद्ध–

□

द्वितीय सर्ग

द्वितीय-सर्ग

सुरपुर में बैठी सभा आज सुर गण की
ज्यों पारिजात पुष्पों की नन्दनवन की,
इन्द्रासन पर आसीन इन्द्र अभिरामा
करतीं किन्नरियां नृत्य सुभव्य सुकामा–

मणिजटित खंभ वाला विशाल था मंडप
भित्तियां रत्न की आज कर रहीं लक दक
थे सभासीन निज-निज आसन पर सुरगण
ज्यों नीलाम्बर में दीप बने से उडुगण–

सैनिक विनम्र नत खड़े पूर्ण अनुशासित
सुख शांति वैभव-ऐश्वर्य सभी निज आश्रित
दुःख-दैन्य निराशा का क्या काम वहां था
उनको बनना था मात्र धरा की गाथा–

था गन्धर्वों का गान सरस मनभावन
कल कल स्वर में स्वर्गंगा बहती पावन
क्षण भर को तो झुक झूम गये दिक्-अंबर
बह उठा गान का रस विभोर स्वर निर्झर–

थे खड़े द्वार पर सभी सजग सुर-प्रहरी
मानों दिनकर की गति रुक क्षणभर ठहरी
नीलाम्बर-सा बहुमूल्य वितान तना था
दिन के प्रकाश का विस्तृत राज्य घना था–

तन्द्रा-सी सबकी एक साथ ही टूटी
अमृत-रस गगरी अनायास हो फूटी
हो गये गीत स्वर मन्द कि धीरे-धीरे
रुक गई नाव ज्यों पहुँच नदी के तीरे–

चल पड़ा दौर फिर मुक्त रूप चर्चा का
सबकी वाणी उन्मुक्त मुक्त थी भाषा
चल पड़ी बात में बात और कुछ आगे
कोई निद्रा से अनायास ज्यों जागे–

प्रभु महावीर पर बात टिक गई जाकर
जो सकल सृष्टि के थे नक्षत्र सुधाकर
शीतल प्रकाश से युक्त दीप्त मुख मंडल
जो बन विराट देते जग को अक्षय बल–

बोले सुरगण : ऐसे हैं वीर जिनेश्वर
होकर कुमार भी धैर्यवान बल शेखर
हैं शूरवीर जग विजयी अतुल पराक्रम
वे कोटि सूर्य से करते नाश सघन तम–

वे दिव्य रूप धारी अनेक गुण गामी
क्रीड़ारत हैं संसार क्षेत्र निष्कामी
तब लगते कितने भले दीप्तिमय सुन्दर
निर्झरित दिव्य आभा से बन शत निर्झर''–

कह हुए सभी सुर भक्ति भाव में लीना
पर एक देव संगम भी था मतिहीना
सुन सका न प्रभु की यह प्रशस्ति गुणगीता
मन में ईर्ष्या का भाव पाप ने जीता–

फिर लेने प्रभु की कठिन परीक्षा ठानी
चल पड़ा स्वर्ग से धरती पर अभिमानी
था एक महावन सुन्दर खेल रचा था
कोई चढ़ने वट वृक्ष दौड़ कर जाता–

कुछ राजपुत्र थे खेल रहे प्रभु संगा
जैसे जल धारा बीच खेलती गंगा
बन गया वहां जा संगम फणधर काला
वट वृक्ष तने से लिपट उगलता ज्वाला–

देखा विषधर को सभी छोड़कर भागे
वे पीछे प्रभुवर और सभी थे आगे

वे राजपुत्र हो रहे सभी भयभीता
वे भाग चले ज्यों दिखा युद्ध से पीठा–

जब बाल सखा सब उन्हें छोड़कर भागे
क्या हुई बात हो सावधान प्रभु जागे
देखा कि सामने सर्प एक था काला
तरु तल से लिपटा छोड़ रहा था ज्वाला–

फुफकार मारता महाकाल के स्वर में
निर्भय प्रभु ने, जा दबा लिया फण कर में
बन गये एक क्षण में प्रभु कुशल सपेरा
फिर लगे खेलने बना सर्प का घेरा–

भय कैसा किसका तनिक न मन में जाना
वे रहे खेलते खेल वही मनमाना
ज्यों खेले शिशु मां की गोदी में जाकर
वे खेल रहे थे खेल पूर्ण क्रीड़ा कर–

वे सखा लौटकर आये जब यह देखा
मुख पर कोई भी कहीं न भय की रेखा
फण उगल रहा था झाग शान्त थी ज्वाला
बालक ने विषपायी बन विष पी डाला–

यह देख देव था चकित थकित अभिमानी
सारा मद मत्सर गला हो गया, पानी
हो गया प्रकट लो मूल रूप में संगम
चरणों में प्रभु के नतशिर मिटा सघन तम–

"हे धीर-वीर नर श्रेष्ठ जगत के स्वामी
तुम कर्म शत्रु के नाशक अन्तर्यामी
पालक अग जग के व्यापक अनित अनन्ता
हे पुण्य प्रभाकर कटे पाप के फन्दा–

तव स्मरण मात्र से ऐसा धैर्य सुरंजन
मिलता जन-जन को करता सिद्ध प्रयोजन
तव अतुल पराक्रम से जो कीर्ति प्रकट है
वह धवल चंद्रिका के समान विस्तृत है"–

रे इस प्रकार कर श्रद्धा पूरित वन्दन
दायें कंधे पर बिठा नाचता संगम
हर्षित था उसका मन अपार श्रद्धा थी
प्रभु के चरणों में जगा प्रेम को बाती–

इस तरह अमरपुर संगम प्रमुदित लौटा
झरझर झरता था प्रेम भक्ति का स्रोता
जो भी प्रशस्ति गीता संगम ने गाई
पावन गंगा सी प्रभु को बहुत सुहाई–

लहराने वाली यशोकेतु को ऊपर
फैलाने वाली सुयश गन्ध को भूपर

चल रहा प्रभु का वरद गुणगान
आह मीठा स्वर मधुर थी तान
अप्सरायें गा रहीं जो गीत
कर रहीं मन को सहज ही क्रीत–

और भरती थीं सुगति नवप्राण
ध्यान से सुनते मुदित भगवान
रुक कभी जाती समय की चाल
वन्दना की एक अनुपम माल–

नयन को करतीं कभी शीतल
नृत्य नाटक देखते अविचल
स्वर्ग से उनको मिली जो भेंट
वस्त्र-भूषण माल मुक्ता श्वेत–

कर प्रदर्शित था कि प्रमुदित मन
और क्रीड़ा में सतत रत तन
खेलते थे मिल सखागण साथ
हाथ में लेकर किसी का हाथ–

पहुंच वन में खेलते थे खेल
फेंकते थे गेंद लेते झेल
दौड़ते रुक देखते थे दौड़
या स्वयं लेते अकेले होड़–

वृक्ष पर चढ़ते उतरते कूद
या किसी की आंख लेते मूंद
खोजने का दे उसे आदेश
आप छिपते ज्यों छिपा राकेश–

फिर प्रकट होकर बजा ताली
दे रहे आवाज वन माली
तोड़ते थे मिल सुगन्धित फूल
मत्त बन जाते स्वयं को भूल–

युद्ध का भी छिड़ गया लो रंग
वीर रस से उल्लसित सब अंग
और सेनानी बने नर राज
शत्रु से लोहा सभी लें आज–

देखना है शत्रु है वह कौन
रह सकेंगे हम कभी क्या मौन
देश पर रण के घिरें बादल
क्यों न लेकर अस्त्र दें हम चल–

रक्त में आने न पाये शीत
हार हम जानें न जानें जीत
और बजता शंख जब गम्भीर
युद्ध को सन्नद्ध बालक वीर–

व्यूह रचना कुशल रचते व्यूह
भेदना अत्यन्त कठिन दुरूह
बन गये प्रभु वीर बर बांका
शक्ति ने जिनको स्वयं आंका–

बन रहा उनका अलौलिक वेश
ज्यों खड़े रण में स्वयं देवेश

आज कैसा भय न किंचित भीत
काल भी आये स्वयं लें जीत–

और प्रभु लो बन गये मुनिराज
बन गया बालक सजा था साज
बैठ आसन पर पलौथी मार
मूंद आंखें ध्यान मुद्रा चार–

आगया बन कर कमण्डलु एक
खिच रही भवितव्यता की रेख
फिर सखा गण गये सब मिल बैठ
कर रहे प्रभु यम-नियम से भेंट–

वायु भी कम्पित दिशायें मौन
कौन रे बालक तपस्वी कौन
तोड़ कर प्रभु की नयन-कारा
फूटती आलोक की धारा–

हिल उठे लो वृक्ष अगणित डाल
झुक रहे ज्यों वन्दना में भाल
शीश पर कितने गिरे आ फूल
बन गई चन्दन स्वयं ही धूल–

एक दिन प्रभु ने सहज रस घोल
यों कहा मानो अमोलक बोल
बाल जन मम सखा प्रिय आमीर
चल करें क्रीड़ा सरोवर तीर–

था जहां आदेश कैसी देर
चल पड़े सब सखा प्रभु को घेर
चल पड़े सब साथ दासी-दास
झूमते थे देख भू आकाश–

जब चले उड़ने लगी पथ धूल
बिछ गये पथ में स्वयं ही फूल
खेल जल का आज प्रभु के संग
सोच सब के उल्लसित थे अंग–

फिर सभी पहुंचे सरोवर पास
थी सुकोमल बिछी दूर्वा राशि
कुछ घड़ी लेकर सहज विश्राम
लोक रंजन लोक लीला धाम–

सौंप दासी को वसन वर माल
जो खड़ी थी नत नयन नत भाल
और लेकर सब सखागण साथ
चल पड़े सब हाथ में ले हाथ

जब सरोवर में घुसे प्रभु वीर
हो गया था धन्य निर्मल नीर
चूम लें पग हर लहर की चाह
किन्तु तट भी था न बेपरवाह–

वह प्रथम ही पा चुका था स्पर्श
और प्रभु भी दे चुके थे दर्श
राज पथ में ज्यों मचे हलचल
आ रहे ले नृपति सेना-दल–

एक आकर झाड़ लेता पथ
ले नृपति को जायगा वह रथ
और सर का भी यही था हाल
आ गये थे प्रभु वहां सा बाल–

लग रही जल जन्तुओं में होड़
मछलियां जातीं लगाकर दौड़
हो गया जल केलिका प्रारम्भ
अब न कोई था किसी से कम–

एक ने दी गेंद जल में डाल
दूसरे ने ली कि सहज संभाल
कौन पकड़े गेंद को था क्रम
चाहता प्रत्येक पकड़ें हम–

क्रम यही चलता रहा कुछ देर
और प्रभु जा निकट पहुंचे तैर

हाथ में थी गेंद प्रभु के अब
देखते ही रह गये थे सब–

नील नभ-रह सा कमल सुन्दर एक
कहा प्रभु ने जल कमल को देख
"हम चलें लायें कमल को तोड़"
लग गई सब बालकों में होड़–

तैरते बालक सभी उस ओर
ज्यों उतरती हो धरा पर भोर
आज लहरें भी चलीं सब साथ
दे रहा हर दूसरे को मात–

तैरते वर वीर लीला धाम
पा उन्हें जल धन्य पूर्ण सकाम
तैरते जल में कि लीला अंस
तैर कर जाये सहज ज्यों हंस–

तैरती जल बीच जैसे मीन
देखकर गति भी स्वयं थी दीन
प्रभु प्रथम पहुंचे कमल के पास
रश्मियों के संग करता रास–

खुले शत दल मुक्त हास बिखेर
और भ्रमरों ने न की कुछ देर
उड़ चले कुछ गुनगुनाते गीत
बह चली रस धार लेकर प्रीत–

लो कमल अब कर कमल बनकर
रूपगंधा ज्यों कलश जल पर
चल पड़े धर शीश पर ललना
बन गई हो विश्व की छलना–

फिर सभी आये सरोवर कूल
खिल उठे यह देखकर वन फूल
कुहुक कोयल ने किया वन्दन
खेल कर आये धरा के धन–

आज हर्षित सभी वन उपवन
कौन वह जिसका न रीझे मन
क्या कहे सूरजमुखी अब बात
देखता था अंग सद्य स्नात–

वसन अब बहुमूल्य तन पर धार
कण्ठ में प्रिय डाल हीरक हार
गंध लेपन से सुवासित तन
स्कन्ध पर लहरे कि केश सघन–

और भी मादक अतुल वर-वेश
आह कुन्तल सघन घन से केश
सामने लज्जित नयन के कंज
काम का वह दर्प सारा भंज–

देवगण भी बैठ अपने यान
सोमरस-सा रूप करने पान
वन्दना में गीत के नव छन्द
चूमते जाकर गगन वर-वृन्द–

गा रहे गन्धर्व लीला-गान
छेड़ते वर रेणु पर मधु तान
नृत्य में थीं अप्सरायें लीन
चपल गति ले अलस नृत्य-प्रवीण–

वाद्य में मंजीर-मृदुल मृदंग
और वीणा का सजा वह रंग
जब मृदंगों पर पड़ी मृदु थाप
चाल भू की स्वयं जाती कांप–

स्पर्श पाकर के अधर का वेणु
बिछ गई पथ में सहज वन रेणु
देखती थीं, सब दिशा यह झाँक
देखती ही रह गई पर आँख–

धीरे-धीरे दिनकर ने
धरती पर डेरा डाला
जब बैठे काल वन माली
गूंथता आयु की माला–

कुछ फूल तोड़कर गूंथे
कुछ फूल गूंथने बाकी
या दीप शिखा का कम्पन
जलती रह-रह कर बाती–

ज्यों कुम्भकार रचता हो
माटी के खेल खिलौने
जो पके बन गये पूरे
अध पके रहे अन होने–

यों साथ समय के प्रभु का
भोला बाला पन बीता
कुछ आयु बढ़ चली आगे
कुछ कलश भर गया रीता–

होते थे राज महल में
नित नृत्य गीत आयोजन
अप्सरा नृत्य करती थीं
गन्धर्वों का मृदु गायन–

कविता रस धारा की भी
बहुधा रस वर्षा होती
हर्षित करती थी मन को
नयनों को कभी भिगोती–

लो भाव सुर सरी गहरी
भाषा यमुना उठ आई
छन्दों की सरस्वती भी
संगम बन कर लहराई–

क्या अलंकार के कहने
अनुप्रास छटा लो फैली

नव रस का घट रस पूरित
कविता दुल्हन अलबेली–

प्रभु थे रसज्ञ गुण ग्राही
रस पान काव्य घट भर-भर
कवि मानस गिरि शृंगों से
बहता कविता का निर्झर–

गम्भीर सुविस्तृत चरचा
जब धर्म-कर्म की होती
उपनिषद और वेदों में
खोजे जाते थे मोती–

कुछ उपाख्यान पौराणिक
कुछ सांख्य योग की बातें
उनके अपने ही दिन थे
उनकी अपनी ही रातें–

सुनते थे रुचि ले लेकर
मन भावुक अति तल्लीना
बल बुद्धि ज्ञान के आगर
वर मेधा परम प्रवीणा–

लहराई दिक् अंबर में
प्रभु यश की पुण्य पताका
ज्यों धवल चन्द्रिका लेकर
उतरे धरती पर राका–

बालापन से ही उनमें
थे तीन ज्ञान सुविचारी
ज्ञानी थे दिव्य दिवाकर
मति-अवधि और श्रुतिधारी–

जो भी सुनते या पढ़ते
सब आत्मसात हो जाता
विद्या सागर शिक्षा का
उनसे स्वाभाविक नाता–

उनकी यह सुयश सुगाथा
जब दूर-दूर तक फैली
ज्यों हर लेती तम निशि का
दीपक की जोत अकेली–

इक विजय दूसरे संजय
मुनि द्वय थे ज्ञानी-ध्यानी
प्रभु की गुण गाथा सुनकर
रह सके न स्थिर अभिमानी–

क्या वर्द्धमान बन प्रकटे
भगवान स्वयं तीर्थंकर
जिनकी आभा से ज्योतित
नभ तारक सूर्य सुधाधर–

कुछ भ्रमित चकित मुनि द्वय थे
शंका भी विषम करारी
चल समाधान कर आयें
शंका का बारी-बारी–

चल पड़े स्वयं पैदल ही
पग-यात्रा का आयोजन
जैसे पग-पग धर पथ में
बढ़ता जाता है जीवन–

मुनि से मत पूछो उसकी
क्या जाति या कि है पांती
क्या ग्राम-धाम या सूना
सारी धरती ही थाती–

यह सफर-सफर ही तो है
फिर नगर हो कि गिरि-कानन

दूरी तो दूरी ही है
कुछ कदम चले या योजन–

धीरे-धीरे जा पहुंचे
वे कुण्ड ग्राम वैशाली
गणपति का राजमहल था
सैनिक करते रखवाली–

थी दास-दासियां अगणित
थे द्वार-द्वार पर प्रहरी
शिखरों पर राज-महल के
गण चिन्ह पताका फहरी–

प्रासाद भवन के आगे
उद्यान एक था मनहर
वह आम्र कुन्ज था सुरभित
फल भार झुके थे तरुवर–

केकी के पंख खुले थे
कोकिला रसभरी बोली
किरणों ने उतर धरा पर
धरती पर केशर घोली–

हर फूल-फूल था सुरभित
हर कली-कली मुसकाई
रंगीन इशारे पाकर
लो हवा दौड़ती आई–

हिलमिल क्षण भर कलियों से
मादक मुसकान बिखेरे
चल दिया लूट कर सौरभ
मलयानिल आज सबेरे–

चढ़ती थी कुंज सघन में
कुदरत की रोज सगाई

कितनी ही बार खगों ने
उत्सव की सेज सजाई–

भंवरे उड़-उड़ करते थे
किसका मिल कर नव-वन्दन
या खोल रहे थे जाकर
मृदु कलियों का अवगुण्ठन–

किसका ले मौन सन्देशा
खंजन दूरागत आते
किन कजरारे नयनों का
आसव पी और पिलाते–

ऊँचे तरु की फुनगी पर
हारिल उड़कर आ बैठा
ज्यों आलिंगन में तरु ने
लतिका को सहज समेटा–

चन्द्रिका उतर धरती पर
दूर्वा का बना बिछौना
आ लेट गई वह मौना
करना था जादू-टोना-

सरवर था एक मनोरम
था नीर स्वच्छ-चमकीला
मछलियां तैरती करती
जल में प्रिय मधुरिम लीला–

सर तट पर बने अनेकों
वे संगमरमरी पनघट
जल छेड़ चली जाती थी
फागुन बयार आ नटखट–

सुन्दरियां राजमहल की
आतीं खनखाती पायल

करतीं किलोल जल-तल में
भर अंजलि में जल पल-पल–

कर मज्जन बांध सुवेणी
जल कलश उठा मस्तक पर
चलती थी कनक लता सी
धरती पर मन्द चरण धर–

लहरों का दोल बना कर
जब पवन झूलता झूला
जल की कल-कल क्रीड़ा में
रम गया-स्वयं को भूला–

सर की निर्मल गोदी में
तैरी हंसों की पांती
ज्यों रजत चंद्रिका जल में
उतरी चंचल मुसकाती–

जल को रक्तिम करती थी
आरक्त कमल की लाली
भ्रमिता-मराल को ढूंढे
अब कैसे कहां मराली–

बैठी थी ध्यानावस्थित
तट पर नत शिर बक माला
मानों मुनियों ने आकर
साधन-हित डेरा डाला–

आ गई तैरती कोई
इस ओर मीन अनजाने
झट दबा चोंच में उसको
बक लगा प्रेम से खाने–

मण्डूप उछल कर तट से
आ कूदा निर्मल जल में

उठ गया बगूला कोई
फिर हुआ समाहित पल में–

यों देख-परखते शोभा
प्रकृति की मुनि द्वय ज्ञानी
जा पहुँचे राजमहल के
उस प्रमुख द्वार पर प्राणी–

था खड़ा द्वार पर प्रहरी
सैनिक वर वेश सुसज्जित
दृढ़ सबल सजग तत्पर सा
जीवन सेवा में अर्पित–

देखा मुनि-द्वय ने प्रहरी
करता विनम्र अभिवादन
श्रद्धा-पूरित शब्दों में
बोला 'प्रणाम शत मुनिजन'–

क्षण ठहरें अभी निवेदन
कर दूं 'स्वामी से जाकर'
चल पड़ा उसी क्षण प्रहरी
थे जहां कि पूर्ण सुधाकर–

चन्दन के पूर्ण सुवासित
झूले में झूल रहे थे
कुछ भाव तरंगायित हो
भूले से भूल रहे थे–

वह विश्व ज्योति थी मुख पर
आकर हो रही समाहित
ज्यों सिन्धु सेज पर सुख से
हो रही चन्द्रिका शायित–

प्रहरी ने आ नत शिर हो
चरणों में किया निवेदन

'मुनि द्वय हैं यहां पधारे
आज्ञा हो कर लें दर्शन–'

स्वीकृति में शीश हिलाकर
'ले आओ' सादर बोले

चल दिया विनत हो प्रहरी
स्वर उठे वायु में डोले–

कुछ क्षण भी बीत न पाये
आ पहुंचे दोनों द्वारे
देखा बैठे झूले पर
जो अग-जग के रखवारे–

नयनों ने देखी झांकी
प्रभु की अनन्त छविधारी
झुक गये नयन मुनि द्वय के
दृष्टियां देख कर हारी–

था दिव्यामा से मण्डित
प्रभु का सतेज मुख मंडल
लहराता हहर-हहर कर
गंभीर ज्ञान अंबुधि-जल–

रह गये देखते दोनों
कुछ क्षण निज सुध-बुध भूले
निरसन था शंकाओं का
ज्यों जल में उठे बगूले–

मुनि द्वय की शंकाओं का
कुछ समाधान कर पाते
हो गईं स्वयं ही निरसित
चरणों तक आते-आते–

आश्वस्त हो गये दोनों
मन में अपार श्रद्धा थी

क्या पूछें बोल न पाये
रह गये देखते झांकी–

अवतरित हुए तीर्थंकर
बन वर्द्धमान धरती पर
विश्वास हो गया पूरा
थे यह विराट धरणी-धर–

पुलकित से पूर्ण विमोहित
रुक गई कंठ में वाणी
बह चली नयन से धारा
आनन्द अश्रु-कल्याणी–

कुछ रुक-रुक कर मुनि बोले
शंकाएं लेकर आये
अब मन में शेष न कुछ भी
ज्यों नभ से घन छट जाये–

तब ज्ञान ज्योति से मन का
अज्ञान तिमिर सब भागे
हे ज्योति पुंज करुणाकर
क्या छिपा तुम्हारे आगे–

अब सन्मति नाम सुधाकर
हम प्रभृति तुम्हारा धरते
जानेंगे विश्व - चराचर
निखरेगा और संवर के–

कहकर विनम्र-नत-शिर हो
युग पद का कर शत वन्दन
चल दिये सहज मुनि ज्ञानी
हो गया धन्य भव जीवन–

इस तरह आगे बढ़ा था
और जीवन काल
आयु का खग उड़ गया जा
बैठ यौवन डाल–

मन्दरागी-विश्व पति के
काल-रथ का चक्र
घूमता गतिवान - देता
खींच रेखा वक्र–

देखते ही देखते कब
तीस लम्बे काल
भूत में अन्तर्निहित हो
बुन रहे थे जाल–

आह स्वर्णिम स्वप्न सा
जाता समय भी बीत
कौन पाया है समय की
वाहिनी को जीत–

युग पुरुष उनमें, कि थी
ऐसी क्षयोपशम शक्ति
ज्यों हृदय में भक्त के
हो सहज पावन भक्ति–

एक दिन बैठे हुए जब
पा क्षणिक विश्राम
हो गई वह शक्ति जागृत
एक क्षण को वाम–

कोटि जन्मों के भ्रमण का
एक छाया-चित्र
आँख के आगे प्रकट था
ज्यों उदित हो मित्र–

ज्ञान के आलोक से
अज्ञान का तम दूर
आज चिन्तन के लिए
वह हो गये मजबूर

पूर्व जीवन की भ्रमण
घटना बनी अनमोल
जो रही जीवन प्रगति के
द्वार सारे खोल–

सोचते जितना अधिक
था हृदय उतना क्षुब्ध
किन्तु होते जा रहे वह
और शुद्ध प्रबुद्ध

झेल पाया पर न अन्तर्द्वन्द्व
उनका मन
वीतरागी बन गया था
मानसिक चिन्तन–

था सहज वैराग्य का
मन में उदय तत्काल
कण्ठ में तप रत्नत्रय की
डालकर अब माल–

मोह दुर्द्धर शत्रु का
जड़ से करेंगे नाश
आह क्यों अब तक जकड़ता
ही रहा यह पाश–

व्यर्थ अनमोलक समय के
दिन गये सब बीत
बन गया क्रेता समय
हम बने उसके क्रीत–

सालता है अब हमें
चारित्र्य क्रूर अभाव
भर सकेगा कौन आकर
हरित मन का घाव–

धन्य ऋषभादित सभी वे
धन्य तीर्थंकर
मुक्त हो सबने लिया था
पुण्य का घट भर–

(१)

तीस वर्ष बीते—

छल-छल रस छलक-छलक
जीवन का भरा कलश
सिर पर धर चले भले
जीवन की सांझ ढले
रीत गये पल-क्षण-मन पीते–
तीस वर्ष बीते–

शैशव ने धरे चरण
कोमल रंगीन किरण
सुख-दुख चिन्ता विहीन
क्रीड़ारत नित नवीन
लीलामय सकल विश्व जीते–
तीस वर्ष बीते—

वर्षा-घन शीत - ताप
तन पर सब सहे आप

भोला मन भाव काय
जीवन ही जग हिताय
जैसे जल क्रीड़ा में उछले मृदु-छींटे–
तीस वर्ष बीते—

शैशव जब चला पार
आया यौवन उभार
रात बनी रजत-धवल
दिवस बने स्वर्ण कमल
स्वप्न चषक-आसव छक पीते
तीस वर्ष बीते—

(२)

चुपके से आ बात किसी ने
अभी कही
लो रसभरी उमरिया गगरी
रीत रही–

अनजाने में बीत गये धीरे-धीरे
तीस वर्ष-शैशव के यौवन के मेरे
उषा-गगन में उतरी-वासन्ती आई
अलसित पलकें खुलीं-एक ले अंगड़ाई

गई रात भी दूर-धरा पर
रही सही
चुपके से आ बात किसी ने
अभी कही
लो रस भरी उमरिया गगरी
रीत रही–

लहर-लहर कर रही कूल का नवबन्दन
भू के आंगन में नाची रंगीन किरन
चलीं गाय-पथ धूलि गगन की ओर उड़ी
पगडंडी यह देख लक्ष्य की ओर मुड़ी

कलकल करती निर्झरिणी
कुछ और बही
चुपके से आ बात किसी ने
अभी कही
लो रस भरी उमरिया गगरी
रीत रही–

सुबह हुई तो दिन आता चढ़ जाता है
रहता जब तक रखता सबसे नाता है
सांझ लिये जब अन्धकार भू पर आया
अनायास मुरझाई सूरज की काया–

कालयामिनी लिये चली
रुक सकी नहीं
चुपके से आ बात किसी ने
अभी कही
लो रस भरी उमरिया गगरी
रीत रही–

कलियां खिलतीं-सुबह शाम-मुरझा जाती
जरा छीन लेती आ यौवन की थाती
तिमिर ब्याल आलोक सहज ही डस लेता
वही पराजित कल, जो आज बना जेता–

और मृत्यु के बाद सेज
बन गई मही
चुपके से आ बात किसी ने
अभी कही–

(३)

तोड़ अन्धकारा
क्यों न बहे-ज्ञान ज्योति धारा–

मोह शत्रु अन्तस में भाई
रोक रहा सुगति खोद खाई
लेकर वैराग्य का कुठारा
क्यों न करें मोह क्षार सारा
तोड़ अन्धकारा
क्यों न बहे ज्ञान ज्योति धारा–

स्वजनों का मोह नहीं छूटा
बने यही दस्यु-हमें लूटा
पहिले ही क्यों नहीं विचारा
सिर पर है धरा पाप भारा
तोड़ अन्धकारा
क्यों न बहे ज्ञान ज्योति धारा–

मोह की फसल जितनी बोई
उतनी पूंजी घर की खोई
राग द्वेष उग रहे अपारा
कर्म शत्रु का उदय हमारा
तोड़ अन्धकारा
क्यों न बहे ज्ञान ज्योति धारा–

फलस्वरूप जीव बहुत भटका
लहरों में फंसा-डूब-अटका
पा न सका-हाय फिर किनारा
ज्ञानी ने मोह को पछाड़ा
तोड़ अन्धकारा
क्यों न बहे ज्ञान ज्योति धारा–

(४)

करना ही होगा गृह-त्याग
धधक रही अन्तस् में आग–

यह विराट भूगोल-खगोल
किसकी प्रभु सत्ता के बोल
धन-वैभव भारी भू-भाग
जाने कब डस ले यह नाग
करना ही होगा गृह-त्याग
धधक रही अन्तस् में आग–

कर्म-क्रूर है पाप महान
यज्ञों में पशु का बलिदान
धर्म भाल पर काला दाग
खेलें हम शोणित का फाग
करना ही होगा गृह-त्याग
धधक रही अन्तस् में आग–

मन रंजन को हो आखेट
लें निरीह प्राणों की भेंट
यह कैसा मानव का राग
जाग गया मन का वैराग
करना ही होगा-गृह त्याग
धधक रही-अन्तस् में आग–

वर्ण-जाति में भेद-विभेद
जहां दृष्टि जावे उच्छेद
विषय भोग का जागा नाग
रूपसियों के प्रति अनुराग
करना ही होगा गृह-त्याग
धधक रही अन्तस् में आग–

लिप्साएं-मुंह रहीं पसार
रण में भीषण नर-संहार

सुख जाएगा जीवन-बाग
उड़ जाएगा-सांसा-काग
करना ही होगा गृह-त्याग
धधक रही अन्तस् में आग–

(५)

विश्व पढ़े समता का पाठ–

जग हिताय करना है त्याग
राज- विभव-गृहजन-भू-भाग
जन में प्रस्रवित करुण धार
हिंसा से बढ़ता भू-भार

समता के लिए बढ़ें हाथ
विश्व पढ़े समता का पाठ–

धरती पर फैल रहा पाप
जला रहा मानस संताप
मनुज-मनुज का बनता दास
मानवता हो रही निराश

दास-वृत्ति की न खुली गांठ
विश्व पढ़े समता का पाठ–

अनाचार ने खोले पंख
व्यभिचार फूंक रहा शंख
ऊंच-नीच में भी विष-भाव
पा न सके कहीं ठौर-छांव

पूजन को भी न एक घाट
विश्व पढ़े समता का पाठ–

पीड़ा से भरा नयन नीर
दुर्बल की और बढ़ी पीर

घिरती आ रही सघन रात
दूर बहुत दूर और प्रात
क्यों न चरण चलें सभी साथ
विश्व पढ़े समता का पाठ–

(६)

क्यों करें हम रूप पर अभिमान
चार दिन का जब कि यह मेहमान–
तरु-शिखर-गिरि शृंग पर
मैदान – पनघट – फैल
सौध– वन– उपवन –सभी
घर आंगनों से खेल
बात कर हर फूल से
चढ़ हर लहर पर
धूप गाती गान–
क्यों करें हम रूप पर अभिमान
चार दिन का जब कि यह मेहमान–
उम्र चढ़ती है धधकती
रूप यौवन ज्वाल
फूट पड़ते गीत अधरों
पर कि गति में ताल
और जब ढलती जरा की सांझ
धूप सी डूबी कि तम में
रूप की मुसकान
क्यों करें हम रूप पर अभिमान
चार दिन का जब कि यह मेहमान–
फैलती जाती कि मानस
रूप रस की गंध

हेम हिरनी सी बना
देती मनुज को अंध
नयन में नव ज्योति फैली
खींचती है वासना भी
और पुष्प कमान
क्यों करें हम रूप पर अभिमान
चार दिन का जब कि यह मेहमान–

अन्त में बनता वही
निरुपाय निःसंबल
जिन्दगी की सांझ में
वय सूर्य जाता ढल
रोक पाया कौन गति को
जब उदधि में काल के
डूबे मनुज के प्राण
क्यों करें हम रूप पर अभिमान
चार दिन का जबकि यह मेहमान–

(७)

झूठा रे वैभव ठाट-बाट
झूठी जग की यह लगी हाट–
रंगीन किरन-सा जग जीवन
रंगीन सभी शैशव यौवन
जब काल लगा कर खड़ा घात
देता है सब को सहज मात
झूठा रे वैभव ठाट-बाट
झूठी जग की यह लगी हाट–
मिथ्या जग सारा स्वाभिमान
वह रूप कि जिस पर है गुमान

सोते रहते उठ चली खाट
चल पड़ी लहर ज्यों छोड़ घाट
झूठा रे वैभव ठाट-बाट
झूठी जग की यह लगी हाट–

जो देख रहे केवल सपना
जब चले न कोई है अपना
माली चुनता है पुष्प छांट
रह गये धरा पर जात-पांत
झूठा रे वैभव ठाट-बाट
झूठी जग की यह लगी हाट–

ये नाते रिश्ते हैं बन्धन
खुल गये सभी जब हुआ गमन
सब जीवित के ही तात मात
जब हुआ ज्ञान हो गया ज्ञात
झूठा रे वैभव ठाट-बाट
झूठी जग की यह लगी हाट–

(८)

जो जग की पीड़ा का क्रन्दन
ऐसा स्वीकार नहीं बन्धन

नारी मृग-तृष्णा सी आशा
गति की अवरोधन परिभाषा
जिसने भी उसकी छांह गही
अन्तिम क्षण हाथ निराश रही
उसके पग-पायल की रुन-झुन
मायावी बन हरती जन-मन
जो जग की पीड़ा का क्रन्दन
ऐसा स्वीकार नहीं बन्धन–

यौवन के रस का भरा चषक
ले एक बूंद कोई भी चख
बढ़ती ही जाती तृषा न कम
जीने की अभिलाषा हरदम
भूला जग भूला ज्ञान सुधन
रंगीन स्वप्न का आवर्तन
जो जग की पीड़ा का क्रन्दन
ऐसा स्वीकार नहीं बन्धन–

अलकें श्यामल-विषधर भुजंग
कोमल लतिका से हेम अंग
पग चले धरा की रुके सांस
कर उठे सृष्टि का हुआ नाश
वे नयन देख लज्जित खंजन
बन्दन के नष्ट हुए पल क्षण
जो जग की पीड़ा का क्रन्दन
ऐसा स्वीकार नहीं बन्धन–

वह ही होगी मम परिणीता
सौन्दर्य सुरभि से भव जीता ?
जो युवति आज कल जरा ग्रस्त
निश्चित ही जीवन नष्ट-भ्रष्ट
छोड़ो रे भव का आकर्षण
जब चार दिवस का ही जीवन
जो जग की पीड़ा का क्रन्दन
ऐसा स्वीकार नहीं बन्धन–

(९)

जोड़-तोड़ घर महल बनाते–
काल बली लेचला पकड़ जब
यहीं पड़े रह जाते–

जननी जनक बन्धु सुत दारा
कोई काम न आते
शैशव खेल जवानी सोये
जरा देख पछताते
जोड़-तोड़ धर महल बनाते–
दुनियां की सुन्दर बगिया में
फूल - फूल मुसकाते
भंवरे उड़ते सौरभ बहता
पंछी गीत सुनाते–
जोड़-तोड़ घर महल बनाते–
सांझ हुई तम में सब डूबे
जो अब तक इतराते
अपने ही हाथों रे अपनी
डोली खूब सजाते
चले बैठ पीछे चलते सब
नयना नीर बहाते–
जोड़-तोड़ घर महल बनाते–

(१०)

तात-मात भगिनी सुत दारा
कौन है हमारा–
जीवित के बहिन और भाई
पत्नी भी जीवन में आई
ज्ञान गया गई भक्ति माया
कुछ भी तो हाथ नहीं आया
छोड़ चले पीछे भव सारा
तात-मात भगिनी सुत दारा
कौन है हमारा–

शैशव में खेल बहुत खेले
यौवन में जुड़े बहुत मेले
सपने रंगीन बहुत देखे
जीवन की चाह और लेके
लहरों ने दूर से पुकारा
तात-मात भगिनी सुत दारा
कौन है हमारा–

धरा धाम राज ठाट ऊंचे
मेले ज्यों उठ रहे समूचे
कितने ही राज भले जीतें
जाएंगे किन्तु हाथ रीते
पढ़ना है उम्र का पहाड़ा
तात-मात भगिनी सुत दारा
कौन है हमारा–

सबका ईश्वर है एक–
एक उसके बेटे
सब बैठ नाव में एक
साथ मिलकर खेते–

लेकिन कितना यह मनुज
मूढ़ हा हन्त खेद
मानव – मानव के बीच
वर्ण का विषम भेद–

ये धन कुबेर नित बना
भव्य प्रासाद सदन
सुख की अभिलाषा और
अधिक जागृत पल क्षण–

वह भी मानव-गृहहीन
कि निःसंबल निर्बल

रे दीन हीन जो सदा
भोगता दुख केवल–
यह भेद कोढ़-सा
फैला भू के सीने पर
स्वामी-सेवक के बीच
आह कितना अन्तर–

ब्राह्मण कहता मैं ज्ञान-ध्यान
जग का दाता
क्षत्रिय कहता मैं मात्र
इसी भव का त्राता–

ये कृषक और वणजारे
देते हैं अन-धन
लेकिन सेवा हित-मात्र
क्षुद्र का ही जीवन–

ब्राह्मण रखते हैं घृणा–
भाव अपवित्र मान
जब किसी धर्म में नहीं
कहीं ऐसा विधान–

क्षत्रिय जिसकी अभिलाषाएं
ऊर्ध्वा – गामी
सम्राट–चक्रवर्ती–विराट
भू का स्वामी–

फिर कौन विश्व में उसका
जो कर सके दमन
अवतार धर्म का मान प्रजा
कर रही नमन–

करना ही होगा आज हमें
यह मोह भंग
ये सतरंगी किरणों से
रूप – स्पर्श – गंध–

रे वही साधु है जिसकी
कोई नहीं जाति
क्या धर्म देश बन्धुल
या कोई तात-मात–

सरिता से जिसके बढ़ते
रहते सतत चरण
जो परिव्रज्या का करे
पूर्व ही प्रथम वरण–

जो मिल जाये खा लेता
या भूखा रहता
इस तन पर ही तो शीत
घाम वर्षा, सहता–

जिसका रहता है जग हिताय
ही व्रत-चिन्तन
पग गति को कोई बाँध
नहीं पाया बन्धन–

जो सार तत्व का मात्र
ग्रहण करता विवेक
जो खींचा करता सदा-भूमि
पर अमिट रेख–

छोड़कर भव मोह बन्धन
तोड़ – गृह कारा
राज्य-लक्ष्मी से विमुख हो
घोर तप धारा–

मुक्ति-पथ पर चल पड़े
दो पग सहज आगे
हो गया पथ धन्य
भू के भाग भी जागे–

□

तृतीय सर्ग

तृतीय सर्ग

एक बार जब वैरागी बन
हो जाता बड़-भागी
ज्ञान-ज्योति नयनों के सम्मुख
जगमग करती जागी–
दिव्य तेज से ज्योतिर्मय हो
दीप्तिमान मुख-मंडल
ध्यानावस्थित हुए तपस्वी
मात्र ज्ञान का संबल–
धन-वैभव से आँख मींचकर
ज्ञान ज्योति में लीना
बारह भावों के चिन्तन में
थे दिन-रात प्रवीणा–
कैसी वर्षा शीत-ताप का
ध्यान उन्होंने छोड़ा
भूख-प्यास सुख-दुख का अपना
पंथ अचानक मोड़ा–
जीवन में वैराग कि थे वह
अब सच्चे वैरागी
राज्य विभव को छोड़ विजन में
तप के प्रति अनुरागी–
तात-मात प्रिय ममता छोड़ी
सुहृद स्वजन से नाता
जब नाता है छोड़ मनुज सब
कोई काम न आता–

जिस पथ में युग चरण धरें वह
पथ बन गया कहानी
सूरज - चन्दा धरती - अंबर
देते नई रवानी–
साधू का घर कहीं न होता
रमता जैसे पानी
जात-पाँत मजहब की काली
गहरी रेख मिटानी–

चल रहा था भावनाओं
का सतत चिन्तन
एक के पश्चात् आता
दूसरे का क्रम–
उस सबल वैराग्य के प्रति
था हृदय आकुल
मोह की हर गांठ जैसे
स्वयं जाए खुल–
चिन्तना के पग बढ़े
पहिले अनित्य की ओर
ज्यों उषा के उदय से
हर्षित धरा नभ-छोर–

अनित्य भावना

यम के पाशों में घिरी आयु
जब तक इच्छा हो मुक्त रखें
या बन्द करे यह प्राणवायु–

तीनों लोकों में अनुशासित
रे सबल काल का राजतंत्र
इसकी वाणी आदेश मंत्र से
प्रतिगुञ्जित सब दिक्-दिगन्त
क्षिति जल पावक अंबर समीर
यम के समक्ष हैं सब नत शिर
ले जाता अपने साथ घेर
जब आता महा प्रलय-सा घिर
ये चन्द्र और सूरज सतेज
फिर भी ग्रस लेता सहज राहु
यम के पाशों में घिरी आयु

तन रोग व्याल का महाविवर—
रे जरा भयानक वन विषधर
लेता यौवन को फण में भर—
इन्द्रिय सुख केवल आकर्षण
जैसे सतरंगी इन्द्र धनुष
सुन्दर सुन्दरतम होकर भी
ये नाशवान अस्थिर सुख-दुख
भव के नर-तन में प्राण वायु
बहती अजस्र बन धार प्रबल
उसको भी लेकर चली मृत्यु
जो आज नहीं रह पाती कल
सबको जाना सब हैं अनित्य
कितना ही कोई रहे संवर
तन रोग व्याल का महा विवर

यमराज सर्वनाशी महान्—
ले जाता आपने सथ जीव

जब समय आ गया पकड़ कान–
यौवन भव जीवन सुखदाता
आता जीवन में लगा होड़
छक-छक कर पीता रूप चषक
दे रहा उम्र को नया मोड़
लेकिन यौवन भी नष्ट हुआ
जब जरा सांध्य घिरकर आई
बादल-सी काली मौत सघन
अपनी गोदी में भर लाई
कोई यौवन में रोग-ग्रस्त
था दुःख से पीड़ित कहीं प्राण
यमराज सर्वनाशी महान्–

ये पाप कर्म दें झुका भाल–
ये निन्दनीय अविवेकी देते
सहज नर्क में हमें डाल–
लेकिन रे यह भी सारहीन
जल के बुद-बुद से हैं चंचल
यह लक्ष्मी भी गतिशील कि ज्यों
नभ के चलते फिरते बादल
मानव अग-जग के व्यापक कन
सब नाशवान सब हैं अनित्य
क्षणभंगुर जग की प्रीति रीति
यह जान मोह से हटे चित्त
हम करें सर्वदा क्यों न मोक्ष–
साधन जब सम्मुख खड़ा काल
ये पाप कर्म दें झुका भाल–

अशरण भावना

कैसे अशरण को मिले शरण–
ज्यों फंसे व्याघ्र नख में बालक
करनी ही पड़ती मृत्यु वरण–
नर रोग मृत्यु चंगुल में फंस
जीवन से होते उदासीन
है भला कौन जो यम पाशों से
प्राणों को ले सहज छीन
जब काल द्वार आ हुआ खड़ा
मंत्रादिक औषध सभी व्यर्थ
चल दिये प्राण मां-बाप त्रिया
के रोने का कुछ नहीं अर्थ
उनकी ही सद्गति उन्हें मोक्ष
जो अर्हन्ता के गहें चरण
कैसे अशरण को मिले शरण–

तप-दान रत्नत्रय जिन पूजा–
ये पाप ताप के विध्वंशक
उनसे अनिष्ट का दल जूझा
मिथ्या देवों की शरण गहे
नर मूढ़ मन्द मति अज्ञानी
रे नर्क उदधि में डुब तिरे
गति कभी न पाता अभिमानी
है बुद्धिमान वर ज्ञानी नर
तप धर्मादिक की गहे शरण
दुख हों विनष्ट ज्यों करें नाश

तम सूर्योदय का प्रथम चरण
गुणमय अनन्त सुख का सागर
वह शरण रत्नत्रय है दूजा
तप दान रत्नत्रय जिन पूजा–

संसार-भावना

यह जग अनादि अस्थिर अनन्त–
फिर भी इसमें सुख देख रहे
जन अज्ञानी मति मूढ़ मन्द–
ज्ञानी-ध्यानी की समझ और
यह जग नरकादिक का कारण
रे जीव पिण्ड ही जब नश्वर
नश्वर जगजीवन यौवन-धन
रहता अविवेकी ही जीवन में
विषय-वासना का प्रसंग–
दिन-रात पुष्प शर से नर के
मन को भेदा करता अनंग
कर पकड़ चला वह यम कराल
लप-लप जिह्वा कर खोल दन्त
यह जग अनादि अस्थिर अनन्त–

यह जीव सतत गति भ्रमणशील–
भयभीत भटकता ही रहता
गति कर्म व्याल जाए न लील–
जब जन्म लिया तो मृत्यु अटल

रे जन्म मृत्यु हैं शाश्वत क्रम
यह जीव चराचर अग-जग में
पाता रहता है भ्रम ही भ्रम
चारों गतियों में पहुंच जीव
कोई ऐसी योनी न शेष
जिसको कर पाया ग्रहण नहीं
या छोड़ नहीं पाता विशेष
चलती-फिरती उठती-गिरती
लहरों वाली ज्यों कहीं झील
यह जीव सतत गति भ्रमशील

करता ही रहता जीव भ्रमण
मिथ्या पापादिक कारण से
रे पाप कर्म का हुआ सृजन—
जब धर्म ही न रह गया शेष
क्या जीवन में बच रहा और
भव में यह जीव भटकता है
सहता रहता यातना घोर—
अन्यथा रात की तरह सहज
बढ़ता जाता है अन्धकार
ऊंची लहरों में डूब तिरे
भव सागर की महिमा अपार
इसलिए धर्म के पालन से
पा जाते इच्छित मोक्ष सुजन
करता ही रहता जीव-भ्रमण—

एकत्व भावना

भव में रह कर भी रहा एक–
जब जन्म लिया पाया उसने
उसके ही हाथों खिंची रेख
वह एक अकेला ही अब तक
जो रहा भटकता जीवन-भर
या एक वही पीता आया
सुख-रस की गागर को छककर–
वेदना आदि दुख की पीड़ा
सहनी पड़ती है एकाकी
उसके सिर पर ही धरा बोझ
उसके ही सुख-दुख की झाँकी
आखेट वही बनता यम का
या वही नियति का बना लेख
भव में रहकर भी रहा एक–

जाना एकाकी उसे पार–
उसको ही रोना चिल्लाना जब
पड़ती यम की विकट मार–
रे एक अकेले ही उसको
करना निज सन्तति का पालन
तन से कठोर श्रम करे-या कि
हो पाप कर्म-दूषित जीवन–
उसको ही मंजिल तय करनी
वह एक अकेला पथ-राही
उसके ही सुख-दुख शीत-घाम
मिलती विपत्तियाँ अनचाही–
है मोक्ष तभी उपलब्ध उसे
सम्यक्त्व कर्म का हो विचार
जाना एकाकी उसे पार–

प्राणी तू सबसे पृथक मान–
तू सब जीवों से अलग-थलग
तेरा ऐसा ही है विधान–
ये जन्म-मृत्यु ये धर्म-कर्म
सब दुख सुख भी हैं अलग-अलग
ये तात-मात भगिनी बन्धुल
सबका अपना जग अपना मग–
यह जीव पिण्ड है प्राण जहां
जब तक जीवन है साथ-साथ
जब चढ़ा शीश पर काल बली
हो गये दूर सब झटक हाथ–
दारा भी तेरी नहीं हुई
जिसकी तुझको चिन्तना ध्यान
प्राणी तू सबसे पृथक मान–

आत्मा से भी मन वचन दूर–
जब तन ही साथ न दे पाता
हो गई मृत्यु बन गया घूर–
सुख-दुख जो जीवन में देखे
अपने ही कर्मों के कारण
इन्द्रियां हमारी ही होकर
अन्यत्व भाव करती धारण–
यह ज्ञान-रूप आत्मा तन में
इसके सम्मुख सब छद्म वेश
इन्द्रियाँ नहीं कुछ और मात्र
जीवित के सारे राग-द्वेष–
तन का आत्मा से नहीं मेल
यह भूल नहीं मति मन्द क्रूर
आत्मा से भी मन-वचन दूर–

इस आत्मा का है ज्ञान रूप–
तन से है उतना ही विभिन्न
ज्यों प्रजा बीच हो मान्य भूप–
ये कर्म मयी वस्तुएं सदा
रहती आत्मा से दूर-दूर–
अविवेकी अज्ञानी नर को
छलती है छलना सदा क्रूर–
आत्मा का गुण सम्यक् दर्शन
बस यही एक तो है अपना
तनके सुख-दुख जीवन्त नहीं
जैसे साकार नहीं सपना–
योगीश्वर ही तप के बल पर
दें छोड़ सहज भव अन्ध कूप
इस आत्मा का है ज्ञान रूप–

अशुचि भावना

धिक् रुधिर-वीर्य से रचित अंग
मल-मूत्रादिक से भरा हुआ रे
सप्त धातु का बना संग
जो अंग अपावन इतना यह
फिर इस पर आस्था रखे कौन–
जिस थल पर धधका करती है
हरदम रोगादिक अग्नि-मौन–
रे भूख-प्यास हा जरा-रोग
करते निवास काया-कुटीर
सतजन कर पाते नहीं वास

क्षण भर में हो जाते अधीर–
इस तन में ही तो बना विवर
आकर रहता विषधर अनंग
यह रुधिर वीर्य से रचित अंग–

धिक् पाप-पुंज का तन अशुद्ध–
ऐसे निकेत में रहे कौन
होती विकृति जिसके विरुद्ध
इतना अशुद्ध पापी नर-तन
करता अंगों की विकृत वास
दूषित कर भव्य वसन मंडित
माटी का माटी में विनाश–
ज्यों देख टोकरा मैले का
भरती मन में विकृति गहरी–
फिर चर्म-अस्थि में सुन्दरता
कैसे क्या कभी कहीं ठहरी–
रे और अशुचि मुख की छवि भी
सुन्दर ऐसी ज्यों धवल दुग्ध
धिक पाप पुंज का तन अशुद्ध–

तन सूखे या बन जाए लोह–
जब भस्म एक दिन होगा ही
क्यों व्यर्थ करें हम प्रीति-मोह–
रे उचित यही तप साधन से
हम करें न क्यों तन का शोषण
रोगादि दुखों का कारण तन

पा रहा अन्न का जो पोषण
तप से यदि शोषण किया जाय
अन्तिम क्षण मिलता हमें मोक्ष–
यह ऐसी पावन गीता है
सुख-शान्ति हमें देती परोक्ष–
कैवल्य ज्ञान की करें सिद्धि
जागे तन के प्रति विषम द्रोह–
तन सूखे या बन जाय लोह–

आस्रव-भावना

पुद्गल समूह ही कर्म रूप–
आते रागादिक भावों से
रागी आत्मा में बन अनूप–
या कहें आगमन कर्मों की
भावना हमारी ही आस्रव–
यह है अनन्त दुख की दाता
पाता जिनको रह रहकर भव–
ज्यों सागर में छिद्रों वाला
जलयान कभी चल सका कहीं–
जल में प्रवेश से डूबेगा
कोई रक्षा कर सके नहीं–
कर्मों से ही तो जीव यहाँ
रे भव सागर में रहा डूब
पुद्गल समूह ही कर्म रूप–

इस आस्रव के कारण अनन्त–
अविवेकी मत से उदय हुए
मिथ्यादिक पाँचों तत्त्व हन्त
बारह प्रकार की अवरति पर
पंद्रह प्रमाद की पाप खान–
पच्चीस कषायें और हाय
पंद्रह योगों का चले गान–
इन विषम कारणों को जग में
रे महाकठिन कर पांय दूर–
ये भव को पीड़ित रखें सदा
आतंकित करते रहें क्रूर–
कर्मास्रव कारण को करते
सम्यक् चरित्र से दूर सन्त
इस आस्रव के कारण अनन्त

कर्मों की भारी बाढ़ शोक
है व्यर्थ ज्ञान जप-तप उनका
जो सके ज्ञान से नहीं रोक–
उतनी ही दुर्जय मोक्ष प्राप्ति
जितनी है दुर्बल ज्ञान शक्ति–
केवल कर्मागम रोक सके
अध्ययन शास्त्र दृढ़ ध्यान भक्ति–
वे भव ज्ञानी-ध्यानी सुजान
उनका संयम होता समर्थ–
वे मोक्ष-सिद्धि के अधिकारी
उनका जप-तप जाता न व्यर्थ–
वे निर्विकल्प कर शुद्ध ध्यान
कर कर्मास्रव से मुक्त लोक–
कर्मों की भारी बाढ़ शोक–

संवर-भावना

यह मोक्ष प्रदायिक भाव संवर
कर्मास्रव आगम रोक रहे
व्रत गुप्ति योग से मुनिः प्रवर–
कर्मास्रव आगम के निरोध में
हैं समर्थ कारण केवल–
ये धर्म शुक्ल शुभ ध्यान रूप
अभ्यास ज्ञान उत्तम अविचल–
चारित्र त्रयोदश होते हैं औ
धर्म-कर्म गिनती में दस
बारह भावन के साथ धरें
बाईस परिषहा अपने वश–
निर्मल सामायिक और पांच
चारित्र सजा जीवन के वर–
यह मोक्ष प्रदायिक भाव संवर–

जो कर्म संवर करते प्रतिदिन–
ऐसे योगीश्वर कर्म संवर–
के साथ निर्जरा लेते गिन–
उनके उत्तम गुण सर्व विदित
दिनकर प्रकाश से हुए प्रकट–
तन की पीड़ा सहने पर भी
धर चले संवर का मंगल-घट–
जो स्वयं नष्ट कर पाप कर्म
पुण्यों को करते रहें मुखर–
सम्यग्दर्शन चारित्र्य ज्ञान का
कोष अमर कर जीवन भर–
उनको दुर्लभ है नहीं मोक्ष
बन जाता उनके लिए तुहिन–
जो कर्म संवर करते प्रतिदिन–

निर्जरा भावना

तप के द्वारा कर्मों का क्षय–
अविपाक निर्जरा के बल पर
करते विनष्ट योगी निर्भय
सविपाक निर्जरा जीवों में
आती है कर्मोदय पर ही–
उनमें स्वभावगत निर्बलता
की धार सदा ही चली बही–
त्यागो रे, यह भीषण विषधर
इससे कर्मोदय नित-नवीन–
जिसके समक्ष नत हो जाता
कोई भी प्राणी दीन हीन–
जैसे-जैसे निर्जरा क्रिया
हो गई समापित पुण्योदय
तप के द्वारा कर्मों का क्षय–

योगी करते निर्जरा योग–
मुनि और ज्ञानियों के द्वारा
होता है इसका पूर्ण भोग–
जैसे-जैसे बढ़ते योगी
निर्जरा पन्थ से हो आगे–
आती समीप है मोक्ष सुगति
रे पाप-कर्म आगे-आगे–
जब कर्मों की निर्जरा स्वयं
आकर हो जाती है पूरी–
योगीश्वर तापस मुनियों की
आती है सरक स्वयं दूरी–

निर्जरा साधना कर लो रे
यह देख समझ भव पन्थ लोग–
योगी करते निर्जरा योग–

निर्जरा पूर्ण सुख की दाता–
यह है अनन्त गुण युक्त और
रे मुक्ति प्रदायिनि जगत्राता–
इसकी सेवा में सदा-सर्वदा
रत हैं गणधर तीर्थंकर–
यह दुखातीत सबको समान
सुख बांट रही अंजलि भर-भर
यह करती है संसार नाश सबके
समस्त तापों का क्षय–
वे करें निर्जरा का साधन
जिनको लगता सांसारिक भय–
तप परिषह सहना है कठोर
निर्जरा ज्ञान यह बतलाता–
निर्जरा पूर्ण सुख की दाता

लोक भावना

यह छह द्रव्यों से बना लोक–
अध-मध्य-ऊर्ध्व त्रय भेद रूप
भव को कह देते बजा ठोक–
हम अकृत्रिम हम अविनाशी
हममें क्या कोई रूप भेद–

पर अधो भाग में वही सप्त
रे भूमि नरक की बनी खेद–
वे सभी अशुभ दुख की दाता
जिनमें निर्मित उनचास पटल–
लख चौरासी आवास बिवर
फण उठा झूमते व्याल प्रबल–
ये अधो लोक पापी जन को
दे रहे यन्त्रणा सहज रोक–
यह छह द्रव्यों से बना लोक–

यह पूर्वाकृत पापों का फल–
मिथ्यात्वी जीवों को देता रे
नारकीय यन्त्रणा प्रबल–
है नरक लोक वह जीव जहां
दुःख और यन्त्रणा करें वहन–
है नरक लोक वह जहां पाप
अज्ञान तिमिर छा रहा गहन–
मानव विवेक से शून्य यहाँ
बनकर रहता है दीन-हीन
होते रहते हैं सदा यहां
बल साहस धैर्य सुशक्ति क्षीण–
संत्रास घुटन पीड़ा कुण्ठा
जीवन में पाते हैं केवल–
यह पूर्वाकृत पापों का फल–

यह मध्यलोक अतिशय विशाल
इसमें कितने ही बसे द्वीप
खारे समुद्र का बिछा जाल–

हैं पाँच बड़े इसमें सुमेरु
गिरि पर्वत भी हैं और तीस–
वक्षार एक सौ अस्सी गिरि
लम्बे विशाल गजदन्त बीस–
पर्वत भी इक्वाकार चार
कुरुवृक्ष मानुसोत्तर गिरि दश
इतने इनके उत्तुंग शिखर
मानव चढ़ने में पूर्ण विवश–
ढाई द्वीपों में फैला यह
मानों विराट का सजा भाल–
यह मध्यलोक अतिशय विशाल

यह मध्यलोक है नगर लोक–
शत एक और सत्तर इसके
छविमान नगर अति विगत शोक–
हैं कर्म भूमि पावन पंद्रह
जो मोक्ष-प्रदायक पुण्य धाम–
कितने ही निर्झरिणी-सरवर
निर्मल जल मन पाता विराम–
श्री आदि देवियां भी हैं षट्
छह हृदयों का आवास निलय
आठवें द्वीप हैं नन्दीश्वर
जिसका अंजन गिरि बना वलय–
उस पर बावन मंदिर शोभित
नत शिर हो जाता भव विलोक
यह मध्यलोक है नगर लोक–

ये चन्द्र सूर्य गतिमय अनन्त–
ये तारक गृह नक्षत्र सभी
इस मध्य लोक में प्रभावन्त–
कितने असंख्य ज्योतिषी देव
रे सभी यहीं हैं विद्यमान–
जिनके विमान के मध्य स्वर्ण
जिन मन्दिर में प्रार्थना गान–
जिनके समक्ष श्रद्धा विनम्र
नत शिर विद्याधर भक्त विमल
जिनके अधरों पर भक्ति गीत
फूटें ज्यों सरिता का कल-कल
श्रद्धा पूरित एकत्र हुए–
कितने तापस मुनि वृन्द सन्त
ये चन्द्र-सूर्य गतिमय अनन्त–

रे मध्यलोक के ऊर्ध्व अपर–
यह मध्यलोक जिसकी समता
क्या कोई कर पाये भू पर
हैं कल्प स्वर्ग सौधर्म आदि
भी एक नहीं पूरे सोलह–
उनके ऊपर नव ग्रैवेयक
नव अनुदिशि झांक रहे रह-रह–
औ पांच अनुत्तर भी उनमें,
ये कल्प स्वर्ग से भी अतीत–
युग बोध काल का ज्ञान नहीं
जायें कितने ही कल्प बीत–
उनके विमान करते पावन
भू-गिरि शृंगों को छू-छू कर
रे मध्य लोक के ऊर्ध्व अपर

ये दृश्यमान स्वर्गिक विमान–
चौरासी लख से सभी अधिक
बन चले वाहिनी सकल यान–
इन्द्रिय सुख के दायक विमान
हैं सब में त्रेसठ भव्य पटल–
जो विगत जन्म में रहे जीव
विद्वान रत्नत्रय तप निर्मल–
धर्मादिक कर्मों में आस्था
अर्हन्त तथा निर्ग्रन्थ भक्त–
जिनका उत्तम आचरण और
वे रहे जितेन्द्रिय भी सशक्त–
ऐसे ही भव को मिले सुगति
स्वर्गादिक सुख पायें महान
ये दृश्यमान स्वर्गिक विमान–

रे स्वर्ग लोक का अग्र भाग–
करती मंडित वह रत्न जटित
प्रिय मोक्ष शिला ज्यों प्रथम राग–
कितनी भारी कितनी विशाल
योजन में पैंतालीस लाख–
आसीन सिद्ध भगवान शिला पर
ध्यान मग्न ज्यों कमल पांख–
वह है अनन्त सुख गण विराट
वह है अनन्त गुण ज्ञान ध्यान–
वह ज्योतिर्मय ज्यों तमस चीर
उतरे धरती पर नव विहान–
ऐसे प्रभु को शत-शत प्रणाम
चरणों में प्रति पल बढ़े राग–
रे स्वर्ग लोक का अग्र भाग–

बोधि-दुर्लभ भावना

चारों गतियों की गति अनन्त–
इस भंवर जाल में भटक कहीं
करता रह जाये कर्म बन्ध–
भावना बोधि-दुर्लभ उनको
कैसे हो-हैं जो जीव मन्द–
है प्रथम कठिन गति में प्रवेश
कुछ अन्य अपेक्षित यहां बन्ध–
पंचेन्द्रिय की पूर्णता और
वह आर्य क्षेत्र हो उत्तम कुल–
दीर्घायु बुद्धि में निर्मल तम
काषाय मन्द हो ज्ञान विपुल–
मिथ्यात्व न रह पाये अशेष
विनयादि श्रेष्ठ गुण दयावन्त
चारों गतियों की गति अनन्त–

गुरुदेव शास्त्र उपलब्धि कठिन–
सम्यग्दर्शन की शुद्धि ज्ञान
चारित्र धार बहती पल छिन–
इससे भी और कठिन जग में
रे दोष हीन मानव का तप–
पर ज्ञानवन्त तप में तप कर
बनते विशाल ज्यों महा विटप–
करते विनष्ट ही सकल मोह
होता उनसे ही बोधि सफल–
उनको ही होती मोक्ष प्राप्ति
वे शुद्ध काय ज्यों जल निर्मल–
लेकिन मन में जिनके प्रमाद
उनका जीवन ज्यों डूबा दिन–
गुरुदेव शास्त्र उपलब्धि कठिन–

धर्म भावना

है धर्म वही जग में उत्तम
भव-सिन्धु अतल में डूब रहे
जीवन की भी आशा लघुतम–
ऐसे जीवों का हाथ पकड़
मझधारों से ले सहज खींच–
निर्जीव प्राण को प्राणों के
अमृत रस से दे भले सींच–
दे बिना याचना के उनको
अर्हन्त मोक्ष पद मंगल मय–
रह सकें जहां वह जीव मुक्त
विचरण कर पायें बन निर्भय
वह धर्म-ज्ञान की ज्योति चीर
अज्ञान तिमिर देता निर्मम–
है धर्म वही जग में उत्तम–

इस धर्म श्रेष्ठ के दश लक्षण–
हो क्षमाश्रेष्ठ मार्दव आर्जव
रे सत्य शौच संयम का प्रण–
तप त्याग अकिंचन ब्रह्मचर्य
जीवन का शाश्वत हो विधान–
धर्माचारी जन करें सदा
आचरण इसी का धर्म मान–
सब पाप कर्म हों नष्ट स्वयं
हो जाय मोक्ष का पथ प्रशस्त–
सारी दुर्लभ वस्तुएँ सुलभ
सब रोक शोक हों चूर्ण ध्वस्त
फिर धर्म रूप मंत्रों के बल
हो मोक्ष नारि का आलिंगन–
इस धर्म श्रेष्ठ के दस लक्षण–

चल रहा एकान्त में था
भावना चिन्तन
हो रहे वैराग्य मण्डित
वीर प्रभु के क्षण–

हो गया वीर प्रभ का जब
मन वैरागी
रे दिव्य ज्योति की आभा
सम्मुख जागी–
आठों लोकान्तिक देव
सभी ने मिलकर
निज अवधि ज्ञान से किया
सुनिश्चित गुण धर–
हम करें आज तप
कल्याणक आयोजन
जिसके रस से हो रस विभोर
भव जन मन–
एकत्र सभी हो आये
प्रभु सेवा में
थी अभिलाषा प्रभु उठें
गिरे को थामें–
थे स्वयं पूर्णश्रुत
द्वादशांग अभ्यासी
चिन्तता बन चुकी थी
विराग की दासी–
थे चौदह पूर्ण श्रुतज्ञ
तपोव्रत धारी

मन से स्वभाव से बाल
ब्रह्म आचारी–
उनमें भी कुछ मुनिवर्य
देव मन भाये
तप कल्याणक सम्पन्न
कराने आये–

वे कर्मवान निश्छल मन
निर्मल वाणी
था सेवा में नत स्वयं
मोक्ष सम्मानी–

प्रभु थे प्रयत्नरत वीर
कर्म अरि दानव
वह दिव्य पुरुष थे आज
भव्य भव मानव–

सेवा में प्रस्तुत देव
महान मुनीश्वर
श्रद्धा विनम्र नत उठे
प्रार्थना के स्वर–

"जय वीर कर्म अरि नाशक
हे जग के स्वामी–
गुरु जन के भी तुम गुरु
अनन्त अन्तर्यामी–

तुम ज्ञानी जन के बीच
श्रेष्ठ ज्ञानी ध्यानी
तुममें विवेक गुण अतिशय
बुद्धि सुसम्मानी–

क्या ज्ञान तुम्हें दें स्वयं
तुम्हीं जब शुद्ध-बद्ध

तुम अखिल विश्व के ज्ञानसिन्धु
जय हे प्रबुद्ध–

तुम हो सुबुद्धि दायक जग के
हे ज्ञान सूर्य
जग के अज्ञान तिमिर में
तुम हे प्रभा पूर्य–

जैसे दीपक निशि सघन अंध
तम में जलकर
करता प्रकाश रे लुटा
प्रभा अंजलि भर-भर–

हे देव त्रिज्ञानी मोह रूप
था शत्रु प्रबल
लेकिन कठोर तप से तुमने
कर नष्ट सकल–

भव-सिन्धु पार-गामी कामी
जन के तारक
हे दिव्य अमर तुम सकल
सृष्टि के अघ हारक–

सुनकर पवित्र उपदेश
प्रभावित हो जन मन
रे धर्म रत्नत्रय अंगीकृत
हो मोक्ष गमन–

रे मिथ्या ज्ञान तमस नाशक
अमृत वाणी
तुमसे ही पाते सहज मोक्ष
भव के प्राणी–

वे बुद्धिमान इच्छित पदार्थ
तुम से पाते

वन्दन करते शुभ सुयश
तुम्हारा ही गाते–

हे देव तुम्हारे ही प्रसाद
से मोक्ष सुलभ

तुमसे ही भव जन से सुप्राप्य
स्वर्गादिक सब–

जो मोह पाश में फंसे
निकलने में अक्षम

उनके निकालने में न तुम्हें
कण भर भी श्रम–

तव वचन मेघ वैराग्य वज्र
बन कर दुर्द्धर

वे मोह शिखर उत्तुंग
सहज ही खंडित कर–

हे देव सुधामय उपदेशों
से भव प्राणी

करते पापों को क्षार काम
क्षण में कामी–

यह भी संभव पद पद्म युग्म
का कर सेवन

दर्शन विशुद्ध मंडित होंगे
वे दिव्य सुजन–

संसार शत्रु वैराग्य शस्त्र
धारण कर्ता

तुम जन के सारे मोह शत्रु
बल के हर्ता–

हे दीनबन्धु दुखनाशक
पोषक वीर सुभट

तुम दीन जनों के लिए सदा
बन अक्षय वट–
दुर्जय परिषह से असुर सदा
सम्मुख कम्पित
तुमने अपने तप बल पर उनको
किया विजित–
हे दयामये ! ऐसा उपाय
अब करें आप
हो मोह और इन्द्रिय अरिदल
का सहज घात–
भव्यात्माओं का करें आप
उपकार विरल
यों कर्म रूप अरि की विनष्ट
हो शक्ति प्रबल–
लो समय आगया तप का
अब अत्यन्त निकट
तप बल पर ही कर सके पार
भव पन्थ विकट–
तुम जग हिताय तप त्याग
करो हे वैरागी–
तापस ! तप की निर्धूम जले
तुममें आगी–
हे वीर ! आपको नमस्कार
प्रभुवर शत शत
जग के मंगल हित जग चिन्तक
लो तप का व्रत–
तुम मोक्ष सुन्दरी को पाने
हित यत्न शील

पद पद्म युग्म में देखो
नतशिर व्योम नील–

तुम पूर्ण वीतरागी तन सुख
के प्रति विरक्त
तुम प्रबल मोह अरि दल के
नाशक हे सशक्त–

वह मोक्ष सुन्दरी रमण
तुम्हारे साथ करे
तुम अभिलाषी होकर भी
पूर्ण विराग भरे–

तुम बाल ब्रह्मचारी महान
शत नमस्कार
बल और पराक्रम के तुम ही
हे सुयश सार–

भव और राज्य लक्ष्मी के
त्यागी अविनाशी
भव से विरक्त होकर भी
हे भव के वासी–

तुम योगी जन के गुरु महान
जग के ज्ञानी
तुम जग जीवों के परम बन्धु
दानी मानी–

तुम हे विराट जग के
उद्धारक कीर्तिमान
प्रतिध्वनित आज जल थल नभ
में यह सुयश गान–

परलोक पहुंच चारित्र्य सिद्धि
को मिले भक्ति
जो मोह शत्रु का करे नाश
वह वीत शक्ति"–

यों कर प्रभु का श्रद्धा पूरित
वन्दन - अर्चन
अपने अपने गृह देव अमर
कर गये गमन–

घंटादिक बजने लगे
हुआ जयजयकारा
थीं अनुगुंजित सब दिशा-दिशा
भू नभ सारा–

जब सुना देव असुरों ने यह
जय नाद गहन
घंटा ध्वनि से सब गूंज रहे
भू और गगन–

प्रभु का संयम उत्सव है
मन में निश्चय कर
चल पड़े सभी निज निज
यानों में देव प्रवर–

मन में अपार थी भक्ति सुधा
रस से सानी
बैठी थी पति के संग
मोद मय इन्द्राणी–

जब देव अमर सुर चले
यान में बैठ संवर
लौ दीप्त हो उठी आभा नभ
में दिव्य प्रखर–

जब पहुंच गये सब देवयान
के दल के दल
मच गई नगर के जन-पथ
में भारी हलचल–

जैसे विशाल वाहिनी
संग लेकर कोई
जा नगर द्वार को घेर
सहज ले निर्मोही–

वन प्रान्त नगर को घेर
डाल अपना घेरा
सैनिक शिविरों का पड़ जाता
क्षण में डेरा–

पश्चात इन्द्र निज अमर
सुरों के साथ चले
ज्यों अन्धकार में एक साथ
शत दीप जले–

प्रभु चरणों में जा किया
विनत शत अभिनन्दन
सुरराज इन्द्र ने सर्व प्रथम
कर प्रभु वन्दन–

भगवान वीर को उठा
सहज कर से आदर
स्वर्णिम सिंहासन पर
बैठाया ले जा कर–

मन में अपार भर मोद
किया जय-जय कारा
की सहज निर्झरित, नृत्य
गान की रस धारा–

कर स्वर्ण कलश में पुण्य
क्षीर सागर का जल
अभिषेक किया प्रभु महावीर
का मुद मंगल–

दिव्याभूषण से किया अलंकृत
तन प्रभुवर
वे दिव्य वसन छवि धर
पहिनाये प्रभु तन पर–

वर माल सुगन्धित दिव्य
कंठ में लहराई
या पारिजात की पाँत
स्वयं भू पर आई–

यों सजा संवारा स्वयं
इन्द्र ने हाथों से
या किया सुरक्षित सभी
प्रकृति संघातों से–

जो जग का स्वामी जग
को स्वयं संवार रहा
तप त्याग ज्ञान की तरल
धार में स्वयं बहा–

वह बना विरागी छोड़
मोह ममता माया
जो तपा रहा तप साधन
के तप में काया–

देखा प्रभु ने माँ की
आँखों में तरल सघन
माँ की ममता का लहरा
आँचल में सावन–

हिरनी - सी व्याकुल आँख
देख प्रभु को रोई
हो पुत्र विरागी और
न मां रोये कोई–

पर प्रभु ने माँ को ज्ञानामृत
से सुना वचन
सुत के वियोग की कर दी
शीतल सहज जलन–

था शब्द-शब्द वह प्रभु का
मीठा और सरल
माँ के दुर्बल मन को देता
था शक्ति प्रबल–

फिर बुला बन्धु बान्धव को
प्रभु बोले-बोले
ज्यों मेघ रन्ध्र से निकल
विकल ध्वनियां डोले–

मैं जग हिताय जड़-राग
मोह को छोड़ रहा
तप की धारा में छोड़
स्वयं को आज बहा–

मुझको करना तप के द्वारा
काया शोधन
जग की पीड़ा सन्ताप
रोग का अवरोधन–

मेरी दीक्षा का ध्येय–
ज्ञान का शोध-सतत
अब व्यष्टि केवल समष्टि
हित मेरा व्रत–

जड़ राग मोह सब व्यर्थ
हाय भव के बन्धन
हम इन्हें छोड़ कर क्यों न करें
जग हित चिन्तन–

हम क्यों न सुनें जग के
पीड़ित जन की वाणी
ये दीन हीन ये जरा ग्रस्त
जग के प्राणी–

धन धाम विभव वैभव तन
का यह रूप व्यर्थ
यह राज्य मान मद व्यर्थ
न इसका कहीं अर्थ–

तोड़ो रे तोड़ो यह भव
बन्धन की कारा
बन मुक्त विहग से माप
सके अंबर सारा–

यह रूप अतुल सौन्दर्य कि
जिस पर हमें गर्व
क्या कल न करेगी जरा
हमारा गर्व खर्व–

ये सौध गगन चुम्बी
ये ऊंचे राज महल
ये हाट बाट पथ भारी
जिनमें चहल पहल–

ये सखा मित्र प्रेमी स्नेही
प्रियजन बन्धुल
ये तात-मात सुत दारा
जीवन से संकुल–

जो देख रहे हम सब ही
जीवित के साथी
जब छोड़ चलेंगे यही
बनेंगे बाराती–

अस्तित्व कमल का जल
में रहकर भी रहता
हम रहें कमल वत भव जल
में हम से कहता–

सब जीवित का ही स्नेह
मोह ममता माया
हम जान न पाये कितना
खोया या पाया–

जब मर जाते हम स्नेही
जन रोते आते
सब बैठ लाश पर सिर
धुन रोते चिल्लाते–

जब जल कर काया हुई
राख सब भूल गये
फिर एक दूसरे के रिश्ते
बन गये नये–

जैसे करते हम नये वसन
तन पर धारण
यह मृत्यु मात्र बनती
परिवर्तन का कारण–

यह आत्मा मरती नहीं
सदा है अजर-अमर
इसको तो करते ही रहना
है सदा सफर–

हर समय काल ले जाने
को तत्पर रहता
किसको कब जाना पड़े कहां
कुछ नहीं पता–

यह तो असार संसार
कहें ज्ञानी-ध्यानी
रे जन्म मृत्यु से बचा
न कोई भी प्राणी"–

बोले माता से जिसको
कहती सुत मेरा
मरने पर भी क्या साथ
दे सकेगा तेरा–

हम देख रहे जो जुड़ा
चार दिन का मेला
सब गये उठ गई हाट
सांझ का तम फैला"–

यों संयम लक्ष्मी के
सुख में उद्यमी वीर
मन के समस्त स्नेहिल
बन्धन की लहर चीर–

चल पड़े त्याग कर राज-पाट
सब मोद मना
मां बाप बन्धु बान्धव
पुरजन का स्नेह घना–

लेकर आये थे इन्द्र
पालकी चन्द्रप्रभा
ज्योत्स्ना-सी भू पर छिटक
रही थी दिव्य विभा–

जा बैठे प्रभु सानन्द
पालकी में जाकर
चल पड़े दीक्षा हेतु
विभव के करुणाकर–

चल पड़े वीर प्रभु कठिन
तपस्या के पथ में
ज्यों उदित दिवाकर चले
दूर अपने रथ में–

होता प्रभात चल पड़े
अगम पथ में राही
चल पड़े कदम जब एक
बार तो चलना ही–

पहिले कंधे पर उठा
पालकी भू-गोचर
सुर अमर ले चले पैंड
सात रख दीं भू पर–

फिर अन्य सभी सुर ने
भी लगा दिया कांधा
चल पड़े गगन पथ से
न रही कोई बाधा–

कितना मोहक नयनाभिराम
था दृश्य वहां
बन रहे पालकी के कहार
सुर इन्द्र जहां–

पुलकित थे सारे देव
हृदय हरषा-हरषा
थी पारिजात के पुष्पों
की पथ में वर्षा–

वे वायु पुत्र सुरसरि रज कण
से युक्त पवन
ले पथ में दौड़ लगाते
थे गतिवान स्वयं–

बज उठी देव - दुन्दुभी
हुआ जय घोष तुमुल
चल पड़े वीर प्रभु विजित
आज मोहादिक कुल–

ऐसा प्रतीत होता था
मानों युद्ध सघन
उठ रही देवयानों की ध्वनि
घन घनन घनन–

थे एक ओर प्रभु वर्द्धमान
भगवान सकल
थे डटे सामने मोह-राग
से शत्रु प्रबल–

प्रभु कर में शोभित था
विराग आयुध खरतर
टिक सका न सम्मुख मोह
शत्रु कम्पित थर-थर–

रे पुण्य पन्थ वैराग्य
बना प्रभु का सकाम
हर्षित समस्त थे इन्द्र अमर
सुर गण ललाम–

जय नाद हुआ सुर अमरों
की गूंजी वाणी
जय वर्द्धमान प्रभु अमर
दिव्यवर सेनानी–

जयवन्त बनो मुद मद
विकास की ओर बढ़ो
तुम प्रगति पन्थ गामी
सूरज से और चढ़ो–

बज उठे सकल जय वाद्य
दिव्य गाजे बाजे
अप्सरा नृत्य के साज
नये साजे - साजे–

किन्नरियों का जय गान
मधुर मुखरा-मुखरा
प्रभु ने रे दुर्द्धर मोह शत्रु
को दिया हरा"–

था विजय सुर गान
उठा घूमा - घूमा
अधरों से मुखरित हुआ
अभ्र को जा चूमा–

दिक् कन्याएं मंगल घट
सिर पर धरे चलीं
प्रभु के द्वारा हो गया, विजित
रे मोह बली–

यों छोड़ मोह का नगर
पकड़ वैराग्य डगर
चल पड़े ज्ञान वैराग्य चरण
प्रभु मग में धर–

दे रहे बिदा प्रभु को, सब
पुरजन नर-नारी
नयनों से निर्झर स्रवित
अश्रुओं का खारी–

थे विकल सकल पुरजन
वियोग से दुखी मना
छाया विषाद वेदना
हृदय में हुई घना–

सब ओर यही चर्चा
प्रभु के वन जाने की
थी यही एक बस
सुनने और सुनाने की–

क्या राज भवन बाजार हाट
क्या जन पथ में
घर-घर गलियों में यहां
वहां हर पनघट में–

"जिन राज यदपि अब भी
कुमार" कोई कहता
यह अल्प वयस रे किन्तु
सिद्धि की सार्थकता–

कर प्रबल काम अरि का
इस वय में संहारण
कर लिया योग का वसन
सहज तन पर धारण–

युग पुरुष मात्र ही कर पाते
यह कार्य कठिन
गिनते रहते पर अन्य लोग
जीवन के दिन–

कितना अद्भुत कितना महान
यह कार्य हुआ
जैसे बालक ने लघु युग कर
से गगन छुआ–

कुछ और रहे ज्ञानी जन के
अपने विचार
यह नहीं और कुछ मात्र
प्रबल वैराग्य धार–

जिसके प्रवाह में अन्तरंग
अरि बह जाते
जिसके प्रभाव से मनुज
मुक्ति का पथ पाते–

देवत्व प्राप्त करता कि
विराग से वैरागी
रे भोग स्वर्ग सब विभव
सम्पदायें त्यागी–

इससे पन्चेन्द्रिय चोरों
का होता विनाश
लोकत्व भावना का
इससे होता विकास–

जिससे मन में बहता
विराग का स्रोत विमल
मन में खिलता भव महात्याग
का रक्त कमल–

तुम कहो दरिद्री से छोड़े
कच्ची कुटीर
लेकिन इससे भी मोह
छोड़ने में अधीर–

यह मन विराग बिन, कभी
नहीं होता पावन
धरती को धोकर मात्र
स्वच्छ करता सावन–

यों सभी नागरिक व्यस्त
इसी चर्चा में रत
जाकर देखा वन गमन
हेतु प्रभु थे उद्यत–

नयनों में आँसू भरे
देखते नर-नारी
प्रभु के वियोग की घिरी
घटा पुर में भारी–

थे विकल सिसकियां मौन
झांकती कातरता
मन का पंछी जा रहा
दूर उड़ता-उड़ता–

देखा सबने प्रभु मौन
जलधि से गम्भीरा
पुरत्याग चले बन
वैरागी त्यागी धीरा–

वे नयन धरा की ओर झुके
श्लथ मन्द चरण
चल पड़े धरा धन धाम
छोड़ वैराग्य वरण–

वह जग हिताय जा रहे
चले वन में ज्ञानी
हों उनके तप से सुखी
सकल भव के प्राणी–

माता त्रिशला ने सुना गये
वन भव - कामी
जो एक मात्र भव की
समानता के हामी–

वह गिरी बिद्ध विहंगी-सी
आहत धरती पर
सुत के वियोग में काँप
उठी काया थर-थर–

टूटा नयनों का बांध
हाय प्लावित आँचल
रोती थी अम्बा हुए देख
सब द्रवित विकल–

कोई आकर ले गया चुरा
जीवन का धन
कोई आकर कर गया
उसे बेबस निर्धन–

वह मौन ठगी-सी अहा
आज खुल रो न सकी
चल रही चली जीवन पथ
में पर आज रुकी–

मां रानी होकर भी
भिखारिणी पथ दीना
किस क्रूर भाग्य ने उससे
उसका सुत छीना–

वह सघन ग्रीष्म में सूख
फूल-सी मुरझाई
सुत के वियोग की सघन
घटा सिर पर छाई–

उसके नयनों की ज्योति
जा रही छोड़ नयन
जा रहा छोड़ कर दूर उसे
वह जीवन धन–

आगे आगे जा रहे चले
जग के स्वामी
थी ज्ञान मुक्ति की खोज
लोक मंगल कामी–

थे मौन किन्तु पग मन्द-मन्द
धर धरती पर
ज्यों चन्द्र ज्योत्स्ना का
फूटे भू पर निर्झर–

पीछे पीछे चल रहे बन्धु
बान्धव पुरजन
जैसे सागर तट छोड़ जा
रही लहर सघन–

चल रही साथ माँ
भग्नमना दीना हीना
थी अस्त-व्यस्त-सी तन की
सुधबुध कुछ भी ना–

वह फूट-फूट रोती जाती
थी डकराती
उसकी विह्वलता रुदन
देख फटती छाती–

उसकी करुणा को देख
स्वयं करुणा रोई
रे कौन बंधावे उसे धीर
आकर कोई–

माँ सिसक-सिसक रोती
चलती कहती जाती
आंसू नयनों में भरे
लिखे विरहन पाती–

'बेटा ! तू तो तप हेतु
सघन वन ओर चला
तू मुक्ति प्रेम का साधक
तापस बना भला–

लेकिन पाऊंगी चैन भला
मैं रे क्यों कर
कैसे चल पाऊंगी वियोग
पथ में पग धर–

कैसे तय होगी यहां
जिन्दगी की दूरी
कैसे जानेगा अपनी
मां की मजबूरी–

तू कमल फूल-सा कोमल
तप की कठिन डगर
तप के महान उपसर्ग
सहन होंगे क्यों कर–

जब शिशिर धरा पर
उतरेगी ठंडी शीतल
जब हवा हिमानी बने
शीत से अंग विकल–

तू बना दिगम्बर क्या
कैसे होगा विचरण
यह कान्त काय क्या
कर पायेगी शीत सहन–

जब देह शीत से ठिठुर
रही जमता पानी
सूरज की गरमी मांग
रहा जग का प्राणी–

हो रहा शीत से पीड़ित
ही जब जग जीवन
तब कैसे कर पायेगी
काया शीत सहन–

जब वाष्प राशि गहरी
धुंधली-सी सजल सघन
नर पीड़ित विरह व्यथा
से भारी-भारी मन–

कुहरा-सी छा जाएगी
आँखों के आगे
फिर हाय छोड़ कर नहीं
दूर क्या तुम भागे–

तुम सघन वनों में जाकर
होगे तपलीना
मैं अग्नि कुण्ड को जला
तापती बलहीना–

फिर भी मेरा हृतकम्प
भला क्या होगा कम
तुम मेरे मुझ से कभी
न थे इतने निर्मम–

मेरे जीवन में तुम
बसन्त बनकर आये
जब रूठ गये गीतों से
तुम को दुलराये–

तुमको पाकर उल्लसित
हुआ जीवन मेरा
तुमने वसन्त बन लगा
दिया मधुमय फेरा–

नभ में आतप का सूर्य
आग का गोला बन
जब किरण जाल से झुलसा
देता वन उपवन–

जलती होगी वह धरा
विकल होंगे प्राणी
तब कंठ सूखता होगा
मांगेंगे पानी–

रे कान्त काय क्या झुलस
न जायेगी काया
तुम राज विभव के योग्य
तुम्हें यह क्या भाया–

जब घहरायेंगे नभ में
वर्षा के बादल
तम फैल रहा गहरा
भू पर काला काजल–

बिजली चमकेगी काँप
रहा हर भोला मन
वर्षा जल से पीड़ित
प्लावित रे जग-जीवन–

जब वृष्टि भूमि पर
बने भयंकर जल धारा
जिसके सम्मुख नत बिनत
मनुज हिम्मत हारा–

ऐसी ही क्या वह दया
दृष्टि तेरी होगी
तू द्रवित देखकर दीन
दुखी दुर्बल रोगी–

तू सिसक उठेगा देख
हाय हो विकल मना
भू पर उतरेगी छाँह
व्यथा की पीर घना–

जब माँ-माँ कह कर रोता
मेरा बाल सुघड़
मैं सुला उसे देती थी
लोरी गा-गा कर–

जिसको हाथों से खिला
स्वयं पाती भोजन
हा वही छोड़ जा रहा
आज मम जीवन धन–

यह बलशाली इन्द्रिय समूह
अति दुर्निवार
यह महासिन्धु कैसे
कर लेगा इसे पार–

वह कामदेव जिसने
कर डाली विश्व-विजय
जिसके सम्मुख त्रैलोक्य
विनीत हो बोले जय–

कैसे इस पर अधिकार
भला कर पायेगा
तप के द्वारा क्या तन
को नहीं जलायेगा–

ये महा शत्रु तेरे कषाय
सब दल के दल
तू कर पायेगा कैसे
इनको विजित सकल–

तू एकाकी है स्वयं
और वय में बालक
वन सघन गुफा कैसे
होगा तप संचालक–

विचरण करते हों जहां
कि हिंस्रक पशु नाना
उनके समक्ष कैसे
तप का ताना बाना–

तू राज भोग के योग्य
और जब विपिन सघन
कैसे तप होगा पूर्ण
बता तो जीवन धन–

सुत के वियोग में अम्ब
अहा रोती जाती
रोते नर नारी देख
फटी भू की छाती–

मां के विलाप के स्वर
दिक् अंबर में जाकर
प्रतिध्वनित हो गये फूट
पड़ा करुणा निर्झर–

तरुलता पन्थ के मौन
खड़े समवेदन में
सूरज चन्दा थे मौन, काल
के पैर थमे–

था आज वायु भी मौन
खोजने चला शरण
लेकिन प्रभु के पथ में
बढ़ते ही रहे चरण–

क्षण को कुछ ऐसा लगा
सृष्टि की चाल रुकी
कर्तव्य पराजित हुआ स्नेह
की कील ठुकी–

लेकिन पल में सामान्य
हुई यह बात नई
आये अम्बा के पास
महत्तर देव कई–

"जननी होकर भी जान न
पाई तुम" बोले
तुम धन्य कि सुत ने ममता
के बन्धन खोले–

माँ पुत्र तुम्हारा है विराट
जग का स्वामी
गुरु सकल विश्व का
ज्ञानी ध्यानी तपकामी–

यह कर लेगा उद्धार स्वयं
का मोक्ष यती
सक्षम होगा जग के
हिताय में महाव्रती–

यह अटल सत्य तव सुत
होगा जग उद्धारक
अम्बे सुत तेरा कर्म शत्रु
का संहारक–

जैसे रस्सी में बंधा
सिंह बनता विनीत
होता वशवर्ती सहज
मांगता प्राण भीख–

माँ मोह रज्जु में बंधा
आज यह तेरा सुत
खोलेगा बन्धन स्वयं
शक्ति पाई अद्भुत–

फिर दीन-हीन बन क्यों
घर में रह पायेगा
जिसमें कदापि कुछ भी
न सुमंगल आयेगा–

है तेरे सुत के तीन ज्ञान
के नेत्र विरल
यह देख चुका जग जल
का सम्यक् रूप अतल–

जब एक बार वैराग्य
हृदय में गया जाग
भव अन्धकूप क्यों गिरे
यहां है मोह नाग–

छोड़ो अम्बे छोड़ो
अपना यह शोक व्यर्थ
इसमें पाओगी नहीं
और कुछ सुखद अर्थ–

तेरे विलाप से अम्बे
है त्रैलोक्य विकल
भू पर दुख के छा गये
सघन काले बादल–

यह जग अनित्य निःसार
काल का खेल यहाँ
दिन दस जीने के लिये
जनमता मनुज जहाँ–

है नहीं किसी का कोई
सुत - माता - भ्राता
जीवित का ही तो मात्र
यहां रहता नाता–

मां करो मोह का त्याग
धर्म का हो साधन
केवल विरक्त ही करते
रहते आराधन–

ये बुद्धिमान भव से
रहते भयभीत सदा
इसलिये मोह मन को
छू पाता यदा कदा–
समझाओ मन को और
करो जग हित चिन्तन
तुम मोक्ष कामना करो
मोह से जागे मन–"

जो दिया महत्तर देवों ने
उपदेश अमल
सुन कर जिन माता हुई
शान्त मन हुआ सरल–

जागी विवेक की दिव्य
सघन मन में आभा
था दूर शोक का तिमिर
ज्ञान की अरुणाभा–

वह वापिस लौटी धर्म
ध्वजा को धारण कर
वापस लौटे सब दास
कुटुम्बी बन्धु प्रवर–

सब राजमहल आ गये
लौट हो शान्त मना
जैसे लौटे घर हार
दाव पर प्रेम घना–

धरना था उनको धैर्य
मात्र जग के कारण
जब राग मोह का स्वयं
कर चुके संहारण–

था गर्व उन्हें तप हेतु
गये जग के स्वामी
प्रभु सिद्धि प्राप्त कर लौटे
भव मंगल कामी–

जो देव पार्श्ववर्ती थे
उनको ले जिनेन्द्र
पहुँचे खंका वन सघन
ध्यान तप मुक्ति केन्द्र–

उनको धारण करना था
संयम सर्व प्रथम
वह वन विशाल था, सघन
भयंकर अति दुर्गम–

जब कोलाहल से दूर
बहुत वह वन निर्जन
प्रकृति का अन्तर्निहित
किन्तु रमणीयक धन–

शीतलच्छाय तरुगण की
सुन्दर पांत विरल
था एक सरोवर जल
जिसका शीतल निर्मल–

चलती थी शीतल हवा
ताप मन का हरती
हर किरण उतर कर मन्द-
चरण भू पर धरती–

होता अरुणोदय विहग
जाग करते कलरव
हर फूल फूल पर पहुँच
भ्रमर पीते आसव–

जब चन्द्र ज्योत्स्ना उतरे
भू पर रजत धवल
शीतल समीर बह तापस
को देता नव बल–

होता तापस का ध्यान
यहाँ एकाग्रमना
अध्ययन मनन चिन्तन
संयम साकार घना–

फिर सहज पालकी से उतरे
प्रभु धरती पर
हो गई धन्य वह धरा
चरण युग को छूकर–

थी चन्द्रकान्त मय शिला
एक सुखकर शीतल
प्रभु सहज हुए आसीन
खिला ज्यों अरुण कमल–

कर गये पूर्व ही सकल देव
आ रम्य शिला
गोलाकृत जिस पर चन्द्र
किरण के साथ ढला–

पड़ती थी शीतल तरु विशाल
की छाँह सघन
सुरभित जल से धो पोंछ
गया वह गंध पवन–

इन्द्राणी ने निज कर से
ले उत्साह नवल
रे रत्न चूर्ण से मांडा
स्वस्तिक दिव्य सुफल–

रेशमी वसन का था
वितान आलोक तना
ध्वज नवल धवल नभ में
लहराया गंध सना–

मंडप पर रंग बिरंगी
फूलों की माला
शोभित ज्यों भू पर किरणों
ने डेरा डाला–

हो कहीं स्वयंवर वरमाला
ले स्वयंवरा
वरने नृप-दल में किसी
एक को चरण धरा–

वह अगरु धूम था फैल रहा
उठ कर ऊपर
फैली सुगन्ध जल मिली
वायु उससे आकर–

थे सजे सजाये रखे द्रव्य
भी मुद मंगल
आगत का स्वागत करने
को खिल गये कमल–

फिर सुन्दर स्वच्छ शिला
पर प्रभु आसीन हुए
तरुगण ने श्रद्धा विनत
युगल पद कंज छुए–

उत्तर अभिमुख हो बैठे
प्रभु निज आसन पर
वह थे विरक्त अब
मुक्ति साधना में तत्पर–
वह तन-मन के प्रति-पूर्ण-
तया इच्छा विहीन
भव के प्रति भी कोई
माया ममता रही न–
थे पूर्ण शान्त जन कोलाहल
से बहुत दूर
चिन्तन रत थे प्रभु हुई
इन्द्रियां स्वयं चूर–
उनके चिन्तन का ध्येय
मात्र भव का चिन्तन
कोई योगी को बांध
नहीं पाया बन्धन–
सब बाह्य रूप रे चेतन
और अचेतन का
मिथ्यात्व आदि दस परिग्रह
का-रे भव जन का–
वे अन्तरंग चौदह परिग्रह
औ अलंकार
सब वसन माल को त्याग
सभी इच्छा विकार–
मन-वचन-कर्म से हो
पावन-तन में निस्पृह
जा रहा आत्म सुख की
धारा में तापस वह–

फिर लगा तपस्वी का
क्रमशः पल्यंकासन
चढ़ चला ऊर्ध्व-ऊर्ध्वतर
उनका ध्यान गहन–
रेशम सी काली केश
राशि पर ध्यान गया
रख इन्हें व्यर्थ क्यों हम
पालें जंजाल नया–
जो एक बार भव-पाश
खोल बाहर आया
दी त्याग सदा के लिए
सभी ममता माया–
कर डाले सारे केश
विलुंचित- क्या देरी
बज उठी कहीं थी
सहसा कोई रण भेरी–
निर्मुक्त पाप की सकल क्रिया
से थे प्रभुवर
अब मूल अठाइस गुण
के पालन में तत्पर–
आतापनादि यौगित गुण
उत्तर सर्वोत्तम
व्रत महासमिति औ गुप्ति
कर चुके अवधारण–
सब में समता का भाव
हो रहा दृश्यमान
चर अचर लोक भू
के प्राणीगण में समान–

सब में समान अनुभूति
स्पर्श रस गंध बनी
अब बंधी हुई समता
की डोरी और तनी–

था अब क्रमशः स्वीकार
कि सामायिक संयम
दोषत्वहीन सम्पूर्ण
श्रेष्ठतम थे सम-दम–

थी मार्गशीर्ष कृष्णा
दशमी की सांझ घनी
नक्षत्र उत्तरा और हस्त
शुभ घड़ी बनी–

की ग्रहण महाप्रभु ने
जिन दीक्षा मंगलमय
भू नभ में गूंजा
वर्द्धमान अर्हन्त विजय"–

वह मुक्तिकामिनी जिन दीक्षा
सहचरी सखी
थी पूर्णतया दुर्लभ दुर्गम
दुस्साध्य कृती–

पुष्पों की वर्षा लगे
देव नभ से करने
जय के निनाद से लगे
सकल अंबर भरने–

सुरराज इन्द्र ने प्रभु
के कोमल केश सजा
कोमल रेशम से काले
देते भ्रमर लजा–

उनको मंजूषा में सयत्न
वे धरते क्षण
हो गये द्रवित सुरराज
आर्द्र हो उठे नयन–

केशों का पूजन किया
वसन बहुमूल्य ढके
जिनकी सुन्दरता देख
सुरों की दृष्टि थके–

दी मंजूषा को डाल
क्षीर सागर जल में
था केश विसर्जन महा
ऊर्मि की हलचल में–

रह गया और क्या पास
दिगम्बर धरा वेश
वसुधा कुटुम्ब बन गई
बना भव ही स्वदेश–

प्रभु बने दिगम्बर तपःपूत
तन कान्ति विरल
स्वर्णाभा-सा था दीप्तिमान
तन मुख मण्डल–

थे तपः पूत छल-छल
करता था तेज अमल
तन के प्रकाश में वीर्य
छलक पड़ता छल छल–

यश गान हुआ प्रार्थना
गीत के उठते स्वर
कर बद्ध खड़े सुरराज
इन्द्र सब देव अमर–

प्रभु के चरणों से अगरु
सुवासित धूम उठा
श्रद्धानत थे सुर अमर
साम स्वर गीत लुटा–

हे देव ! सृष्टि के परम श्रेष्ठ
तुम परमातम
चर अचर जगत के स्वामी
तुम भव विभव अगम–

तुम जग के गुरु गुण सागर
नागर शत्रु जयी
तुम अमल धवल जय
ज्ञानी ध्यानी शेष शची–

तुम हो असंख्य गुण गामी
गति का पार नहीं
क्या पार पा सका अब तक
कोई अन्य कहीं–

वर्णन करने में क्या समर्थ
कवि की वाणी
लिख सकी कलम क्या
अब तक कोई कल्याणी–

यह सोच-सोच अस्थिर
हो जाती मानव मति
तव आराधन में अचल
भक्ति को मिली सुगति–

ज्यों मेघ आवरण हटते
ही वह किरण छटा
रे फैल धरा पर चमकाती
तरु गुल्म लता–

जब हुए नष्ट मल सभी
बाहरी अभ्यन्तर

बह उठा तुम्हारे सकल
अमल गुण का निर्झर–

वे आज प्रकाशित हुए
व्याप्त नव किरण-किरण

जिनमें आलोकित हुआ
जा रहा जन जीवन–

ये विषय जन्य चंचल इंद्रिय
सुख क्षणभंगुर

ये भक्ति पन्थ के बाधक
दुर्द्धर महा असुर–

यह समझ त्याग कर आये
क्षण में हे भोगी

लेकिन लालायित मोक्ष हेतु
भव के योगी–

कैसे निरीह फिर कहें
तुम्हें हे योगीश्वर

तुम ज्ञान कमल से पूर्ण
सुशोभित भव - सरवर–

तुमने नितान्त ही घृणित
मान कर नारी तन

'यह है अछूत' कह बने
विरागी तुम निर्मम–

हमें कहें वीतरागी
फिर कैसे वैरागी

जब मुक्ति सुन्दरी में
तव प्रीति अचल जागी–

तुमने पाहन के रत्न
समझ त्यागे त्यागे
सम्यग् दर्शन की ओर
बढ़े तुम अनुरागे–

कैसे फिर त्यागी हुए
धरा के पुरुषोत्तम
तुम त्यागी होकर भी
रागात्मक निगम अगम–

वह राज पाट धन धाम
समझ कर पापाश्रय
क्षण भंगुर कह कर
छोड़ चले आये निर्भय–

पर हो तथापि तुम नित्य
अनश्वर अनुपमेय
त्रैलोक्य राज्य को चले
जीतने तुम अजेय–

कैसे निस्पृह फिर रहे
भला जग के स्वामी
भव ही कुटुम्ब यह मान
चले भव पथ गामी

तुमने तो जग की चंचल
लक्ष्मी को ठुकरा
लक्ष्मी लोकोत्तर मोक्ष
प्राप्ति में ध्यान धरा–

फिर कैसे तुम निष्काम
हुए हे करुणाकर
जब ब्रह्मचर्य की विशिख
अनी को कर में धर–

तुमने दुर्जय अरि प्रबल
काम पर पाई जय
रति को पतिहीना किया
मात्र क्षण में अक्षय–

रे प्रभु कृपालु होकर
भी इतने जब कठोर
तब तप की किरणें लिये
उतरती आज भोर–

तुमने कराल वह ज्ञान ध्यान
आयुध लेकर
रे विजित कर लिया मोह
नृपति तुमने दुर्द्धर–

तुमने समस्त रे कर्म–
शत्रु को ध्वस्त किया
फिर भी तुमने करुणा–
आसव आकंठ पिया–

जो रहे तुम्हारे बन्धु और
बान्धव अपने
तुम छोड़ चुके सब मान
सहज सुन्दर सपने–

तुम लिये भावना चले
विश्व बन्धुत्व सकल
तुमसे मानव ने पाया
समता का नव-बल–

फिर कैसे बान्धव हीन
कहे तुमको कोई
तुमने प्राणों की बेल
सुधा रस से बोई–

तुमने सांसारिक भोग
छोड़ अहि-फण समान
तुम शुक्ल ध्यान की सुधा
कर चले सहज पान

फिर कैसे पोषण व्रत
चल पायेगा आगे
जब ध्यान सृष्टि की ओर
बढ़े हे अनुरागे–

यह दीक्षा तब बन गई
जगत आदरणीया
भव पाप-ताप की बनी
प्रबलतम दमनीया–

हे देव तुम्हारी दीक्षा
पावनतम महान
इस पुण्य तोय धारा से
रक्षित सकल प्राण–

हे वीर आप ऐसी दीक्षा
कर चुके ग्रहण
जिससे विशुद्ध मन वचन
कर्म से प्राणी जन–

ऐसी दीक्षा - बल सहज
मोक्ष के द्वार चढ़े
करते चरणों में नमन
कोटि सुर मनुज खड़े–

तुम तन के सुख से
हुए विमुख हे बैरागी
सम्पूर्ण तुम्हारे तप की
तपती है आगी–

तुम बैठ रथी हे दिव्य
भव्य तप के रथ में
तुम बढ़े चले जा रहे
मोक्ष पावन पथ में–

तुम तप लक्ष्मी के लिए
बने ऐसे योगी
द्वारे पर जा रम गए
जगी धूनी - भोगी–

सम्यग् दर्शन चारित्र्य ज्ञान
त्रय अलंकार
करते रह-रह कर तुम्हें
अलंकृत नमस्कार–

पार्थिव आभूषण हीन
दिये परित्याग वसन
तुम शून्य दिशा वस्त्रों
से ढकते हो निज तन–

देवत्व प्राप्ति के साधन में
तुम सहज लीन
पर परिग्रही गुण युक्त
सम्पदा से न दीन–

तुम हे विरक्त रह निराहार
कर शुद्ध ज्ञान
दिन-रात सदा करते
रहते पीयूष पान–

तुम दीक्षित तुम में,
चतुर्ज्ञान के दिव्य नयन–
तुम बाल ब्रह्मचारी
करते तप-त्याग चयन–

तीर्थेश तुम्हीं हे शुद्ध
तुम्हें शत नमस्कार"

दोनों ने प्रभुवर का
वन्दन अर्चन अपार–

चल पड़े बैठ निज-निज
यानों में देव अमर

झर-झर करता-सा झरा
यहां तप का निर्झर–

करना था प्रभु को योग
क्रियाओं का साधन

थे अंग-अंग निश्चेष्ट
हो गया अन्तर्मन–

चढ़ गई दृष्टि वह ध्यान
ऊर्ध्व से ऊर्ध्वतर

ज्यों रखा हुआ निश्चेष्ट
कहीं सुन्दर पत्थर–

रे परम ज्ञान से हुए
वीर प्रभु पुरुषोत्तम

अब उदय ज्ञान का हुआ
मनः पर्यय अनुपम–

पहुंचे चतुर्थ मन ज्ञान स्थिति
में अब ज्ञानी

कैवल्य ज्ञान उपलब्धि
उन्हें थी लासानी–

यों परिग्रह से होकर
विहीन निर्बोध बने

औ मुक्ति सुन्दरी संगति
की ले आश धने–

तल्लीन ध्यान में ऐसे
हे तापस योगी
शत नमस्कार अर्हन्त
मोक्ष पद के भोगी–

यों बीत गये छह मास
घोर था अनशन तप
हे पूर्ण दिगम्बर तन
पर झेले शिशिरातप–

कर चुके पूर्णता प्राप्त
जला तप की आगी
कर चुके पार अब पन्थ
सफल हो वैरागी–

सोचा जग में जब
और मुनीश्वर अधिकारी
चर्यामग की वह भी
प्रवृत्ति ले सुविचारी–

इसलिए पारणा हेतु
हो गया उद्यत मन
जो मनस्थिति को करता
प्रदान वह शक्ति सघन–

हो ईर्या पथ नव शुद्धि
चला मन का चिन्तन
आहार दान दाता धनशाली
या निर्धन–

यह अन्न दान क्या हुआ
अपावन या पावन
यों त्रय विराग का चला
वीर-प्रभु चिन्तन क्रम–

चल रहे चरण प्रभु और
चली चिन्तना गहन
आहार कौन सा शुद्ध
जिसे कर सकें ग्रहण–

थी खोज इसी की और
दानियों से चर्चा
था यही कार्यक्रम भ्रमण
और चिन्तन अर्चा–

चरणों की गति में नहीं
क्षिप्रता मन्थरता
थी गति समान गाम्भीर्य
लिये साधारणता–

चल रहे पन्थ में आया
सुन्दर कूल नगर
करती पन्थी से बात
नगर की डगर-डगर–

पथ की परिभाषा अहा
यहीं साकार हुई
वन पुष्प-वाटिका से
बयार ले गन्ध बही–

ऊँचे विशाल थे भव्य
सौध सुन्दर नागर
सुन्दरी चली जा रही
धरे सिर पर गागर–

बाजार-हाट के ठाट-बाट
जन की हलचल
नृप के प्रासादों पर
लहराती ध्वजा धवल–

इतने ऊंचे प्रासाद
चूमते सहज गगन
था राज पथों में दीख
रहा ऐश्वर्य सघन–

थी खिंची हुई प्राचीर
सुदृढ़ पुर के बाहर
थे द्वार द्वार पर खड़े
सुरक्षक नर-नाहर–

वह भव्य सरोवर
नील कमल के दल के दल
उठ रही लहरियाँ भरा
सुजल शीतल निर्मल–

थे घाट अनेकों सुन्दर
स्फटिक शिलाओं के
झलके जल में कोमल
सु-अंग ललनाओं के–

मछलियाँ तैरती हँस
दुग्ध से अमल धवल
मीनों के आखेटक पारावत
खड़े विकल–

वन-उपवन थे तरु
पुष्पलता से आच्छादित
विहगों के दल के दल
विहार करते प्रमुदित–

उड़ उड़ कर आती फूलों
पर भ्रमरावलियाँ
स्वागत करती झुक झूम
झूम खिलती कलियाँ–

फूलों से लेकर मधु
सुवास उड़ चला पवन
हो गये सभी गंधायित
धरती और गगन–

भंवरों ने छेड़ा राग
प्रभाती कर गुन-गुन
कोयल का मधु स्वर में
आरोहण अवरोहण–

फिर क्यों विलम्ब करता
केकी आगे आया
कर रहा नृत्य पैरों में
गति ले हरषाया–

खंजन पक्षी को देख
हेम हिरनी मौना
आलोकित सूर्य किरण
से जग कोना-कोना–

रे ठांव - ठांव थे कूप
कि जल शीतल निर्मल
पनघट पर भी पनिहारिन
की भारी हलचल–

मन्दिर अनेक थे भव्य
ध्वजा नभ में उड़ती
घंटा घड़ियालों का निनाद
लेकर चढ़ती–

उठ रहा प्रार्थना स्वर
स्तुति के गान उठे
वे भक्त कण्ठ से निकल
वायु में लुटे लुढ़े–

थी धर्म प्राण जनता
राजा धर्माचारी
था पूर्ण प्रजा वत्सल
दानी औ सुविचारी–

जब मिली सूचना राजा
को प्रभुवर आये
इतना प्रसन्न था रोम
रोम सुन हरषाये–

आये पुर में अर्हन्त
देव तापस त्यागी
कर रहे धन्य पुर नगर
द्वार मग वैरागी–

ज्यों श्रमिक देख अपने
श्रम का प्रियकोष अतुल
मन में भरता था हर्ष
और उन्माद विपुल–

थे ऐसे ही जिन देव
पात्र नृप के उत्तम
आ गये द्वार नृप के जब
चल भव अगम स्वयं–

सेवा में श्रद्धा विनत
राज परिवार जहाँ
ऐसा हो सकता भला
और यह दृश्य कहाँ ?–

फिर की प्रदक्षिणा तीन
प्रथम ही राजा ने
मिल गया आज था
विश्व कोष ही अनजाने–

साष्टांग दण्डवत किया
कहा:–"ठहरो ! ठहरो !!
मुझ पूर्ण अपावन को
पावन हे आज करो"–
प्रभु सहज विराजे बिछा
कुशा का था आसन
बैठे प्रभु धीर गंभीर
लगाकर पद्मासन–
ले स्वर्ण पात्र से नृप
ने पावन जल निर्मल
श्रद्धा विभोर धोये प्रभु
के पद युग्म कमल–
प्रक्षालित जल को चढ़ा
शीश तन पर लेपन
फिर भक्ति भाव से कर
विधिवत पूजन अर्चन–
"आया सुपात्र जब स्वयं
अतिथि मम द्वारे चल
हो गया अहा जीवन मेरा
गार्हस्थ्य सुफल–
हूँ आज पुण्य कर्मा"
हर्षित राजा का मन
पावन विवेक जब और
हुआ पावन जीवन–
"मैं धन्य हुआ' बोला राजा
चरणों में गिर
कर रहे अपावन को पावन
बादल से घिर–

मेरा धन धान नगर सारा
यह राज महल
हो गये धन्य पावन
पाकर नव अक्षय बल–"

सोचा नृप ने मैंने
सुपात्र को दान किया
बस इस विचार ने उसे
और क्या बहुत दिया–

मन वचन कर्म से धन्य
हुआ राजा पावन
कर रहे अपावन को पावन
जन-जीवन धन–

कृत आदि दोष से हीन
अन्न प्रासुक लेकर
कर रहा शुद्ध एषणा
स्वयं रे धर्म प्रवर–

वह पात्र श्रेष्ठतम उत्तम
औ जग का दुर्लभ
हो गया भाग्य से राजा के
हित परम सुलभ–

इसलिए आज सम्यग्
साविधि आहार दान
रे सोच हृदय में भरी
विनत श्रद्धा महान–

जुट गया महा प्रभु की
सेवा में तन मन से
सम्पूर्ण शक्ति सामर्थ्य
और निज साधन से–

नृप त्याग चुके थे अन्य
कर्म एकाग्र मना
अब प्रभु सेवा ही एकमात्र
तप त्याग बना–

"प्रासुक है यह आहार
आज" राजा बोला
है समय दान का श्रेष्ठ
यही मन में तोला–

संयमी धीर-तम पुरुष
दिगम्बर धरा वेश
कैसे सधैर्य सहते
होंगे उपवास क्लेश–

दूंगा दूंगा उत्तम विधि
से आहार दान
ऐसे विचार नृप के
मन में उठते महान–

नृप कूल हुए मन वचन
कर्म से अब पावन
मन में अगाध श्रद्धा पूरित
ज्यों सावन घन–

सेवा में प्रभु के पहुंच
विनय रत आराधन
'आहार दान स्वीकार
करे प्रभु पावन तम–'

आहार खीर का दान कर
रहे नृपति कूल
अंजलि में प्रभु ने किया
ग्रहण, बन सरित कूल–

आहार अहा स्वादिष्ट
कि प्रासुक था विशुद्ध
निर्मल तप वर्धक
क्षुधा पिपासा से विमुक्त–

था महा दान यह देख
सुरों का मन हरषा
हो रही राज प्रांगण में
फूलों की बरषा–

आकाश निनादित हुआ
कहीं दुन्दुभी बजी
जय जयकारों से
वायु तरंगे सजी सजी–

नृपति ने दान दिया सुविचार
किया अंजलि में ग्रहण अहार
दान की बही धरा पर धार
किया सुरगण ने जय जयकार–

दान से नृपति हो गये धन्य
कौन था उन-सा आज अनन्य
दान का उत्तम फल यह देख
कहा "खिच गई धर्म की रेख–"

□

चतुर्थ सर्ग

चतुर्थ सर्ग

लेखनी और बढ़ो आगे
काव्य के भाग आज जागे
कल्पना के खिल उठे कमल
भक्ति की गंगा बही अमल–

कूल राजा को कर उपकृत
सफल कर उसका सेवाव्रत
ग्रहण कर क्षीर-दान आहार
दान को किया श्रेष्ठ साकार–

जिनेश्वर महावीर वर धीर
जहां जाते लग जाती भीड़
पार कर निर्जन वन जन ग्राम
छोड़कर महानगर धन-धाम–

अहा ज्यों निर्मल मुक्त समीर
बहे वन उपवन सरिता तीर
चल रहे थे गभीर पग धर
उठे ज्यों गीत मन्द मधु स्वर–

उन्हें कुछ ममता मोह न था
नहीं कुछ मन में राग व्यथा
नहीं अभिलाषा मिले प्रसिद्धि
लक्ष्य बस योग ध्यान की सिद्धि–

सिंह से बन कर फिर निर्भीक
सिद्धि की खींच धरा पर लीक
विजय वन करते दिवस भ्रमण
अंध गिरि गुहा रात्रि में शयन–

श्मशानों में कर सहज निवास
भयंकर तम में पहुँच सयास
हो रही हिंसक पशु से भेंट
स्वयं जाते चरणों में लेट–

मिले जो पथ में कभी भुजंग
न कर पाये रोमांचित अंग
मिला करते पथ में ग्रामीण
आदिवासी भोले तप क्षीण–

अहा भोले वाणी मन से
भक्ति से पूर्ण ग्राम्य जन थे
नागरिक थे व्यवहार कुशल
सभ्य थे सुरुचिपूर्ण पल-पल–

प्रभावित वाणी में मधु घोल
कि सबसे थे समता के बोल
ज्ञानियों से चर्चा होती
ज्ञान के बिथराते मोती–

चला उपवासों का जब क्रम
छठे अष्ठम से कर आरम्भ
चला करता यह क्रम छह मास
कि लेकर अनशन तप उपवास–

पारणाओं में थी यह बात
कि खिलता था वह दिव्य प्रभात
कभी लाभान्तराय के हेतु
बांधते पाप-नाश का सेतु–

प्रतिज्ञा चतुष्पक्ष की कर
वृत्ति परिसंख्यात्मक निर्झर
झरा करता ले तप की धार
नष्ट करता था विषय विकार–

रहे हम निर्विकार यह बात
खिली इच्छा का लिये प्रभात

चला करता था रस-तप-त्याग
कि जागे रे धरती के भाग–

जगाने को सर्वोत्तम ध्यान
ढूंढती थी आंखें एकान्त
वही बनता शय्यासन काज
चलाया करते योगी राज–

अहा जब आता वर्षा काल
गगन में बिछ जाता घनजाल
दामिनी दमकी उल्कापात
झड़ी लग जाती थी दिन रात–

प्रलय के बनते दृश्य अनेक
धरा नभ साथ खींचते रेख
सघन घन अंधकार भीषण
प्रलय का था पल-पल नर्तन–

धरा पर भीषण झंझावात
प्रबल झोंके करते आघात
दीखता था जब जल ही जल
धरा के प्राणी सभी विकल–

प्रकृति जब होती थी भयभीत
किन्तु था योगी नहीं विनीत
धैर्य का ले तब कंबल ओढ़
कि लेते तूफानों से होड़–

बैठ तरु तल समाधि में लीन
किया करते तप में तन क्षीण
शिशिर में जब काया थर-थर
चतुष्पद या सरिता तट पर–

बैठ प्रभु करते थे नित ध्यान
ध्यान में मात्र लोक-कल्याण
शिशिर में होता जब हिमपात
धरा का होता कम्पित गात–

वृक्ष हो जाते पत्र विहीन
लिया उनसे हिम ने सब छीन
जला कर लेकिन तप की आग
भस्म कर देते हिम का नाग–

आह जब कुहरा बनता धुन्ध
दृष्टियां हो जाती थीं मन्द
कि उनका तप बन सहज मशाल
तोड़ता तम का दुर्ग विशाल–

ग्रीष्म बरसाता भू पर ज्वाल
धरा तन होता सहज निढाल
विश्व तन झुलसा मन व्याकुल
प्यास से आकुल नर खग कुल–

छांह भी चली ढूंढने छांह
पवन की आज थाम कर बांह
तभी प्रभु शैल-शिला पर बैठ
ज्ञान का रचने को साकेत–

ध्यान का अमृत जल शीतल
कि करते सिंचन भूमि सकल
ग्रीष्म वर्षा के बाद शिशिर
धरा पर आकर जाते घिर–

काय सुख के प्रति साधनहीन
तपस्या के प्रति पुण्य प्रवीण
साधना में रह कर तत्पर
बाह्य करते छह तप दुष्कर–

ध्यान बन भीषण अग्नि समान
कर्म वन का कर दहन महान
इस तरह आत्म ध्यान में लीन
बन गये तापस परम धुरीण–

विजय कर ली रागादिक प्रीत
नींद औ भूख-प्यास ली जीत

विलक्षण था शक्ति का प्रभाव
विजय की चली तैरती नाव–

कि उत्तम ज्ञान प्राप्ति के हेतु
उड़ाया पंच महाव्रत केतु
समिति दैनिक जीवन में पांच
गुप्तित्रय की जलती थी आंच–

कि करते कर्म धूलि को नष्ट
प्रबलतम रहता तप का पक्ष
महाप्रभु श्रेष्ठ निवेदक शील
न किंचित गुण पालन में ढील–

स्वप्न में भी न दोष की छांह
ज्ञान का था गतिशील प्रवाह
चरण चलते ही रहे अबाध
कि मन में ज्ञान प्राप्ति की साध–

पन्थ में उज्जयिनी आई
अहा नगरी मन को भाई
भयानक था इसका श्मशान
लगाने चले यहीं पर ध्यान–

छोड़कर तन का सारा मोह
भयानकता के प्रति विद्रोह
योग प्रतिमा का कर धारण
मोक्ष का करने अवतारण–

भाव पर्वत से बना अचल
बैठ ओढ़ा समाधि कम्बल
ऊर्ध्व से ऊर्ध्वेतर था ध्यान
टिके जाकर कपाल में प्राण–

देखकर कम्पित इन्द्रासन
प्रकम्पित धरती और गगन
काल की रुकी अचानक चाल
पवन रुक कर हो गया निढाल–

न हो पाया कुछ भी अवदात
सृष्टिक्रम में कैसा व्याघात
परीक्षा का विचार ले क्षुद्र
हो गये तत्पर स्थानक रुद्र–

परीक्षा ले कितना ही घेर
किन्तु क्या डिगता तापस धैर्य
और भी होता वह दृढ़तम
शक्ति कर सका न कोई कम–

झेलने पड़ते सुख-दुख साथ
दुखों को घिरती काली रात
पूर्व पापों का हुआ उदय
पुण्य का रहा न क्रय-विक्रय–

धर्म की आज परीक्षा ध्येय
चल पड़े रुद्र-स्थाणु अजेय
पिशाचों का दल-बल लेकर
चला वह जहां वीर प्रभुवर–

ध्यान मुद्रा में लगी समाधि
सामने भूत-प्रेत की व्याधि
नेत्र-भारी विशाल को फाड़
खड़ा था सम्मुख मार दहाड़–

असुर गर्जन किलकारी मार
लगा होने मानो पतझार
बरसती थी नयनों से ज्वाल
लगे फुफकार मारने व्याल–

नुकीले और भयानक दांत
रक्त से सना हुआ था गात
भयंकर आयुध तीक्ष्ण विशाल
कंठ माला में गुंथे कपाल–

किन्तु असफल थे सारे यत्न
ध्यान में लीन तपस्वी रत्न

हो सका ध्यान न उनका भंग
रहे जैसे के तैसे अंग–

पूर्ण स्वाभाविक है यह बात
कभी कोई जब खाता मात
क्रोध से भर जाते हैं अंग
छोड़ देता विवेक तब संग–

और फिर चलते सभी उपाय
करे क्या और कहां वह जाय
रुद्र बन गया शीघ्र अजगर
लील जाने को था तत्पर–

लगी असफलता लेकिन हाथ
बहुत ही बुरी हुई यह बात
रुद्र बन गया अचानक शेर
रूप परिवर्तन में क्या देर–

मारता था दहाड़ भीषण
प्रकम्पित था वह मरघट वन
सभी थे पशु-पक्षी भयभीत
किन्तु प्रभु फिर भी शांत विनीत–

ध्यान चलता ही रहा अबाध
रुद्र की पूरी हुई न साध
बन गया था वह गज मदमत्त
मांगते दन्त मनुज का रक्त–

और फिर भीषण झंझावात
लगा होने तरु पत्र निपात
उखड़ कर गिरे अंध में पेड़
असुर को दिया किसी ने छेड़–

क्रोध बन उबला और प्रबल
बन गया क्षण में दावानल
लगा जलने वह मरघट वन
आग से दहक रहा कन-कन–

किन्तु फिर भी था ध्यान न भंग
ध्यान तो था समाधि के संग
क्रोध का अब था आर न पार
क्रोध बन गया अनल की धार–

और कुछ चारा रहा न शेष
प्रकट था वीरों का वर वेश
हाथ में लिए हुए धनु बाण
दहकती आंखें अग्नि समान–

खेलने को आया आखेट
काल से करनी मानो भेंट
किन्तु उसकी भी गली न दाल
रह गया दन्तहीन बन व्याल–

करे क्या अब था कौन उपाय
बढ़े आगे या पीछे जाय
खड़ा प्रतिपक्षी शैल समान
हो चुका मर्दन सारा मान–

अन्त में हो कातर बल क्षीण
गिरा आ दौड़ चरण में दीन
करो रक्षा जीवन आधार
शरण में आया तेरे द्वार–

बली हो तुम्हीं विश्व में देव
लोक मंगल का केवल ध्येय
शिरोमणि वीर जगतगुरु धन्य
न तुम-सा जग में और अनन्य–

इसी से महावीर शुभ नाम
श्रेष्ठतम मात्र तुम्हीं गुण ग्राम
विश्व के ध्यानी स्वामी मात्र
देव दर्शन कर पुलकित गात–

सभी परिषह में अपराजेय
कूल-गिरि से दृढ़ और अजेय

वायु से तुम निःसंग बलवीर
सिन्धु से तुम केवल गम्भीर–

क्षमा में तुम हो धरा समान
हर्ष में निर्मल जल-जय गान
कर्म रूपी विराट बन शैल
जला देते तुम पावक फैल–

त्रिलोकी में वर्द्धिष्णु विराट
श्रेष्ठ बलशाली चन्दन गात
अहा धारण कर निश्छल रूप
योग प्रतिमा के विमल अनूप–
आपको है प्रणाम शत-शत
कि तुम हे जग के अक्षय वट
प्रभो तुम देवों के नर राज
नाथ दीनों की रख लें लाज–"

रुद्र यों कर प्रभु का गुणगान
कि कर वन्दन अर्चन सम्मान
गया वह अपने पुर को लौट
परीक्षा में कुछ रही न खोट–

रात्रि का हुआ सहज अवसान
और आने को था दिनमान
उषा लेकर हंस उठा गगन
विश्व कर उठा विनत वन्दन–

उतर आई धरती पर भोर
लगे करने खग कुल-कुल शोर
नाचने लगी लहरियां भूल
पवन जा रुका सरित के कूल–

सप्तवर्णी किरणें रसलीन
नाचती थी तन्वंगी क्षीण
गई रजनी जो मुक्ता छोड़
बीन कर रखती थीं निज क्रोड़–

कर्म करने के लिए अधीर
चल पड़ी कर्म क्षेत्र को भीड़
विहग उड़ चले क्षितिज की ओर
दीखता कोई ओर न छोर–

गाय चल पड़ी उड़ाती धूल
खिल उठे वन उपवन में फूल
चले खेतीहर अपने खेत
बनेगी स्वर्ण धरा की रेत–

छिड़ा जब चलने का अभियान
किया प्रभु ने भी स्वयं प्रयाण
चरण का कर पावन-स्पर्श
धरा ने पाया चरमोत्कर्ष–

बने वनवासी श्री अर्हन्त
भ्रमण चलता ही रहा अनन्त
मार्ग में पड़े शैल गिरि शृंग
ग्राम-पुर होकर चले निसंग–

जहाँ जाते देते थे ज्ञान
लोक पाते लोकोत्तर ध्यान
भक्तजन देते भक्ति अपार
कर रहे लोक पाप का क्षार–

सिन्धु नामक था देश विशाल
तिलक से जैसे शोभित भाल
सरित बहती थीं यहां अनेक
खींचती थीं धरती पर रेख–

अहा था मीठा शीतल जल
बसे तट पर पुर की हलचल

खेत में उगी स्वर्ण-सी बाल
डालते जल में मछुए जाल–

यहां वे अभ्र चूमते सौध
स्वर्ग का होता भू पर बांध
कि मन्दिर ऊँचे और विशाल
पताका छूती नभ का भाल–

बजा करते घंटे घड़ियाल
वन्दना के उठते स्वर ताल
सरोवर में थे नील कमल
लहर करती जल में हलचल–

वायु में निकल गूंजता स्वर
निनादित होता था अंबर
नृपति का चेटक नाम सुजान
न्याय प्रिय धीर वीर बलवान–

काव्य संगीत कला में दक्ष
चन्द्र का जैसे उज्ज्वल पक्ष
राज करने में निपुण प्रवीण
प्रजा के मंगल में नृप लीन–

बेटियां थीं राजा के सात
प्रथम त्रिशला थी स्वर्ग सुदात
दूसरी जेष्ठा सुघड़ स्वरूप
न कोई मन में था विद्रूप–

सुन्दरी थी अत्यन्त सुजान
कि ज्यों धरती पर खिला विहान
चेतना सुता तीसरी और
रूप करता मदमत्त विभोर–

मशक थी चौथी कन्या रत्न
किया विधि ने रचना में यत्न
पांचवीं थी वह चन्दन बाल
केश घहरे मुख पर ज्यों व्याल–

ज्योति थी मुख की दिव्य ललाम
चन्द्र पर घिर आये घनश्याम
बहुत मादक था उसका रूप
भौंह थी तिरछी भव्य अनूप–

नेत्र थे जैसे खिले कमल
हेम हिरणी से थे चंचल
श्याम पलकों में अंजन देख
लगा खींची हो कारी रेख–

सुतनु का दिव्य सुनहला रंग
स्वर्ण आभा से दमके अंग
नासिका का रक्तिम मोती
किरण आती सुध बुध खोती–

अधर में लिया सुधा रस घोल
हुए लज्जित कोकिल के बोल
श्वेत थे मोती जैसे दन्त
पंक्ति का हुआ यहीं आ अन्त–

भाल पर बेंदी रक्त ललाम
एक क्षण में ललचाया काम
रह गया रति का उसे न ध्यान
खींच ली उसने पुष्प कमान–

शीघ्र ही आया लेकिन होश
हाय रे हुआ स्वयं पर रोष
चन्दना चलती थी जब चाल
घुघरुओं से उठती मृदु ताल–

मन्द श्लथ उठते मृदुल चरण
कि था आरोहण अवरोहण
देव कन्या या भू - वासी
कि रति की सुन्दर प्रतिमा सी–

एक दिन भ्रमण हेतु चन्दन
संग सखियों के, नन्दन वन

चल पड़ी क्रीड़ा हित सामोद
राज कन्या को क्या अवरोध–

पहुंच वन में रूपाभ अपार
खेलने लगी कुसुम सुकुमार
तोड़ती कभी वृन्त से फूल
हवा में उड़ता तभी दुकूल–

कभी हिरनी-सी मार कुलाँच
मयूरी सी करती थी नाच
उठ रही अधरों पर गुन गुन
पद्म पग कर उठते नर्तन–

कभी हंसती सखियों के बीच
किसी की लेती आँखें मीच
किसी के प्रिय गलबाहें डाल
कभी देती थी दृष्टि उछाल–

चल रहा था आमोद प्रमोद
भरी धरती माता की गोद
रूप की बिखरी चन्द्र किरण
किया धरती ने अभिनन्दन–

तभी आ पहुंचा खगपति एक
रुका रूपसि की क्रीड़ा देख
देखता रहा एक क्षण मूढ़
रूप का था रहस्य रे गूढ़–

रूप की ज्वाला उठ कर आह
लगी करने खगपति का दाह
आचरण के टूटे सब बन्ध
काम ने किया और भी अन्ध–

खींच कर उसने पुष्प कमान
और खगपति को मारा तान
काम के कारण गया विवेक
भला फिर क्यों रहता मन नेक–

जलाने लगी रूप की ज्वाल
लगा फुफकार मारने व्याल
पाप में होती कभी न देर
लिया आँधी-सा उसने घेर–

भुजाओं में कस सहज-उछाल
पाश में कसता जैसे काल
काँपती थर-थर जैसे बेंत
कि भुजपाशों में हुई अचेत–

चल पड़ा लेकर रूपसि क्रूर
लगी उड़ने भू-पथ की धूर
दासियों का था करुण विलाप
"कहां ले जाते चन्दन आप"–

करुण क्रन्दन के साथ पुकार
दासियों का उठता चीत्कार
द्रवित हो सका न निर्दय मन
नियति का कोप बनी चन्दन–

चला ले खगपति चन्दन साथ
धरा पर घिरी शोक की रात
पार कर उपवन हरित निकुंज
छोड़ व्यापी क्रन्दन अनुगुंज–

चला चलकर कुछ योजन पार
गहन दुर्गम वन प्रान्त अपार
यहां करने क्षण भर विश्राम
रुका आकर खगपति कामान्ध–

खो चुका वेग काम का ज्वार
दूर मन का हो चुका विकार
चल पड़ी शीतल मन्द बयार
लगी देने उसको वह धिक्कार–

आह क्या पाप चढ़ा मुझ पर
प्रिया को दूंगा क्या उत्तर

कि उसके प्रति भी कुछ कर्तव्य
देखते नहीं कि जो दृष्टव्य–

किया मैंने भारी अपराध
हृदय में बढ़ता गया विषाद
देखकर रूपसि हाय अबोध
प्रिया का होगा भारी क्रोध–

हुआ भयभीत प्रिया का ध्यान
देख चन्दन अचेत अनजान
करे क्या और कहां वह जाय
सूझ पड़ता कुछ नहीं उपाय–

चला खगपति को छोड़ विवेक
निराशा का था अब उद्वेग
छोड़ कर क्यों न यहीं यह बाल
चलूं क्यों पाऊं मृत्यु अकाल–

भाग्य पर छोड़ चन्दना बाल
चल दिया खगपति घर तत्काल
चन्दना अब भी पड़ी अचेत
उड़ रहा था कौमार्य सुकेतु–

पवन के झोंके खा शीतल
चेतना आई हुई विकल
यहां था भीषण निर्जन वन
पन्थ भी था बीहड़ दुर्गम–

दूर ही गरज रहे मृगराज
भालु थे और भयंकर बाघ
आह फैला था सघन अरण्य
गई चन्दन असहाया बन–

पूर्ण एकाकी थी कोमल
कांपती देह यष्टि प्रति पल
हो रही थी क्षण क्षण भयभीत
कठिनता से क्षण हुए व्यतीत–

गये आँखों के आँसू सूख
नहीं कुछ प्यास उसे या भूख
नियति का था कैसा यह कोप
आज हो गया भाग्य का लोप–

कहे किससे क्या करे पुकार
एक क्षण-क्षण बन रहा पहाड़
मूक चन्दन बन गई विमूढ़
अर्थ बन रहा और भी गूढ़–

"प्रभो क्यों मुझ अबला पर रोष
खोल दो आज दया का कोष
शरण में लो हे दीनानाथ
झुका तेरे चरणों में माथ"–

नयन में अश्रु और बन दीन
चन्दना हुई ध्यान में लीन
गई क्षण भर को तो यह भूल
सामने बिछे शूल ही शूल–

भक्त पर पड़ती जब जब भीर
भक्त वत्सल को कैसे धीर
भक्त जब डूब रहा मझधार
हाथ से स्वयं लगाते पार–

तभी वनवासी एक सुधीर
घूमता आ निकला वर वीर
हाथ में थामे था धनु बाण
देह में थी दृढ़ शक्ति महान–

देख कर चौंका यह क्या बाल
रुक गई तभी अचानक चाल
आह यह कैसा भोला रूप
स्वयं जो प्रभु ने गढ़ा अनूप–

रही भयभीता आँखें मींच
दूसरा कौन आ गया नीच

कष्ट का कब होगा हा अन्त
दुष्ट को देख कांपता सन्त–

कि वनवासी का अन्तर्द्वन्द्व
खुल गये थे चिन्ता के बन्ध
रूप यह जिससे गर्वित बन
बेच दूं इसे मिलेगा धन–

भाग्य ने इसे भेज कर आज
दे दिया है भिक्षुक को राज
उदित है पूर्व जन्म के पुण्य
न उस-सा कोई और अनन्य–

रत्न अनमोल आज खोजा
किसी भी धनपति को दूं जा
करूंगा मैं उसको उपकृत
सफल ज्यों होता कोई व्रत–

न की उसने विलम्बा क्षण भर
चला लेकर चन्दन वनचर
पालिता-सी हिरणी पीछे
चली वह मूक आँख मींचे–

भला क्या कोई चारा और
लहर में दिया स्वयं को छोड़
देखना उसको झंझावात
और करना था दो दो हाथ–

किया दोनों ने जंगल पार
गई जीवन की सदा बहार
राजकन्या थी अब दासी
राज पायेगा वनवासी–

लिये वनवासी स्वप्न मधुर
चला पहुंचा कौशाम्बीपुर
एक था वृषभसेन धन सेठ
हुई उससे वनचर की भेंट–

दृष्टि का था आदान-प्रदान
चला फिर विनिमय का अभियान
हुआ क्रय विक्रय का प्रारम्भ
चाहता रहे न कोई कम–

कुन्द कलिका-सी थी कोमल
कमल का कोमल किसलय दल
कामिनी के सोने से अंग
देख मुख लज्जित हुआ मयंक–

चकित हिरणी-सी थी भयभीत
आह बनने वाली थी क्रीत
नियति पर पूर्णतया अवलंब
नयन के आगे छाया तम–

देख कर यह मादक सौन्दर्य
हुआ क्रेता को निज पर गर्व
विश्व की निधि उपलब्ध अपार
न टिक पाये मणि मुक्ता हार–

प्राप्त कर धन अपार वनचर
चला हर्षित मन अपने घर
भाग्य पर छोड़ गया चन्दन
छोड़ता गया क्षीण क्रन्दन–

देव थे चन्दन के रक्षक
रूप बन गया आज भक्षक
चन्दना चली सेठ के संग
दमकता दामिनि जैसा रंग–

फैलती पथ में अंग सुवास
उड़ा लेकर सहसा वातास
मन्द श्लथ पड़ते चरण गंभीर
आह थी धरती विकल अधीर–

सेठ लेकर पहुंचा प्रासाद
चाल में था मानो उन्माद

हृदय में भरा हुआ उल्लास
देख आगे बढ़ आया दास–

स्वामि के आगे शीश झुका
विनत नत आदेशार्थ रुका
'इसे ले जा तू ससम्मान
कष्ट हो इसे न रखना ध्यान–'

चल दिया श्रेष्ठि छोड़ कर घर
चली चन्दन अन्दर पग धर
सुभद्रा ने देखी जब वाम
घिरे चिन्ता के बादल श्याम–

आह आ गई दूसरी सौत
क्यों न पाये कुलटा यह मौत
नहीं चल पायेगा यह राग
लगेगी क्या उपवन में आग–

सुधा में पाया हालाहल
सुभद्रा के मन में हलचल
फूल में कैसा यह विषधर
स्वर्ण-सा बिगड़ेगा यह घर

बुद्धि हो गई स्वामि की भ्रष्ट
करेगी क्या यह उन्हें न नष्ट
पड़ा चिन्तन में गति अवरोध
चन्दना पर था भीषण क्रोध–

छोड़ती थी उरगी फुफकार
चन्दना पर था वज्र प्रहार
अरे क्यों मैं हूं व्यर्थ हताश
करूं ऐसा उपाय हो नाश–

नष्ट कर दूंगी उसका रूप
बनूंगी प्रखर ग्रीष्म की धूप
पुराने ले कोदों के बीज
स्वाद की कहीं न कोई चीज–

मिला दी दुष्टा ने फिर छाछ
नाश की चली जलाने आंच
और ले एक मृत्तिका पात्र
डालकर उसमें कोदों-छाछ–

कहा ! "ले खा ले यह आहार
अन्यथा खानी होगी मार"
हाथ में लिये चन्दना पात्र
खड़ी की खड़ी रह गई मात्र–

कांपती काया मौन विषण्ण,
पात्र में पड़ा रह गया अन्न
आंख से बहती आंसू धार
हृदय में उठता हाहाकार–

मौन मुख से कुछ उठा न बोल
धरा का रहा हृदय भी डोल
'अन्न खा रही न क्यों चण्डाल
अरी क्यों खाता तुझे न काल–

सर्पिणी ! तोड़ूंगी विषदन्त
देखना मुझको तेरा अन्त
हाथ से लिया पात्र वह छीन
रह गई भूखी चन्दन दीन–

विवश थी बेचारी निरुपाय
करे क्या और कहां वह जाय
चन्दना बनी और मजबूर
सुभद्रा हुई और भी क्रूर–

आह फिर दिया रज्जु से बांध
व्यथा की घिर-घिर आई सांझ
दृश्य का हुआ किन्तु पट-क्षेप
घनों को चीर उदित राकेश–

रुके आ पहुंच सुभद्रा द्वार
खड़े प्रभु महावीर साकार

सौम्य मुख मण्डल गहन गंभीर
अहा अर्हन्त दिगम्बर वीर–

दिव्य आभा मुख पर मण्डित
उदित उदयाचल पर आदित्य
मौन प्रभु चाह रहे आहार
आज का यही एक ही द्वार–

सुभद्रा ने देखा अर्हन्त
हो गया मन विकार का अन्त
गिरी जा दौड़ चरण में वाम
सुभद्रा ललना बनी ललाम–

हुई दर्शन पाकर कृतकृत्य
हो गये पूरे मानों व्रत
अरी आ दौड़ निपूती देख
मिटाने आये तेरा लेख–

करें आ दोनों मिल वन्दन
शीश पर धरें धूलि चन्दन"
सुभद्रा ने देखा साश्चर्य
खुल गये बन्ध स्वयं दृढ़तर–

दौड़ती आई चन्दन बाल
गिरी चरणों में लिया संभाल
दृगों से बहता था बस नीर
काँपता कोमल क्षीण शरीर–

चरण में लोट रहा था गात
गिरे ज्यों किसी वृक्ष से पात
"चरण कमलों में मेरा माथ
डूबती थामो मेरे हाथ–

अभागी जनम जनम की हाय
दया की भीख मुझे मिल जाय"
चन्दना रोती विलख अधीर
बह उठा करुणा कर दृग नीर–

'चन्दना दे मुझको वह अन्न
जिसे कर पाई नहीं ग्रहण
आज दे मुझको यह आहार
ताप तव पूर्व हो गये क्षार"–

गुंजती उठती गिरा गंभीर
सघन घन को निकलें स्वर चीर
लिये मन में भारी संकोच
भेंट क्या करें यही था सोच–

गई चन्दन भीतर को लौट
भक्ति का विमल बह उठा स्रोत
कि कर में लिये मृत्तिका पात्र
अहा लौटी जब हर्षित गात–

पुलक से भरा नयन में जल
पा गई थी प्रभु का संबल
लिये प्रभु ने कर में वह थाम
लोक मंगल हित लोक ललाम–

प्रेम से खाते कोदों अन्न
चन्दना देख हो गई धन्य
चल दिये देकर प्रभु आशीष
चले अंबर में ज्यों रजनीश–

चन्दना करती रही प्रणाम
बन गया था गृह पूजा-धाम

चल रहे थे चरण प्रभु के
ढल रही थी रात–

हर कदम पर कदम छूकर
धन्य था नव प्रात–
आज सिन्दूरी किरण
बरसा रही सिन्दूर–
जा चुका था छोड़, धरती
को अन्धेरा क्रूर–
बन गया मृत पात्र
सोने का अमोलक पात्र–
और चन्दन-सा सुवासित
बना चन्दन – गात–

□

पंचम सर्ग

पंचम सर्ग

दे मुझे लेखनी मेरी तू अभिरामा
तू चलती रहे निरन्तर मेरी श्यामा
मैं सुमन भावनाओं के नित्य चढाऊं
युग चरणों में वन्दनहित शीश नवाऊं–

मैं चारण हूं इसलिए गीत गाता हूं
गाता प्रशस्ति के गीत मोद पाता हूं
वह महावीर जिसने त्रिकाल को जीता
ये गीत उन्हीं के और उन्हीं की गीता–

जो लिखता हूं सब मिले उन्हीं के आखर
जो गाता हूं उद्गमित उसी मुख के स्वर
सब भाव कल्पना आह उन्हीं से पाई
मैं तो अब उनका मात्र हो चुका भाई–

उनके चरणों में पड़ी रहे यह काया
मैं छोड़ चुका सब भव की ममता माया
मेरे मन में वह करते रहें बसेरा
मैं रहूं युगों तक इन्हीं चरण का चेरा–

चन्दनबाला को पावन दीक्षा देकर
चल पड़े और आगे पथ में करुणाकर
वह पूर्ण दिगम्बर वर्द्धमान जग स्वामी
हर सांस कि उनकी लोक मंगला कामी–

वह नगर-नगर वन प्रान्त छोड़कर आगे
जा रहे चले गुण ग्राम भक्ति अनुरागे
मन मन्दिर में जल रही ध्यान की जोती
पथ में बिखेरते चले ज्ञान के मोती–

जिस पुर में जाते सुयश केतु उड़ता था
भक्तों का मेला देख उन्हें जुड़ता था
करते ही रहते धर्म कर्म की बातें
उनको समान सब दिवस और वे रातें–

कुछ और अधिक मन में प्रभुवर ने ठाना
रह मौन और नित ध्यान समाधि लगाना
पुर में पहुंचेंगे व्यर्थ पड़ेगी बाधा
हो गये पूर्ण छद्मस्थ कार्य को साधा–

उनका विहार था पूर्ण बन गये मौनी
वह आज होगई उनकी जो अनहोनी
इस तरह बीतती गई सुबह और शामें
इस तरह बीतती गई शीत और घामें–

कितने वसन्त आये कलियां मुसकाईं
भौंरों से उनकी होती रही सगाई
महकी अमराई कोयल चहकी बोली
स्वर में जादू था मानो मिसरी घोली–

धरती पर उतरा करती थी मधु रातें
करतीं थी शीतल धवल चांदनी बातें
झर झर कर गाते मधुर स्वरों में निर्झर
चल पड़ा खोजता पन्थ कहीं कुसुमाकर–

पर्वत कन्याएं लोक गीत थीं गातीं
थे कन्दमूल फल ही जीवन की थाती
बारह वसन्त बारह निदाघ यों बीते
बारह वर्षा के दिन भी भीगे रीते–

भू पर कितनी ही बार बिछी हरियाली
कितनी ही शीतल रात ठिठुरती काली
बारह ऐसे ही शिशिर गये औ आये
कितने ही ऐसे अपने हुए पराये–

यों प्रकृति-क्रम चलता ही रहा निरन्तर
खिंच रही काल की रेख सतत पृथ्वी पर

बढ़ते हो रहे चरण युग आगे आगे
गति के भी सोये भाग देखकर जागे–

चलते चलते प्रभु पहुँच गये ऋजुकूला
सौरभ प्रकृति का देख मोद मन फूला
जृम्भिका गाँव के बाहर सरिता तीरे
इक रत्न शिला की ओर बढ़ चले धीरे–

पड़ती थी छाया शाल वृक्ष की शीतल
शाखाओं का था जाल पत्र भी चँचल
चलता था मादक मन्द समीर हठीला
लहरों का झूला झूल रहा गरवीला–

करने प्रतिमा का योग वहीं पर धारण
षष्ठोपवास के लिये किया अवतारण
था प्रभु का प्रतिमायोग सहज ही चलता
उस महायोग का दीप सतत ही जलता–

षट् ऋतुओं के फल फूल सभी थे खिलते
गौ-सिंह यहां आ प्रेम-भाव से मिलते
किसमें साहस था भँग करे अनुशासन
योगीश्वर का लग गया जहां भी आसन–

थे सहस अठारह शील सुतनु पर धारण
बन कवच सुरक्षित किया सभी तन आनन
गुण भी चौरासी लाख अँग आभूषण
रे अनुप्रेक्षा व्रत वसन अँग पर धारण–

संवेग महागज अति विशाल बलशाली
वह सहज हुए आरूढ़ चढ़े ज्यों लाली
फिर तप का ले कर में विशाल शर आसन
रे तीक्ष्ण बाण बन गये ज्ञान औ दर्शन–

औ तीन गुप्तियों की विशाल थी सेना
अब प्रबल कर्म अरि दल से टक्कर लेना
यों महावीर योद्धा महान बलशाली
सन्नद्ध युद्ध को हुए बजा कर ताली–

वह कर्म शत्रु मन दमन करेंगे निश्चय
वह सिद्ध पुरुष थे बोल रहा भव जय जय
सम्यक्त्व आठ गुण युक्त ध्यान में लीना
सम्यक्त्व और क्षायिक गुण परम धुरीणा–

कैवल्य ज्ञान कैवल दर्शन पग पाहन
सूक्ष्मत्व और अनतवीर्य अवगाहन
लघु अगुरु और अव्ययैबाध्य गुण साधा
संयमी वीर करते पालन निर्बाधा–

अब महावीर प्रभु थे विवेक वर शीला
करते विवेक बन धर्म ध्यान की लीला
वह धर्म ध्यान थे चार कि उनका चिन्तन
थे शुद्ध ध्यान में लीन चला आवर्तन–

ले शुद्ध ध्यान आयुध विशाल प्रलयंकर
चल रहे मोक्ष प्रासाद जीतने शंकर
जब क्षपक श्रेणि पर चढ़े नाश की लीला
था कर्म शत्रु का नाश बड़ा गरवीला–

नव के थानक में शत्रु बड़ा भयकारी
थे सोलह निद्रा और अनिद्रा भारी
अस्त्यानगृद्धि प्रचला प्रचला प्रस्थाना
साधारण औ आताप पूर्ण शठ माना–

एकेन्द्रिय द्वय त्रय चतुर जाति को हीना
गति नरक और तिर्यंच सहित बल मीना
ये कर्म शत्रु थे सोलह प्रबल प्रतापी
प्रभु के सम्मुख उनकी न एक भी व्यापी–

सब नष्ट हो गये प्रभु आयुध के द्वारा
केवल विनोद में इनको सहज पछाड़ा
अब शुद्ध ध्यान उठ चला और जब आगे
अब योग शक्ति के अंश और भी जागे–

ले शुद्ध ध्यान की वह तलवार दुधारी
चारित्र्य कषायों की थी पहिली पारी

थीं आठ जिन्हें पहिले विनष्ट कर डाला
पड़ गया क्रोध माया ममता पर पाला–

यों कर्म रूप अरि की संततियों का दल
हो गये नष्ट छंट जाय स्वयं जो बादल
लो चढ़े वीर अब दसवें गुण के थल पर
था शुक्ल ध्यान भी चौथा गुरु से गुरुतर–

जिसका प्रभाव संज्वलन लोभ हत-कामा
हो गये कषायी क्षीण वीर बल धामा
लो कर्म नृपति का हुआ नाश ही पूरा
कैसे रह पाता प्रभु का योग अधूरा–

क्रमशः बारहवें गुणस्थान पर चढ़कर
कैवल्य ज्ञान के लिए साधना दृढ़तर
निद्रा प्रचला अरि द्वय को सहज संहारा
वह शुक्ल ध्यान वर वीर सहायक प्यारा–

फिर ज्ञानावर्णी पंच कर्म भी जीते
तिरसठ प्रकृति घट भी छल-छल कर रीते
तेरहवें गुण का स्थान अन्त में आया
जब केवल उत्तम ज्ञान वीर ने पाया–

महिमा मंडित यह ज्ञान मोक्ष का दाता
है जिसे प्राप्त यह वही मोक्ष तो पाता
यह है अनन्त सब लोक स्वरूप प्रकाशक
यह प्रबल कर्म अरि दल का है विध्वंसक–

वैशाख शुक्ल दशमी की साँझ निराली
उत्तरा हस्त नक्षत्र मध्य क्षण पाली
शुभ चन्द्र योग था मुदमद मंगलकारी
जब कर्मशक्तियां महावीर से हारीं–

कैवल्य ज्ञान उपलब्धि आज थी भारी
नवलब्धि आज मिल गई उन्हें थी सारी
वह मोक्ष सभी क्षायिक सम्यक् का दाता
वह यथाख्यान सम्यक् चारित्र प्रदाता–

क्षय दान लाभ उपभोग भोग भी आये
वे वीर्य क्षयिक केवल दर्शन थे पाये
मन के दर्पण में प्रतिविम्बित थी छाया
थी दीप्तिमान नवलब्धि तेज से काया–

वह वीर्य छलकता मुखमण्डल पर छल-छल
या कोटि सूर्य की देह दीप्ति थी अविचल
जैसे चन्दा की कान्ति गगन में शीतल
ऐसी ही प्रभु की कान्ति पा रहा भू तल

वह नीलाम्बर था स्वच्छ दिशायें लोनी
वह मन्द हवा भी बहती आज सलौनी
देवों ने अंजलि भर-भर पुष्प गिराये
गन्धोदक के छींटे प्रभु पर बरसाये–

वह रत्न धूलि से भरी दिशायें सारी
उठ रहा नाद अनहद का मंगलकारी
घंटा ध्वनियों से गूंज रहा नभ मण्डल
देवों का जय जयकार सिन्धु की हलचल–

बज उठी दुन्दुभी बाजे बजे मनोहर
लेकर विमान सुर चले उड़े ज्यों नभचर
यह देख देख होता कम्पित इन्द्रासन
झुक गया मुकुट तन में उठता था कम्पन–

सौधर्म इन्द्र वन्दना हेतु रे सत्वर
गजराज साथ ले उतर रहे धरती पर
जब चले कंठ की घंटा ध्वनि घहराई
धरती की मानों नभ से हुई सगाई–

देखा कुबेर ने मुग्ध हो गया गुण पर
हो सकता ऐसा कौन कहीं सुर किन्नर
थी भक्ति अमित वह यक्षराज के मन में
कुछ अर्घ्य चढ़ाना चाह रहा वन्दन में–

प्रभु समवशरण उपयुक्त योजना भारी
थी महा सम्पदा की पूरी तैयारी

को सर्व प्रथम ऐसे विमान की रचना
जिसका वर्णन कर सके न कोई रसना–

भारी विशाल था रत्नजटित मुक्तालय
ज्यों दिव्य छटा से आलोकित हो आलय
फिर ऐरावत गजराज श्वेततम उज्ज्वल
ज्यों स्फटिक शैल धर चला पीठ पर चंचल–

आकृति अंगों की अहा द्वीप ज्यों सुन्दर
ऊंचा विशाल मस्तक ज्यो शैल शिखरवर
जब जब उछालता शुण्ड गेंद-सी ऊपर
वह शुंड गिरी गिर पड़ी गेंद भी भू पर–

बलशक्ति अंग में भरे हुए थे पूरे
छवि काम रूप-सी अंग-अंग थे भूरे
वे अधर लटकते लाल दन्त थे श्वेता
बज रहे कण्ठ के घंटे बने विजेता–

बज उठी दुन्दुभी सांसों के सरगम से
वे कर्ण चंवर हिल रहे मात्र कम्पन से
मद झर झर-झरता नयनों के कोरों से
लेकिन घिर रहा रसिक काले भौंरों से–

जब चलता मृदु किंकिणि निनाद उठता था
मारुत से कर अठखेलि गीत था गाता
जब खिलता था मुख खिलते कमल सरोवर
जब चलता था मानो मृदंग स्वर निर्झर–

इन्द्राणी शचि के साथ लगा था आसन
जा रहे शुक्र थे साथ अनेकों सुरगण
कैवल्य ज्ञान का आज महोत्सव करने
सुरगण का पूजा भाव चरण में धरने–

लेकर विमान सुरगण सहस्र चौरासी
तेतीस पुरोहित चले स्वर्ग के वासी
थे लोकपाल चारों सेवा में तत्पर
वे दुर्गपाल नभपाल शक्ति के गणधर–

वे दशों दिशा के लोकपाल अनुगामी
थे महावीर अब आज उन्हीं के स्वामी
सुरराज सँग थीं सात सैन्य बलशाली
सेना पदाति गज रथ तुरंग गति डाली–

चल पड़ी इन्द्र की सभा साथ स्वामी के
वह चले जा रहे प्रभु पद अनुगामी थे
गन्धर्व साथ चल रहे गीत जय गाते
कुछ गाते थे कुछ ढोल मृदंग बजाते–

नर्तक दल करता चला पन्थ में नर्तन
सागर में उठती थी हिलोर गुरु गर्जन
जय जय कारों से गूंज रहा नभ मंडल
हो गये देखकर शेषनाग भी चंचल–

सौधर्य इन्द्र ले चले सम्पदा सारी
कोई मृगेन्द्र पर करके चले सवारी
अब थे महेन्द्र भी बैठ वृषभ पर आगे
ब्रह्मा सारस पर बैठ चले अनुरागे–

लान्तवधिप ने भी हंस सवारी पाई
कोई पैदल ही चले बात यह भाई
कोई सवार हो गरुड़ पीठ पर जाता
कोई मयूर पर बैठ मोद मन पाता–

थे आनतादि वे चार इन्द्र पुष्पक पर
चल रहे बारहों इन्द्र चला जय निर्झर
बज उठे पटह तो दिशा दिशा घहराई
वे छत्र ध्वजा छवि उतर स्वर्ग की आई–

अब चला स्वर्ग का नृत्य गान धरती पर
बज उठे वाद्य तो मेघमन्द्र का मधु स्वर
जिनवर का ज्ञान महोत्सव आया आया
देखो देखो ऋतुराज धरा पर छाया–

लग रही सभा सुरगण की तरु के नीचे
बैठे थे प्रभु जिनराज नयन को मींचे

सौ सौ सूरज-सा दमक रहा मुखमंडल
बैठे थे मुद्रासीन वीर प्रभु निश्चल–

बैठे सूरज नख चन्द्र सभी मिल आकर
जिन कल्याणक के लिए उठा कंठा स्वर
झालर मणियों का दिव्य वितान तना था
योजन भर का जिसका विस्तार घना था–

थी किसमें यह सामर्थ्य वितान बनाये
गणधर कुबेर केवल समर्थ हो पाये
मण्डप था गोलाकार दूर से चमके
वह इन्द्र नीलमणि कान्ति दिव्य तन दमके–

था रत्न धूलिका धूलशाल परकोटा
सतरंगी इन्द्र धनुष-सा टांका गोटा
थे चार स्वर्ण के खंभे चार दिशा में
वे रत्न जटित ज्यों दमके नखत निशा में–

थी रत्नमाल झालरें लटकतीं शोभित
वह मन्द पवन शीतल बहता था सुरभित
वेदियां चार कुछ दूर बनी अन्तर में
पूजा सामग्री धरी कमल ज्यों सर में–

जब चार दिशायें और चार दरवाजे
चारों के छविमय रूप अलौकिक साजे
थे परकोटे भी तीन सीढ़ियां सोलह
स्वर्णिम थीं आभा पीत झलकती रह-रह–

सब के सुमध्य थे रत्न जटित सिंहासन
प्रतिमा जिनेन्द्र की शोभित पूर्ण सुदर्शन
देदीप्यमान थी रत्नों की आभा से
ज्यों प्राण हीन पाता है प्राण सुधा से–

थे चार और सिंहासन छोटे-छोटे
वेदियां मध्य थे मान खंभ के जोटे
रे दृष्टि मात्र से मान भंग हो जाता
मन को मिलती थी शक्ति मोद भी पाता–

वे मान खंभ भी स्वर्णिम रत्न जटित थे
रंगीन ध्वजाओं घंटों से शोभित थे
औ निकट वहीं थी चार बावड़ी सुन्दर
आरक्त कमल खिल रहे मोद में भर-भर–

वे रत्न सीढ़ियां बावड़ियों की भाई
जैसे उतरे धरती पर नई लुनाई
बावड़ियों के तट पर थे कई जलाशय
शीतल निर्मल था और मधुर जल अक्षय–

इनके जल से पन्थी के पग धुलते थे
इनके जल से सब श्रान्ति क्लान्ति धुलते थे
आगे चलकर जल भरी खाइयां भारी
कमलों से पूरित बैठे भ्रमर पुजारी–

मधु पवन झकोरों से तरंग उठती थी
मानों रागिनियों की बहार लुटती थी
गुण गान ज्ञान कल्याणक फैला-फैला
रे इसी रंग से आज सभी ने खेला–

रे भूमि भाग खाई का षट्ऋतु सुरभित
क्रीड़ा के सुन्दर कुंज कुंज थे कुसुमित
वह चन्द्रकान्त मणि शिला जहां थी शीतल
विश्राम इन्द्र करते कि बैठकर इक पल–

गिरि भाग दिव्य कुसुमों से फूला फूला
गुंजार भ्रमर कर जहां डालते झूला
औ थे अशोक के वृक्ष कई मन चीते
सब फूल फलों से पूर्ण न कोई रीते–

पंथी भी जो चाहता वही था पाता
आ गया न कोई भी निराश हो-जाता
कुछ अन्तराल पर एक स्वर्ण परकोटा
मुक्ताओं से था जटित ज्योति को ओटा–

हर बार दृष्टि कुछ नये रंग को पाती
मूंगा नीलम बादल का जाल बिछाती

या इन्द्र धनुष के रंग चमकते नाना
शोभित निज को कर जीवन सफल बनाना–

थे परकोटे पर खिंचे चित्र बहुरंगी
गजराज व्याघ्र थे औ मयूर भी संगी
जोड़े नर-नारी के चित्रों में छाये
वे वृषभ वहां के भी विशाल मन भाये–

जीवन्त चित्र थे लगते बोल रहे-से
कुछ नाच रहे मिलजुल हंसते गाते-से
चारों दिशि में थे चार द्वार अलबेले
के तीन खंड के ऊंचे नभ से खेले–

रे द्वार-द्वार की आभा छलकी छलकी
धरती पर गिरती-गिरती हलकी हलकी
वे महामेरु से द्वार सभी थे ऊंचे
छूते अंबर द्वारों के शिखर समूचे–

वे पद्मराग मणियों से सभी खचित थे
गणधर कुबेर के हाथों स्वयं रचित थे
सब द्वार-द्वार गन्धर्व गान थे गाते
वे तीर्थंकर गुण गान समोद सुनाते–

कुछ श्रोता सुनते बैठ ध्यान में लीना
कुछ सुनकर चर्चा करते परम प्रवीणा
कुछ सुर उमंग में भरे नृत्य थे करते
रस कलश भक्ति का बूंद- बूंद कर भरते–

वे द्वार-द्वार पर धरे कलश औ दर्पण
थे आठ मांगलिक द्रव्य कि पूजन अर्चन
रत्नों से निर्मित बंधे कि सौ-सौ तोरण
वह रंग-बिरंगी जोत झर रही पल-क्षण–

सतरंगी रंगों से झिलमिल नभ मंडल
प्रभु के तन की वह कान्ति देख-अक्षय बल
रत्नों ने सोचा व्यर्थ रहें वे क्यों कर
इसलिए बंधे जाकर तोरण के अन्दर–

प्रभु के शरीर की कान्ति दिव्य रत्नों सी
रह गई शेष क्या बात और यत्नों की
वे शंख आदि नव निधियां भी द्वारे पर
भयभीत देख अर्हन्त वीर के तेवर–

यों जान तिरस्कृत भाग द्वार पर आये
मग देख रहे आये प्रभुवर मन भाये
मिल जाय तनिक सौभाग्य कर सकें सेवा
कर सकें कृपा अर्हन्त वीर-वर देवा–

लम्बा-चौड़ा था एक राजपथ भीतर
दो रंगमंच निर्मित विशाल अति सुन्दर
चारों दिशि में यों आठ नाट्य शाला थी
इतनी ऊंची लौ लिये जल रही बाती–

वे उठा शीश दे रही नया सन्देशा
सम्यक् दर्शन है स्वयं मोक्ष के जैसा
दीवार सभी थी फटिक मणी से निर्मित
वे स्वर्ण खंभ कर रहे अर्घ्य प्रभु अर्पित–

थी रंग भूमि सुन्दरतम वैभवशाली
वह छटा कि जिसको स्वयं किसी ने ढाली
अप्सरा नृत्य करती थी नृत्य प्रवीणा
गन्धर्वों को भी भक्ति प्रेम रस पीना–

कुछ बैठ वीर के विजय गीत थे गाते
ये श्रेष्ठ ज्ञान के गीत भक्ति सरसाते
कोकिल कंठों का गीत-दिशा अनुगुंजित
गीतों से प्रभु की भक्ति हो रही पूजित–

वे भाव हृदय के गीतों में बह आये
धरती पर फैले और गगन में छाये
दो कलश राजपथ के दोनों छोरों पर
थी धूप सुगन्धित धूम हवा में ऊपर–

छू रहा सुगन्धित धूम गगन का आंचल
जैसे करती हो गंध मलय की चंचल

उद्यान वाटिका बनी हुई कुछ आगे
मानो सौरभ के सौ-सौ सपने जागे–

जिनमें षट् ऋतु के सभी फूल फल भारी
थी हरी भरी दूर्वा से क्यारी क्यारी
वाटिका जहां हरदम भ्रमरों की गुंजन
लज्जित था जिनको देख-देख नन्दन वन–

थीं जगह-जगह पर कई वीथियां मनहर
थे सप्तपर्ण चम्पक अशोकतरु सुन्दर
थीं आम्रवृक्ष की चार-चार मधु श्रेणी
सुन्दर विशाल ज्यों सजी प्रकृति की वेणी–

थीं कई वापियां ठीक मध्य उपवन के
वे थीं त्रिकोण या चतुष्कोण बन-ठन के
औ बावड़ियों में रक्तिम नील कमल दल
जिनसे प्रतिबिम्बित हुआ लाल नीला जल–

या कहीं राज प्रासाद बने थे नीके
क्रीड़ा गृह कौतुक मंच वहीं थे दीखे
और चित्रशाल बहु विधि चित्रित आकर्षक
कृत्रिम पर्वत श्रेणियां बनीं मन मोदक–

या अट्टालिका गगनचुम्बी थी ऊंची
चढ़ जहां देख ले कोई प्रकृति समूची
वे दृश्य मनोरम फूल फलों के नाना
ओढ़ी धरती ने साड़ी हरी सुजाना–

चींटी से लगते छोटे-छोटे प्राणी
वीथियां श्रेणियां लगती देख पुरानी
क्रमबद्ध पंक्ति में भवन भव्य उत्तुंगा
ज्यों गई खींचती रेख धरा पर गंगा–

वे एक खण्ड या दो खण्डों में कोई
रे दृष्टि भव्यता में जा फंसकर खोई
उन उपवन में जो थी अशोक वन वीथी
कटती थी जिनकी तीन वेदिका नीकी–

वेदिका स्वर्ण की औ पीताभ घना था
औ तरु अशोक का चैत्य विशाल तना था
घेरे था उसको तीन ओर परकोटा
हर परकोटे में लगा द्वार का गोता–

रे इस अशोक के चैत्य वृक्ष के ऊपर
वे टंगे हुए थे तीन छत्र अति सुन्दर
जिनके घंटों की घंटा ध्वनि घहराई
लो पुण्य भक्ति की गंग धरा पर आई–

वह वृक्ष देव जिन प्रतिमाओं से पूजित
ध्वज चमर द्रव्य मंगल इत्यादि सुशोभित
जम्बू तरु-सा ऊंचा विशाल था लगता
नीचे जिन प्रतिमा पावन था उत्तम था–

सुरराज यहां आ करते पूजन अर्चन
करते थे अपने सभी मनोरथ पूरण
ऐसे ही सुन्दर चैत्य अन्य वन में थे
वे सप्त पर्ण चम्पक औ आम्र वनों के

अर्हन्त वीर की प्रतिमाओं से शोभित
सुरगण आ करते पूजाकर्म समर्पित
थी ऊंचाई पर दस ध्वज और पताका
माला मयूर औ वस्त्र कमल भी बांका–

वे हंस गरुड़ औ वृषभ सिंह हाथी भी
औ चक्र ध्वजा की अद्भुत छवि थी आंकी
मानो मोहन कर्मों को प्रभु ने जीता
ऐश्वर्य छीन कर किया विश्व को रीता–

प्रत्येक दिशा निर्धारित विविध पताका
जो करता दर्शन धन्य स्वयं को पाता
ध्वज उड़े तरंगें उठती नभ सागर में
जब चला पवन था कम्पन ध्वनि क्षण भर में–

ध्वनि उठती देती भक्तों को आमंत्रण
आओ कर लें अर्हन्त वीर का पूजन

वह ध्वजा कि जिसमें चिह्न बने माला के
सुन्दर सुरभित मालायें रखी कि-लाके-
वह वस्त्र ध्वजा रेशमी वस्त्र बहुरंगी
बारीक लटकते किन्तु एक ही संगी
वह ध्वजा मोर की कला यही आ बोली
वह ध्वजा पवन में उड़ तरंग-सी डोली-

चिन्हित ध्वज की संख्या कितनी क्या जानें
जैसे असंख्य लहरों को क्या कर मानें
उस चैत्य वृक्ष से कुछ आगे बढ़ने पर
चांदी परकोटा दृश्यमान कुछ अन्दर-
थे उसके भी आकार प्रकार प्रथम से
निर्माण और सज्जा भी क्या कुछ कम थे
चारों दिशि में थे चार द्वार भी भारी
घट रखे द्रव्य से पूर्ण कि मंगलकारी-

सुरभित सुगन्धि से पथ के दोनों कोने
जैसे छलांग भरते मृद में मृग छौने
नाटकशाला भी थी विशाल सुन्दरतर
गायन वादन चल रहा वहां भी मधुकर-
थे कल्पवृक्ष भी चल कर आगे पथ में
जगमग ऐसे रवि चले रश्मि के रथ में
उनकी विभूति किन सम्राटों से कम थी
उनकी विभूति जो चलकर कभी न थमती-

ये दिव्य पुष्प फल माल रत्न आभूषण
शीतल छाया थी वसन अमोलक पोषण
रे देख जिन्हें ऐसा प्रतीत था होता
बह उठा हृदय में भक्ति प्रेम का स्रोता-
या कल्पवृक्ष के पास देवकुरु आकर
प्रभुवर जिनेन्द्र की सेवा में हो तत्पर
रे आभूषण से पारिजात के फल थे
वे पत्र वसन से मलयानिल में हिलते-

लटकी थी कोमल शाखाओं पर माला
ज्यों कामदेव ने आकर घेरा डाला
यां लगती थी वटवृक्ष जटा-सी लटकी
गिर कर कण्ठों में पहुंच हृदय पर अटकी–

मालांग वृक्ष के नीचे इन्द्र स्वयं थे
दीपांग तले क्या सुरगण भी कुछ कम थे
सिद्धार्थ वृक्ष वन बीच कल्पवृक्षों के
चलते थे शीतल मन्द पवन के झोंके–

ये कल्पवृक्ष थे छत्र चमर से नीचे
थी अलंकृता प्रभु प्रतिमा धरी अनीके
ये कल्पवृक्ष इच्छानुसार फल देते
ये भवसागर से जन की नैया खेते–

थी स्वर्ण वेदिका चार वृक्ष को घेरे
मणिमय रत्नों से जटित नखत को हेरे
ज्योतिर्मय जगमग खिले गगन में तारे
आलोक एक क्या सौ सौ जिन पर वारे–

उनमें थे निर्मित चार द्वार चाँदी के
जिनके समक्ष पड़ गये चन्द्र भी फीके
उनके शिखरों पर मुक्ता माल टंगी थी
घंटा ध्वनियों से मानो दिशा जगी थीं–

हो रहे नृत्य बज रहे वाद्य था गायन
बनता था वातावरण और मनभावन
थी आठ मांगलिक वस्तु और मालाएं
लटके थे तोरण रत्न खचित छवि छाये–

झर झर प्रकाश आ रहा फूटकर बाहर
ज्यों विकल चांदनी उतरे आ धरती पर
उस राज मार्ग पर स्वर्ण खंभ के आगे
लटके अनेक ध्वज विविध रंग में पागे

उनकी थी अद्भुत छटा विराट निराले
रत्नों के पीठासन पर खंभे डाले–

वे खड़े खंभ देते भव को सन्देशा
अर्हन्त वीर का कार्य नहीं कुछ ऐसा–

रे कर्म शत्रु को प्रभु ने जीता-जीता
गाओ रे गाओ आज वीर की गीता
वे खंभ अठासी अंगुल वाले मोटे
वे खड़े लगाये हुए ध्यान में गोते–

वे सभी वेदिका बहुत बहुत ऊंचाई
प्रभु की पदरज के हेतु दृष्टि ललचाई
कुछ बढ़ो और तो मिले फटिक परकोटा
ज्यों भूमि शीश पर टंका हुआ हो गोटा–

शोभित सफेद छवि से सब दिशा-दिशायें
वह पद्म राग मणि मन्द-मन्द मुसकाये
तोरण आभूषण नवनिधियां द्वारे पर
था नृत्य-गान गाते वे गान कलाधर–

बज रहे वाद्य ध्वनियाँ छा रहीं दिशा में
चल रहे सभी मिल साथ हाथ को थामे
औ रखे द्वार पर चमर वीजना दर्पण
रे कलश छत्र झारी पूजा हित अर्पण–

था जो मंगलमय द्रव्य भक्ति परिचायक
वे जन जन के थे पूर्ण सुमंगल दायक
वे द्वार देव दरबानों से आरक्षित
कर में कृपाण औ गदा शक्ति अभिलाषित–

उस परकोटे से प्रथम पीठि तक सुन्दर
सोलह दीवारें बनी हुई थीं दृढ़तर
वे रत्न स्तूप परकोटे पर परिसीमित
स्फटिकों के होकर भी लगते थे जीवित–

मणि और स्फटिक के निर्मित थे श्रीमण्डप
मानो जग वैभव यहां बैठ करता तप
करते लक्ष्मीपति यहीं बैठ कर चरचा
तापस करते थे यहीं ध्यान औ अर्चा–

रे भीड़ सदा ही भक्त जनों की लगती
जो आता मन में भक्ति भावना जगती
जय एक बार अर्हन्त वीर की बोलो
लो जितना चाहो धर्म यहीं से तोलो–

होती थी धार्मिक चर्चा और निरूपण
था अनुष्ठान भी और धर्म का साधन
इस तरह मोक्ष लक्ष्मी पाते थे जन जन
इस तरह भक्ति का चलता था आन्दोलन–

इस श्रीमण्डप के बीच पीठिका भाई
वैडूर्य मणी ने धूनी यहीं रमाई
उत्तुंग पीठिका ज्योतित दशों दिशायें
आलोक फूट पड़ता था दायें बायें–

सोलह सीढ़ी थी दे देकर कुछ अन्तर
पीठिका अहा सागर जिसके चरणों पर
थे सभा कक्ष बारह द्वारे उतने ही
औ चारों दिशि की चार पीठिकाएं भी

ये सभी पीठिकाएं विशाल औ भारी
थे आठ सुमंगल द्रव्य धरे सुखकारी
रे प्रथम पीठिका पर सुवर्ण से निर्मित
थी रखी दूसरी पीठि देख मन हर्षित–

आलोक दीप्ति से लज्जित चन्दा सूरज
थी दीप्ति किन्तु लालायित पाती पदरज
उस स्वर्ण पीठि के उर्ध्व भाग हहराती
अंकित चिह्नों की आठ ध्वजा लहराती–

गज वृषभ चक्र वनराज वस्त्र वनमाली
औ गरुड़ पुष्प माला के चिह्नों वाली
या प्रकट कर रही थी गुण आठ सु नर के
या रखे आठ घट थे मंगल जल भर के–

वह रत्न पीठ भी रखा तीसरा उस पर
निर्मित था सारा मात्र रत्न का सुन्दर

इससे विचित्र सी प्रखर रश्मियां फूटीं
जिनसे तम की वह लोह शृंखला टूटी–

कुछ किरण कि कुछ मंगल द्रव्यों के कारण
मन में जाना भव की विभूति की धारण
सम्पदा स्वर्ग की तुच्छ मान कर हंसता
ज्यों मद का तक्षक किसी दीन को डसता–

उस रत्न पीठ के ऊपर गन्ध कुटी थी
सम्पदा सुरों की सौ-सौ जहां लुटी थी
तेजोमय मूर्ति बनी-सी जैसे कोई
जा दृष्टि सुरों की जहां रुक गई खोई–

वे दिव्य गन्ध औ महाधूप थी सुरभित
मन्दार सुमन की पुष्प माल थी अर्पित
अनवरत पुष्प वर्षा भी होती रहती
जिससे सुरभित हो वायु दौड़ती बहती–

फिर हो यथार्थ ही गन्धकुटी तो कैसा
क्यों करें न हम स्वीकार बने जब जैसा
वह गन्धकुटी की थी कुबेर ने रचना
कैसे वर्णन कर सके कि कोई रसना–

उसमें थे दिव्याभूषण मुक्ता माला
उसमें सुवर्ण थे रत्न धधकती ज्वाला
वे रत्न ज्योतिमय करें दूर अंधियारा
वे मंगलमय थे जहां अमंगल हारा–

जिसका वर्णन केवल गणधर कर पाये
क्या करे और जब समझ नहीं कुछ आये
इस गन्धकुटी के बीच स्वर्ण सिंहासन
था पूर्ण अलौकिक रत्न जटित ज्योतिर्धन–

उसके समक्ष रवि प्रखर किरण ले हारा
फिर अन्धकार को मिलता कहां किनारा
यह सिंहासन था धन्य और थे कर्ता
श्री महावीर आसीन हुए दुख हरता–

श्रीवर जिनेन्द्र की कोटि प्रखर आभा थी
जिनसे समता की जली विश्व में बाती
उन प्रभुवर में थी अद्वितीय श्रीमहिमा
रे पूर्ण अलौकिक सकल विश्व की गरिमा–

वह रहे अवस्थित निराधार इस कारण
सिंहासन तल से उठ ऊपर कुछ तारण
वह थे समर्थ उद्धार भव्य करने में
वह थे समर्थ दीनों का दुःख हरने में–
नत विनत सभी थे देव चरण में आकर
करते थे वन्दन अर्चन ललक ललक कर
रचना विशाल थी समोशरण की भारी
मन से कुबेर ने की पूरी तैयारी–

मुनि या विहंग उड़कर भी पार न पावें
शारदा लिखे गन्धर्व युगों तक गावें
अब देव आगमन हुआ घोष जयजय का
कुसुमों की वर्षा हुई हर्ष अक्षय था–
कर प्रदक्षिणा फिर तीन तीन सुखकारी
अन्तर प्रवेश था भीड़ सुरों की भारी
सुरपति ने समोशरण रचना जब देखी
मन में प्रसन्नता छाई अहा अलेखी–

वह चकित थकित थे देख दृष्टि भी ललकी
आनन पर रेखा गहन गर्व की झलकी
वे मान थंभ वे चैत्य और द्रुम छाया
था जहां जिनेश्वर बिम्ब देख हरषाया–

मिलकर सुरेश ने देवों के संग पूजा
सामग्री लेकर अष्ट द्रव्य की दूजा
फिर गये सुरों के साथ जहां प्रभु नीके
दृग भर भर देखें इन्द्र नयन भर पीके

हो गये धन्य सुरराज सफल था जीवन
वह धरा धन्य थी और विश्व का कनकन

सिर पर किरीट सा हेम तुंग सिंहासन
चतुरंगुल ऊपर वीर अलौकिक आनन–

काया भी उनकी तुंग हेम-सी वर्णा
तनदिव्य प्रकाशित दिशाज्योति की धरणा
मुख की आभा थी कान्तिमान तप अर्जित
सूरज चन्दा जिसके समक्ष थे लज्जित–

देकर प्रदक्षिणा तीन इन्द्र सुरगण ने
नत मस्तक थे अब श्री अर्हन्त चरण में
अब शची और अप्सरा आदि की बारी
चरणों में आनत अहा भक्ति थी न्यारी–

अब बैठ गई लो सभा सुरों की आगे
ज्यों कोटि कोटि नक्षत्र दीप थे जागे
सुरपति मस्तक पर रत्नाजटित मुकुट था
चरणों में नत शिर वन्दन हित उत्सुक था–

रे खड़े हाथ जोड़े सब देव अमर थे
करते स्तुति ऊपर उठे प्रार्थना स्वर थे
चतुरानन जगत ईश समोशरण स्वामी
जय जय भुवनेश जयति मोक्ष कान्त गामी–

जय जिनेन्द्र तीर्थंकर
भुवन ईश अभ्यंकर
धर्म ध्वजा धरण ईश
तापस जय जय गिरीश–

रत्न तीन अक्षय निधि
हे अनन्त मुक्ता विधि
जय अनन्त जय प्रधान
नष्ट कर्म अरि महान

निर्विकार होकर साकार मोक्ष कामी
जय जय भुवनेश जयति मोक्ष कान्त गामी–

जगत नाथ जय जय हे
तुम त्रिकाल अक्षय हे

गुरुजन के गुरु सुजान
पूजित जिनराज मान
योगी तुम शुद्ध काय ज्ञान ध्यान दानी
जय जय भुवनेश जयति मोक्ष कान्त गामी–

तीन जगत लक्ष्मी पति
सेवा कर पायें गति
अशरण के शरण चरण
धर्म ध्वजा कर धारण
जयति विश्व रक्षक हे तव पथ अनुगामी
जय जय भुवनेश जयति मोक्ष कान्त गामी–

मोह जगत योद्धा हे
काम क्रोध को दाहे
भुवन उदित छत्र तीन
मुक्ता छवि तन प्रवीन
तात मात गुरुजन जय जयति धर्म ज्ञानी
जय जय भुवनेश जयति मोक्ष कान्त गामी–

रागी उर में विवेक
विजित करी कर्म रेख
तुमसे ही कीर्ति बेल
नभ से चढ़ करे खेल–
कामधेनु चिन्तामणि युग की गति थामी
जय जय भुवनेश जयति मोक्ष कान्त गामी–

आज हुआ दिवस धन्य
हम-सा अब कौन अन्य
दरस परस वरद दृष्टि
आज धन्य सकल सृष्टि
जय जय वागीश जयति चार ज्ञान ज्ञानी
तुम अनन्त हे गुणज्ञ समता जग हामी
जय जय भुवनेश जयति मोक्ष कान्त गामी–

×

(२)

जय वर्द्धमान जय जय जिनेन्द्र
अन्तिम तीर्थंकर–
जय सकल सुमंगल दायक
सुयश पताका हर हर–

जय विश्वंभर हे सदा
सुमति शुभगति के दाता
जय तीन लोक के नायक
हे रक्षक भव त्राता
तुम रागी होकर भी
विराग के प्रबल समर्थक
तुम पुरुषोत्तम योगी-भोगी
तप में रत भर - सक

जय गुण वारिधि तुम को प्रणाम
जय जय हे जिनवर
जय मण्डित विश्व विभूति
ज्ञान पथ गामी गुरुतर–

जय हे तुम जिनसे आलोकित
हैं दिशा दिशायें
तुम सकल सिद्धि के दाता
चरण शरण में आये
जय ज्ञानी ध्यानी हे
विराट लोकोत्तर कामी
हे मृत्युजयी तीनों युग
तीनों जग के स्वामी

जग में रहकर भी हे
विदेह तुम पूर्ण दिगम्बर
तुम ज्ञान मुक्ति के कमल
लुटाते अंजलि भर-भर
जय वर्द्धमान जय जय
जिनेन्द्र अन्तिम तीर्थंकर–

तुम दीनों के सरताज
शरण में जो भी आता
जय कल्पवृक्ष हे तुमसे
जग वांछित फल पाता
तुम जग के बांधव तात
मात तुम हे गुरु ज्ञानी
हे कालजयी कर्मारि
योग बल तापस ध्यानी

झरती अजस्र वाणी नित
नूतन मंगल झर झर
तुम काम क्रोध मद लोभ
पाप के मिस प्रलयंकर
जय वर्द्धमान जय जय
जिनेन्द्र अन्तिम तीर्थंकर–

×

जल वृष्टि धरा पर जलद गगन से करते
धरती का सारा ताप पाप मल हरते
ऐसी ही वर्षा देव पुष्प की होती
श्री प्रभु के चारों ओर बिखरते मोती–
पुष्पों की जब मादक सुगन्ध उठ फैली
आगई भ्रमर की श्यामल पंक्ति छबेली
उड़ गुन गुन करते फूल फूल के ऊपर
या करते थे गुणगान वीर गुनगुन कर–

प्रभु के समीप ही था अशोक तरु ऊंचा
करता विनष्ट भव मन का शोक समूचा
वे फूल रत्न-से रंग बिरंगे मनहर
जिनकी सुगन्ध फैलाता मलयज उड़कर

जब वायुवेग से होते पुष्प प्रकाशित
चंचल शाखाओं से हो गये प्रकम्पित
मरकत मणियों से पत्ते हरे भरे थे–
या हरित रंग मणि चित्र विचित्र धरे थे

शाखायें हिल मिल मानो शीश झुकाती
या प्रभु सेवा हित भव के जीव बुलाती
वे तीन श्वेत श्री छत्र तने मस्तक पर
ज्यों जीत चुके हों तीन लोक विश्वम्भर–

छत्रों के चारों ओर लटकते मोती
उज्ज्वल प्रकाश की छिटक रही थी जोती
वे छत्र दण्ड प्रिय रत्न अनेक जड़े थे
रे देख ज्योति को चन्द्र सु मन्द पड़े थे–

वे यक्ष चमरधारी बन चमर डुलाते
या क्षीर सिन्धु उज्ज्वल जल अर्घ्य चढ़ाते
प्रभु बाह्य और अभ्यन्तर से शुचि पावन
थे मोक्ष कामिनी के प्रियतम मन भावन–

उठ गई तभी सहसा गंभीर ध्वनि भारी
देवों ने मिल घंटा घंटियां संवारी
ऐसा प्रतीत होता मिल ढोल बजाते
वे कर्म शत्रु दल आज जीतने जाते–

या बजा घंटियां श्री जिन उत्सव करते
कर जय निनाद मन में सुमोद नव भरते
प्रभु के अंगों से फूट रही दिव्याभा
वह देख प्रखर लज्जित थी रवि की आभा–

रे कोटि सूर्य-सा प्रभा पूर्ण मुख मण्डल
पापीजन को लगता था प्रिय परमोज्ज्वल

रे तेज कोष करता विनष्ट भव बाधा
वह तेज कि जो प्रभु ने समष्टि में साधा–

प्रभु मुख से निकला शब्द दिव्य ध्वनि देता
वह लोकमंगला भाव नाव को खेता
वह तत्त्व स्वरूपा अहा अलौकिक वाणी
वह धर्मतत्त्व का सार दिव्य कल्याणी–

जैसे पहले जलमेघ एक ही रहता
लेकिन वर्षाजल विविध धार में बहता
वह दिव्यध्वनि भी प्रभु की पहिले पहिले
रहती अनक्षरी पूर्व कि मुख से निकले–

जब निकल गई बन गई कई धारायें
जन जन के मन का भ्रम सन्देह मिटाये
वह रत्न पीठ का बना स्वर्ण सिंहासन
आसीन हो रहे महावीर मन भावन–

वह धर्मराज से लगते धर्म प्रणेता
रे कर्म शत्रु के वह ही मात्र विजेता
वे पूर्ण अलंकृत आठ कि प्रतिहार्यों से
वह थे आचार्य कि जग के आचार्यों के–

थे महावीर आसीन सभा मण्डप में
वे योगीश्वर आसीन लीन थे तप में
प्रभु महावीर थे शोभित सिंहासन पर
योगी होकर भी भोगी पूर्ण दिगम्बर–

उस स्वर्णासन की पूर्व दिशा से लेकर
मण्डप से आगे चले और दो डग भर
बैठे थे गणधर और मुनीश्वर ज्ञानी
बैठे थे निज आसन पर सकल प्रमाणी–

दूजे प्रकोष्ठ में शची कल्प की वासी
थी अन्य देवियां और सेविका दासी
तीजे प्रकोष्ठ पर अर्जिक श्रविकाएं थीं
चौथे में ज्योतिष देव देवियां बैठीं–

पांचवें कोष्ठ देवियां व्यन्तरों की थीं
छठवें प्रकोष्ठ में थी पद्मावत देवी
सातवें कोष्ठ धरणेन्द्र और भी देवा
अष्टम में व्यन्तर देव और थे सेवा–

नवमें प्रकोष्ठ में सूर्य चन्द्र भी बैठे
औ अन्य कल्पवासी बैठे दशमें थे
थे ग्यारहवें में मनुज और विद्याधर
थे सिंह और मृग बारहवें में आकर–

बारह प्रकोष्ठ यों पूर्ण सभा में सारे
बैठे विनम्र प्रभु के समक्ष साभारे
थे सभी विनत कर बद्ध ध्यान में बैठे
प्रभु के वचनामृत पाप क्षार कर देते–

यों घिरे हुए अर्हन्त वीर आसीना
दैठे थे प्रभुवर सहज ध्यान में लीना
कर रहा प्रभावित ज्योतिर्मय मुख-मण्डल
प्रभु का दर्शन दे रहा उन्हें मुद मंगल–

तदनन्तर सुरपति उठे सुरों के ईशा
बोले: 'जय जय अर्हन्त वीर वागीशा'
फिर की प्रदक्षिणा तीन वीर की मिलकर
कर रहे सभी मिल देव वीर जय-जय स्वर–

श्रद्धा पूरित सब देव सभा में आये
थे जहां वीर सिंहासन पर मन भाये
वह समोशरण भू अशरण के हित शरणा
थे महावीर प्रभु नील रत्न मणि वर्णा–

कर रहे प्रथम वह मान चैत्य की पूजा
जिनमें प्रतिबिम्बित चित्र वीर का दूजा
रे की कुबेर ने समोशरण की रचना
हर्षित विलोक सुरराज मूक थी रसना–

सुरगण प्रकोष्ठ में पहुंच इन्द्र ने देखा
उत्तम थल पर सिंहासन धरा विशेषा

थे शुभासीन जिस पर श्री प्रभु चतुरानन
गुण कोटि युक्त तेजोमय तापस जीवन–

श्री महावीर की देख अलौकिक झांकी
रे मन में सौ सौ बार दिव्य छवि आंकी
हो श्रद्धायुत निज शीश चरण में टेका
आनत सुरगण ज्यों खिंची स्वर्ण की रेखा–

आई इन्द्राणी अन्य देवियां आईं
कर रही वन्दना हिलमिल कर सुखदाई
सुरराज इन्द्र नत विनत शरण में जाकर
की विनत वन्दना श्रद्धा फूल चढ़ाकर–

करते प्रणाम आभा किरीट की झलकी
गिर प्रभु चरणों पर निखरी हलकी-हलकी
प्रभु गुण पर सब अनुरक्त देवगण होकर
थे उत्तम द्रव्यों से पूजन को तत्पर–

तदनन्तर स्वर्ण कलश से लगे गिराने
प्रभु पाद पद्म पर निर्मल जल धारायें
जब क्षीरोदक से हुआ पाद प्रक्षालन
स्वर्गिक सुगन्ध से युक्त पिसा ले चन्दन–

स्वर्णिम सिंहासन अग्र प्रथम था पूजन
मुक्ता अक्षत ले पांच किये पद अर्पण
करती थी उज्ज्वल प्रभापूर्ण नभ मंडल
वे नवल धवल से श्वेत-जोत्स्ना उज्ज्वल–

ले कल्पवृक्ष के पुष्प सुगन्धित कर में
श्रद्धापूरित हो लगे चरण में धरने

फिर अमृत पिण्ड से जो नैवेद्य बनाया
प्रभु की सेवा में विनत प्रसाद चढ़ाया–

लो रत्नजटित दीपक में बाली बाती
लो धूप वर्ति से उठा धूम मदमाती
उस धूप धूम से सुरभित दिशा दिशा थी
लो उठा धूम जलती थी रह रह बाती–

चरणों में अर्पित कल्पवृक्ष के फल थे
नयनाभिराम मधु सकल कल्पतरु दल के
की प्रभु के चारों ओर पुष्प की वर्षा
सरसा सुरेन्द्र का आज सुजीवन हर्षा–

फिर पंच रत्न का चूर्ण सुमंगल लेकर
साथिया बनाया इन्द्राणी ने भू पर
यों कर विधिवत् अर्हन्त वीर का पूजन
करते इन्द्राणी और इन्द्र स्तुति वन्दन–

कर बद्ध खड़े नतशीश ध्यान में लीना
वन्दन स्वर फूटे और बज उठी वीणा
सुरपति की भक्ति अगाध वीर के आगे
ध्यानावस्थित थे किन्तु एक क्षण जागे–

जय जय प्रभु वर्द्धमान मंगल सुखकारी

धवल कान्ति हिमतुषार
शोभित तन पुष्प हार
मुख से स्तव सुधाधार
दूर सकल कर विकार

धर्म चक्र ध्वजा धार जय भव भय हारी
जय जय प्रभु वर्द्धमान मंगल सुखकारी–

विश्व ज्योति भर विराग
कर्म शत्रु बने नाग
तपहित दिनरात जाग
ऐसी वह जली आग

सम्यग् दर्शन सुरत्न कोष लिये भारी
जय जय प्रभु वर्द्धमान मंगल सुखकारी–

तुमसे अपरिग्रह महान
करते नित धर्म दान
नभ से उठ विजय गान
धर्म चक्र महीयान

यौवन तप तपा बने पूर्ण ब्रह्मचारी
जय जय प्रभु वर्द्धमान मंगल सुखकारी–

जन जन के हे सुगेय
एक पन्थ एक ध्येय
बांट रहे सुधा पेय
हे विरक्त हे अजेय

छोड़ा धन धाम सकल वासना विकारी
जय जय प्रभु वर्द्धमान मंगल सुखकारी–

मोक्ष कामिनी सुकन्त
योगीश्वर तुम अनन्त
हे जिनेन्द्र महासन्त
कर्म जाल किया अन्त

मोक्ष पथ प्रदर्शक निधि विजित विश्वसारी
जय जय प्रभु वर्द्धमान मंगल सुखकारी–

विश्व विजय की सुकाम
लो हे शत शत प्रणाम
दाता में तुम सु नाम
रक्षक भव दया धाम

जयति जयतु काम क्रोध लोभ मोह जारी
जय जय प्रभु वर्द्धमान मंगल सुखकारी–

यों देव सहित कर महावीर स्तुति वन्दन
शचि और इन्द्र ने अहा किया हर्षित मन

निज निज प्रकोष्ठ में जाकर बैठ गये सब
सब लालायित पीने को प्रभु स्वर आसव–

कब झरे वीर श्री मुख से अमृतवाणी
कर सके विश्व कल्याण अहा कल्याणी
लेकिन सुरेन्द्र के समझ नहीं कुछ आया
मुखरित वाणी ने नाद नहीं कुछ पाया–

सब शान्त मौन सुरराज देव मुनि ज्ञानी
सब सुनने को थे व्यग्र सुधा रस सानी
क्या कारण है आगई कौन सी बाधा
किसलिए मौन प्रभु की वाणी ने साधा–

उच्चारण करते थे यद्यपि श्री प्रभुवर
हो रहा क्षरित उच्चारण लेकिन सत्वर
रे शब्द शब्द मुख के बन रहे अनक्षर
अब जान गये सुरराज नहीं थे गणधर–

रे और नहीं कुछ अवधि ज्ञान के कारण
कर सके न कोई मुनि गणधर पद धारण
बारह प्रकोष्ठ में कितने ही मुनि ध्यानी
कोई मुनीन्द्र बन सका न लेकिन ज्ञानी

जो प्रभु के मुख से बहिर्भूत स्वर सुनकर
बन सके यहाँ कोई मुनीन्द्र हो गणधर
कर सके और फिर द्वादशांग की रचना
हो सके सत्य साकार युगों का सपना–

यों चिंतित थे सुरराज करें क्या कैसे ?
उपलब्ध हो सके गणधर चाहे जैसे
सौधर्म इन्द्र चिन्तना युक्त चलता था
होता विलम्ब गति का सूरज ढलता था–

तब अनायास ही कहा किसी ने 'स्वामी!
है इसी नगर में एक श्रेष्ठ गुण ज्ञानी
गौतम कुल भूषण गौतम नामक ब्राह्मण
गणधर श्रीपद के योग्य सभी वे लक्षण–

'हां-हां विचार उत्तम' स्वर में रस घोले
'ब्राह्मण आयेंगे यहां'–इन्द्र यों बोले
ब्राह्मण कैसे उपलब्ध हो सके लेकिन
मन में अपार चिन्ता सुरेन्द्र के पल छिन–

गौतम ब्राह्मण आचार्य और थे पण्डित
वह शास्त्र रचयिता सकलकला वर मंडित
लेकिन विद्या के मद में थे अभिमानी
शास्त्रार्थों में थे पारंगत सम्मानी–

वह वाद और प्रतिवाद कुशल था सारा
जो भी आया सम्मुख विवाद में हारा
थे द्विजवर के भी शिष्य पाँच सौ ज्ञानी
वह सिद्ध हस्त थे स्वयं सिद्ध थी वाणी–

अभिमान विप्र का कहीं नष्ट कर पायें
यह संभव है वह स्वयं सभा में जाये
फिर कार्य सफल होगा-होगा मन चीता
प्रभु की वर-वाणी बने विश्व की गीता–

रचना हो चतुष्पदी की अर्थ गंभीरा
जो कहें बतायें अर्थ · सरल द्विज धीरा
जो बता न पायें मान भंग हो निश्चय
निश्चित होगी मेरे सुकार्य की जय-जय–

मुख पर प्रसन्नता की आभा आ दमकी
सुरराज इन्द्र की आँख हर्ष से चमकी
कैसा विलम्ब शीघ्रम् शुभस्य सुखकारी
बन गये इन्द्र अब विप्र रूप वर धारी–

गौतम द्विज के गृह पहुंचे धर्म-धुरीणा
अध्ययन और अध्यापन में थे लीना
पढ़ रहा वेद तो शास्त्र पढ़ रहा कोई
कर पाठ श्लोक की मुक्ता माल पिरोई–

शोभित थे वर आसन पर गुरुवर गौतम
फैला था ज्ञान प्रकाश यहाँ उज्ज्वलतम

द्विज थे , तीत ज्यों नभ में बैठ सुधाकर
फैलाता भू पर धवल ज्योति शीतलतर–

वे शिष्य सभी ज्यों नभ में नखत जड़े थे
चन्दा के सम्मुख बैठ सभी पढ़ते थे
छा गया मौन लो ध्यान सभी का टूटा
आगत द्विजवर ने सहज दृष्टि को लूटा–

द्विजराज वृद्ध मुख कान्ति फूट पड़ती थी
थे श्वेत केश दीर्घायु बताते बीती
युग पद में थीं पादुका बंधीं थी धोती
कांधे पीताम्बर दबी बगल में पोथी–

माथे पर चन्दन तिलक लगा था प्यारा
यष्टि का हाथ की जो थी मात्र सहारा
मुख से उच्चारित स्वस्ति वचन कर बोले
ज्यों मेघरन्ध्र से निकल-विकल स्वर डोले–

द्विजवर अवसर यह बड़े भाग्य से आया
गौतम कुल भूषण गौतम दर्शन पाया
यों तो प्रशस्ति है सुनी आपकी भारी
तुम से सुधन्य हो गई कलायें सारी–

हे विद्याधर तुम हो महान वर ज्ञानी
तुम वेद शास्त्र पारंगत विद्या दानी
श्री वर्द्धमान जिनराज मात्र गुरु मेरे
निज ज्ञान ज्योति से हर अज्ञान अंधेरे–

उनके चरणों में मेरा सभी समर्पण
जो मुझे काव्य का करते हैं अध्यापन
दुर्भाग्य मौन हो गये आज करुणाकर
अब किससे जानूं अर्थ काव्य का जाकर–

मैं अर्थ जानने आया हूं सेवा में
दे बता काव्य का अर्थ मुझे कर थामें
हे शास्त्र पुराण रचयिता काव्य कलाधर
हे शान्त रूप गुणवान श्रेष्ठतम गुरुवर–

है काव्य श्लोक मेरा जो अर्थ बताये
हम अर्थ मात्र के हेतु यहाँ हैं आये
थी मुख मुद्रा गंभीर उठे स्वर डोले
बोले गौतम-'अब भेद काव्य का खोलें–

हो काव्य पाठ मैं निश्चय अर्थ करूंगा
वह आज अभीप्सित विप्र तुम्हारा दूंगा
लेकिन फिर पारिश्रमिक कहो क्या दोगे
उत्तर था:–हे द्विजवर जो भी चाहोगे–

मैं शिष्य बनूंगा हे द्विजराज तुम्हारा
तुम गुरु प्रधान मैं तुम्हें समर्पित सारा
"गुरुदेव शिष्य बोले यह विप्र विवादी
क्या नहीं परीक्षा लेंगे यह उन्मादी"–

"हम कहें काव्य यह इसका अर्थ बतायें
हम शिष्य बनें यह गुरु प्रधान बन जायें"
"क्यों व्यर्थ बीच में बोल रहे हो भाई
तुममें विनम्रता तनिक नहीं आ पाई"–

जो होता इतना ज्ञान अर्थ बतलाता
तो तुम्हीं कहो क्यों व्यर्थ शरण में आता
"सब शिष्य शान्त हों औ विनम्रता पायें
अनुचित है द्विज से व्यर्थ विवाद बढ़ायें–

है उचित यही अब विप्र श्लोक कह डाले
जिसका यह मुझसे अर्थ उचित ही पाले"
तब सुरपति ने मन में विचार कर क्षण भर
कर दिया श्लोक गम्भीर पाठ वह सस्वर–

"त्रैकाल्यं द्रव्यषटकं सकल गति गणा सत् पदार्था नवैव
विश्वं पंचास्तिकाया व्रत समिति चिदः सप्त तत्त्वानि धर्माः।
सिद्धेर्मार्गः स्वरूपं विधि जनित फलं जीव षट्काय लेश्या
एतान यः श्रद्दधाति जिन वचन रतो मुक्ति गांभीरु-भव्याः ॥१॥

गम्भीर स्वरों में श्लोक अर्थ गम्भीरा
सुनकर गुरु गौतम क्षण भर हुए अधीरा

कितना गंभीर गुरु श्लोक उसे क्या माने
जो पूर्ण काव्य मर्मज्ञ अर्थ वह जाने–

थे शिष्य सभी सुन मौन-मौन था छाया
क्या कहें एक भी शब्द न मुख से आया
निश्चित ही ऐसा श्लोक अर्थ हो गुरुतर
होगा अवश्य ही गुरु वह काव्य कलाधर–

गुरु नहीं मात्र वह सकल विश्व गुरु होगा
है जीवन उनका धन्य उन्हीं ने भोगा
चलती थी चिन्ता की अबाध गति आगे
होते थे गौतम मौन और सब जागे–

क्या काव्य अर्थ अब मान भंग का भय था
वह श्लोक पा चुका उन पर आज विजय था
त्रैकाल्यं का तो होता अर्थ अपारा
हैं काल कौन से तीन सोचकर हारा–

यों वर्तमान और भूत भविष्यत् होते
ये तीन काल हम एक वर्ष में बोते
फिर वस्तु कौन सी इस त्रिकाल में होती
सर्वज्ञ मात्र पा सके अर्थ का मोती–

रे द्रव्य षटक में द्रव्य कौन क्या कितने
गतियां कितनी होती पैदा मर-मिटने
फिर हो स्वरूप क्या समझ न पाया भाई
मर्मज्ञ वही जिसने त्रिकाल गति पाई–

उत्तम पदार्थ नव कौन-कौन से जग में
कुछ सुना नहीं मैंने अब तक इस मग में
विश्व में कौनसा अन्य विश्व है दूजा
या अन्य और त्रैलोक्य जा रहा पूजा–

'पंचास्तिकाय में अस्ति काय फिर क्या है
है पांच कौनसी और बनी क्या राहें
व्रत समिति चिदः में कौन और क्या व्रत है
रे समिति किसे कहते किससे आदृत है–

फिर पंच ज्ञान का क्या स्वरूप क्या फल है
क्या सप्ततत्त्व के सात भेद अविचल हैं
क्या धर्म और क्या सिद्धि-सिद्धि के मग में
निष्पत्ति कार्य भी और भला क्या जग में–

क्या मार्ग एक होकर अनेक हो पाते
क्या संभव यद्यपि सुनते और सुनाते
फिर है स्वरूप क्या इसकी विधि भी आखिर
विधि जनित कौनसा फल हो सकता है फिर–

क्या फल होता क्या षट्कायी है जीवन
क्या षट्लेश्या भी कितना अर्थ गंभीरण
इनका क्या लक्षण औ स्वरूप भी होता
रे हृदय चिन्तना भार और भी ढोता–

जब खोज न पाये श्लोक अर्थ गुरु गौतम
हो सका अर्थ का नहीं तनिक भी निर्गम
लघु श्लोक अर्थ तो लेकिन इसका भारी
इनमें मणियां सिद्धान्त भरी हैं सारी–

यह विप्र वृद्ध मानों सिद्धान्त सुज्ञाता
यह श्लोक बन गया मेरा भाग्य विधाता
जो उत्तर दूं कुछ अर्थ नहीं कर पाया
हो मान भंग जीवन ही व्यर्थ गंवाया–

अब उचित यही जा निकट उन्हीं गुरुवर के
शास्त्रार्थ करूं क्यों नहीं कि विद्याधर से
बोले गौतमः क्यों करूँ वाद मैं तुमसे
चल साथ करूंगा बात तुम्हारे गुरु से"–

कह चले साथ द्विज के गुरु गौतम ब्राह्मण
चल पड़े साथ निज गुरु के शिष्य सभाजन
इच्छा थी मन में शास्त्रार्थ करने की
है अन्य कौन यह गरिमा पढ़ी न देखी–

रे चले साथ में गौतम के दो भाई
वे वायुभूत और अग्निभूत समग्राही–

वे शिष्य पांच सौ और साथ में जाते
मन में उमंग थी दर्शन की मुद पाते–

चल रहे पंथ में चरण चले अनुरागी
चिन्तना चल रही थी मन में रस पागी
द्विज के सम्मुख ही अर्थ न जब कर पाये
गुरु के समक्ष क्या क्षण भर भी टिक जायें–

यह सोच हुआ क्षण भर को तन में कम्पन
आश्वस्त किया लेकिन सुबन्धु ने तत्क्षण
जो वर्द्धमान की चरण शरण हम जावें
कुछ हानि नहीं बस लाभ वृद्धि ही पावें–

कुछ दूर दृष्टि जब गई कि सबकी ऊपर
था समोशरण का थंभ विविध वर्णोधर
वह मान थंभ उत्तुंग विराट अपारा
द्विज मान शैल अब किन्तु खंड था सारा–

गौतम मन में जो रही मान की इच्छा
थी मान भंग दर्शन से पूर्ण परीक्षा
हो गई स्वयं ही दूर सभी चिन्तायें
अरमान मान के नहीं शेष रह पाये–

खिल रहे सुकोमल भाव कमल से मन में
पहुँचा गौतम दल वीर सभा मंडप में
थे चकित थकित दिक् भ्रमित देखकर वैभव
पी रहे नयन प्रभु छवि मधु रस का आसव–

थे रत्नासन पर महावीर आसीना
आसीन सभासद भी सब धर्म धुरीणा
रे रिद्धि-सिद्धि सब विनत खड़े सेवा में
पहुंचा सिंहासन निकट विप्र मन थामें–

दर्शन से ही सब ज्ञान गुमान हिराना
था उदय ज्ञान का आज हृदय में जाना
श्रद्धापूरित की प्रदक्षिणा द्विजवर ने
श्रद्धा प्रसून द्विज लिये हुए थे कर में–

चरणों में प्रभु के विनत माथ को टेका
प्रभु के विराट वैभव स्वरूप को देखा
अब भक्ति भावना लगी हृदय में भरने
स्तुति लगे एक सौ आठ नाम की करने–

स्तुति

जय-जय प्रभु धर्म राज धर्मी चक्री सुधर्म
धर्म तीर्थ कर्ता हे धर्म-वेद धर्म कर्म
करते नेतृत्व धर्म जयति धर्म कर्ता
धर्म के मुक्ति धर्म आराधित भर्ता

धर्म ईश धर्म वित्त धर्म ज्येष्ठ बान्धव
धर्मातप नीति धर्म धर्म प्रेम जय भव
धर्म ज्ञात भीत धर्म धर्म भाग्य धर्म अज
धर्म राज महा धर्म धर्म वीर सफल यज्ञ–

महादेव महानन्द महाईश हे सुदेव
महातेज महामात्य महापूत हे सुसेव्य
महापूत महातपा महोदात्त आत्मा
महायोग योगी व्रत महा परम आत्मा–

महाज्ञान महाध्यान महाकरुण कोविद
महावीर महाधीर महाईश शोभित
महादातृ रक्षक हे महाकर्म धरणीधर
जगन्नाथ जगकर्ता जगभर्ता श्रीवर–

जगपति जगज्येष्ठ मान्य जगत सेव्य दानी
जगबान्धव जगतजीत जगनेता मानी
जग प्रभु कृत तीर्थ भूत आत्मा हे तीर्थ नाथ
तीर्थ वित्त तीर्थंकर तीर्थ आत्म झुका माथ–

तीर्थ हृदय तीरथपति तीर्थराज तीर्थांकित
तीर्थभूत तीर्थंकर तीर्थंकरण विश्वनमित
विश्वतत्त्व विश्वअज्ञ विश्वव्याप्ति विश्वायित
विश्व विज्ञ विश्वराध्य विश्व लोक नायित–

विश्व अग्र विश्व भ्रात्य विश्व आर्य नायक
विश्वनाथ विश्व वंद्य विश्व धृती दायक
विश्व धुरी विश्व कृती लोक अज्ञ अज्ञ सर्व
सर्व लोक अज्ञ अये सर्व-पाप भाव खर्व–

सर्वात्मा सर्वाविद सर्व धर्म ईशा
सार्व सर्व बुधा गुणी देवाधिप दीशा
सर्व देव सर्वाधिप ईश सर्व लोका
ईश सर्व विद्या के भाक् शर्म ओका–

इन पूर्ण एक सौ आठ नाम से स्वामी
स्तुति आज तुम्हारी करता अन्तर्यामी
वे रत्न खचित मणि जटित तुम्हारी प्रतिमा
पुजित मुझ से मेरे जीवन की गतिमा–

जो भक्ति भाव से वन्दन करते प्राणी
वे बन जाते त्रैलोक्य अखिल के स्वामी
जो श्रेष्ठ स्निग्ध परमाणु पुंज हैं सारे
है बना उन्हीं का तन जिसको तुम धारे–

रे कोटि सूर्य-सा दिव्य तुम्हारा तन है
सब दिशा दिशा आलोकित पुंज सघन है
यह निर्विकार औ दीप्तिमान मुख मडण्ल
कहता उतना ही हृदय तुम्हारा उज्ज्वल–

रख दिये पूज्य पावन युग पद जिस थल पर
बन गये सभी वे पुण्य तीर्थ पग छूकर

वन्दित जग में वे श्रेष्ठ सभी मुनिजन से
सब दिशा दिशा गुंजित है गुण गुंजन से–

यह देश काल है धन्य कि तुम-सा पाया
औ गर्भादिक् कल्याणक जहां मनाया
कैवल्य ज्ञान ने आँख जहाँ पर खोली
अज्ञेय बना रह गया लिये वर डोली–

रे वह अनन्त जगवन्द्य ज्ञान करुणामय
हे वीर्यवान निर्दोष वीर्य तव अक्षय
तुममें असंख्य गुण किन्तु नहीं साधारण
वह है अनन्य अज्ञात तुम्हारा वन्दन–

तुम पूर्ण कामना शून्य सम्पदा शाली
प्रतिहार्य सभी सम्पदा आठ के माली
क्या गिन सकते हैं कहीं मेघ की धारा
क्या कहीं गिना जा पाता नभ का तारा–

गुण तुममें इतने श्रेष्ठ असंख्य अनन्ता
फिर कैसे हो गुण गान कहो भगवन्ता
तव गुण की स्थिति जब गणधर जान न पाये
तुम कहो भला फिर जग में कौन बताये–

हे दिव्य मूर्ति सर्वज्ञ अनन्त स्वरूपा
है नमस्कार शत विश्व विभव के भूपा
हे बन्धु परम निर्दोषरूप लोकोत्तम
हे जगत शरण हे मन्त्रमूर्ति पुरुषोत्तम–

जय महावीर हे वर्द्धमान सन्मति हे
सुख के अनन्त सागर तुम से ही गति है
हे जगत गुरु शत नमस्कार शत वन्दन
मांगता नहीं मैं तीन लोक वैभव धन–

रे कर्म नाश उत्पन्न सम्पदा स्वामी
मैं बनूं आपके ही पथ का अनुगामी
मैं भव सागर में डूब थपेड़े खाता
अब मात्र रह गया प्रभु चरणों से नाता–

मैं तो लोभी हूं तुम उदार अतिदाता
मैं गीत सुयश के आज तुम्हारे गाता
सम्पदा तुम्हारी अक्षय मोक्ष प्रदाता
दो मुझे कृपाकर जग के भाग्य विधाता–

यों कर अनेक मंगल स्तुति वन्दन अर्चन
गौतम ब्राह्मण ने किया वीर अभिनन्दन
भर ललक दृष्टि से महावीर को देखा
हो गये धन्य खिंच गई पुण्यतम रेखा–

वह बार बार प्रभु को प्रणाम करते थे
भव पाप ताप दुख दैन्य जन्म हरते थे
गौतम द्विजवर हो गये इन्द्र से पूजित
सम्यक् दर्शन का ज्ञान मिल गया वन्दित–

वह श्रेष्ठ धर्म उत्तम सुपन्थ के दाता
अब गौतम थे कर्मारि कर्म दल घाता–

बन गये विप्र गौतम प्रधान
जीवन सुधन्य था चतुर ज्ञान
गौतम ने पाया दिशा ज्ञान
अब द्वादशांग सम्भव महान

□

—×—

[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]

छठा सर्ग

छठा सर्ग

लेखनी उठ साथ में हो जा
कल्पना ने पन्थ निज खोजा
वन्दना में शीश नत मेरा
चाहिये सम्बल मुझे तेरा

तू चले मैं लिख सकूं अविराम
चाहिये मुझ को नहीं विश्राम
पन्थ में बन जाय तू मीता
लिख सकूं प्रभु की सुयश गीता–

कर सकूं आराधना पूरी
और बढ़ती जा रही दूरी
रह सकूं मैं साधना में लीन
भक्ति का लेकर प्रसू मैं दीन–

डूबता ही जा रहा हूं नाथ
क्या न आकर थाम लोगे हाथ
है सघन अज्ञान तम की रात
ज्ञान का उतरे सलौना प्रात–

वीर प्रभु आसीन थे छवि धाम
दिव्य मुख मण्डल मुखर गुण ग्राम
उठ सहज द्विज ने झुकाया शीश
जयति जय अर्हन्त जय वागीश–

प्रश्न कुछ प्रस्तुत करें पूरे
हम सघन अज्ञान में डूबे
विश्व के नायक जगत त्राता
ज्ञान सुख औ मोक्ष के दाता–

मोक्ष गति दायक महा देवेश
दे सभा को दिव्य प्रभु उपदेश
जीव के क्या तत्त्व क्या लक्षण
चाहते हम कुछ कहें भगवन–

तत्त्व की क्या क्या अवस्थायें
और गुण भी आज समझायें
और जग जन के कहें पर्याय
मोक्ष जिनसे यह जगत पा जाय–

और फिर वह कौन तत्त्व अजीव
भेद गुण औ तत्त्व उनकी नींव
कहें आस्रव आदि कितने तत्व
दोष गुण कारण बतायें सब–

तत्त्व के फल और लक्षण कौन
कौन कर्मा और स्वामी मौन
कौनसा वह तत्त्व साधे मोक्ष
नर्क में ले जाय कार्य परोक्ष–

कर्म क्या जो भेजता तिर्यंक
और जिससे नृपति बनता रंक
कर्म कारण और उसके सर्ग
आचरण कर विश्व पाये स्वर्ग–

कहें यह भी कौनसा वह दान
भोगता नर भोग सुख की खान
आचरण जिससे न हो वह कौन
प्राप्त करता जीव नारी यौन–

आचरण फिर कौन जिसको धर
बन सके यह जीव जाकर नर

यह बतायें जीव किस कारण
रूप करता नपुंसक धारण–

फिर बतायें कर्म कारण और
आचरण से दुःख पाते घोर
जीव बनते प्रबल पागल अंध
गूंग बहरे आह और अपंग–

और है किन कर्म का यह योग
बने रोगी और पूर्ण निरोग
कर्म का कुछ कहें और स्वरूप
रूपवन्ता बने जीव कुरूप–

कर्म को किस रूप में पाया
मिल रहा सौभाग्य दुरभागा
क्यों न हो यह कर्म फिर दण्डित
जो बनाता मूर्ख औ पण्डित–

कर्म की क्या शुद्धि और अशुद्धि
जो बनाता बुद्धिमान कुबुद्धि
औ बतावें कर्म के गुण ग्राम
दे रहे जो शुभ अशुभ परिणाम–

कर्म को किस तत्त्व ने थामा
बने धर्मात्मा कि पापात्मा
क्या अधिक कुछ एक दो या तीन
भोगते कुछ और भोग विहीन–

और क्या कुछ कर्म है बलवान
कुछ बने निर्धन कि कुछ धनवान
कर्म के ही और कितने भोग
दें कभी संयोग और वियोग–

मिल गये तो हर्ष आ छलका
चल दिये तो नयन जल ढुलका
इष्ट मित्र कुटुम्ब बान्धवजन
क्या न देते हर्ष दुःख सघन–

पितृ सम्मुख पुत्र क्यों मरता
या मिले सुत कामना करता
कामिनी होकर बनी वन्ध्या
चिर गई लो भाग्य पर संध्या–

कर्म ऐसे कौन से जग में
क्या न है कण्टक सुमन मग में
सुत किसी का पूर्ण आयुष्मान
एक को अल्पायु में श्मशान–

एक नर है बन रहा कायर
एक लेकिन बना यायावर
और कोई है प्रकृति से वीर
किन्तु कोई है गहन गम्भीर–

क्या बनेगा एक ही कारण
या अनेकों ही न अवतारण
क्या न केवल मन्त्र मात्र प्रभाव
कुयश यश की तैरती क्यों नाव

कर्म की लहरें अनेकों नील
और दोनों ही कुशील सुशील
क्यों कुसंगति औ सुसंगतियां
क्यों सुमति है और दुर्मतियां–

आह क्यों जड़ता मनुज पाता
क्यों विवेकी दूसरा त्राता
जन्म से ऊंचा किसी का कुल
निम्नकुल का है मनुज आकुल–

कर्म का है कौन-सा वह भाग
लोक मिथ्या मार्ग में अनुराग
आस्था जिन धर्म में उत्पन्न
क्यों हृदय है कर सुकार्य प्रसन्न–

एक दुर्बल दूसरा बलवान
कर्म का फल कौन-सा लें मान

मोक्ष का फिर कौन-सा है मार्ग
कौन फल लक्षण कि क्या है भाग–

और क्या है श्रेष्ठ मुनि का धर्म
फिर गृहस्थों को उचित क्या कर्म
धर्म दोनों के करें अनुठान
और उनके इष्ट का क्या थान–

धर्म के कारण कि इनके भेद
और शुभ आचरण भेद-विभेद
काल छह फिर और कौन स्वरूप
लोक तीनों और स्थिति अनुरूप–

कौन हैं कहिये शलाका नर
और दें विवरण त्रिलोकीवर
आज है जो भूत और भविष्य
तीन कालों पर कहें कुछ ईश–

भेद से बन जांय द्वादश अंग
भव्य जीव हितार्थ नीति प्रसंग
मोक्ष की हो प्राप्ति या सुख स्वर्ग
ज्ञान दें पा जाय प्राणी वर्ग–

दिव्य दें वाणी परम गम्भीर
उच्चरित हो ईश हे आभीर
अन्य जीवों के लिए यह काज
दिव्य दें उपदेश हे वर आज–

कर निवेदन हुए गौतम मौन
और होते सभी हर्षित क्यों न
थे न मन में प्रश्न कोई भ्रान्ति
या सभा में मौन गहरी शान्ति–

उच्चरित फिर शब्द ध्वनि गम्भीर
तोड़कर निकले अधर प्राचीर
बोलते-से लगे कुछ भगवान
भंग होता-सा दिखा कुछ ध्यान–

विप्र के थे प्रश्न तत्त्वों पर
और सम्यग् भी कि थे उत्तर
ले चले प्रभु मोक्ष पथ की ओर
आह उत्तर थे कि स्वर्णिम भोर–

प्रतिध्वनित थे शब्द-शब्द उदार
शब्द-ध्वनि के साथ थे साकार
स्वर्ग के उतरे कि स्वर्णिम क्षण
मूर्ति से बन सुन रहे सुर-जन–

ध्वनि उठी गूँजी गगन में जा
विश्व ने पथ मोदमय खोजा
ज्ञान का केवल उदय अब था
नष्ट अब अज्ञान का तम था–

"स्वस्ति गौतम ! बुद्धि से हे शुद्ध
हो अभीप्सित पूर्ण विप्र प्रबुद्ध
प्रश्न के उत्तर सभी थिर बन
और भी सब सुन सकें सुर-जन–

दे रहा जो भी तुम्हें उपदेश
वृष्टि ज्यों करते धरा पर मेघ
आज हो सब भव्य का कल्याण
गा सके यह विश्व मंगल गान–

सुनो गौतम विप्र विज्ञ सुजान
सत्य जिसको विश्व लेगा मान
मानते केवल इसे सर्वज्ञ
और प्रतिपादित उन्हीं का सब–

सत्य प्रतिपादित पदार्थ स्वरूप
किन्तु है निर्भ्रान्त सारे रूप
जीव के दो रूप हैं दो पन्थ
एक है गार्हस्थ्य दूजा सन्त–

सन्त में तो है न कोई भेद
किन्तु दूजा रूप अगणित खेद

सन्त तो अनुराग पूर्ण विहीन
आठ गुण से सकल शोभित दीन–

सदा रहता मात्र एक स्वरूप
भव्य सुख उसके समक्ष अनूप
भव्य दुख का है न किंचित बोध
सिद्ध है वह सिद्धि का ही शोध–

सिद्ध है वह मुक्ति-भव से नर
उच्चतम भव शिखर पर पग धर
और फिर होते सहज आसीन
प्राप्त करते ज्ञान कोष प्रवीण–

और भी उपलब्धियां निर्बाध
ज्ञान उनका है अनन्त अगाध
साथ ही उनका अलौकिक तन
पूर्ण शुद्ध विशुद्ध अन्तर्मन–

किन्तु हैं जो भव्य जीव अनन्य
श्रेणियां उनकी गई हैं बन
भेद भी उनके न एक अनेक
देखकर भी जो न सकते देख–

एक स्थावर और त्रस के भेद
और इनमें भी अनेकों छेद
एक एकेन्द्री कि विकलेन्द्री
तीसरी भी और पंचेन्द्री–

और नर आदिक बनी हैं चार
पांचवीं का एक और प्रकार
इन्द्रियों के पांच ऐसे सार
कह रहे भगवान जग अवतार–

जीव स्थावर और त्रस मिल सात
जीव रक्षा की करें हम बात
पांच स्थावर और पृथ्वी मिल
और भी दो हम करें शामिल–

संग पृथ्वी चार मिल स्थावर
पांच का मिल एक बनता घर
विकल इन्द्रिय पंच इन्द्रिय साथ
भेद बनते जीव के यों सात–

पांच स्थावर और विकलेन्द्रिय
मिले संज्ञी और आसंज्ञी
जातियां भी जीव की हैं आठ
जातियों को आठ में लें बांट–

लिख गये हैं नौ जिनागम पर
इन्द्रियों में जीव है स्थावर
जीव के भी रूप ऐसे दस
वायु पृथ्वी और पावक रस–

वनस्पतियां और चलता जल
इन्द्रियां भी हैं सशक्त प्रबल
और यदि मिल जाय इसमें त्रस
क्यों न फिर बन जाय ग्यारह रस–

जान ले यह बुद्धिमान सुजान
भेद बारह लिये पुष्ट प्रमाण
मानते हम जब कि दस स्थावर
मिल गया है और जब बादर–

अग्नि जल धरती वनस्पति वायु
पांच मिलकर वृद्धि स्थावर आयु
मन सहित मन रहित भी मिलकर
भेद बनते सात गुण सागर–

और भी पर्याप्त अपर्याप्त
भेद में जाकर हुए जब व्याप्त
भेद बनते जीव के चौदह"
एक क्षण को मौन इतना कह

फिर कहा यों जीव की गति चार
जान लो है नरक प्रथम प्रकार

दूसरी तिर्यञ्च गति लो मान
तीसरी है मनुज गति की खान–

और चौथी देवगति का साथ
कल्पवासी जन जहां अवदात
आज इन पर कह रहा विस्तार
विप्र गौतम सुन करो स्वीकार–

नरक गति पर प्रथम कह लें आज
अधोलोकी नरक दुर्जन साज
सदा होते नारकी उत्पात
चल नहीं पाती मनुज की बात–

जीव रखता यहां उष्ण स्वभाव
छोड़ता चिरकाल हाय प्रभाव
आयु मिलती है यहां पूरी
माप पाया है नहीं दूरी–

नरक के हैं भेद केवल सात
दूसरा है महाकाल कुजात
कष्ट देता है मनुज को घोर
ज्यों लहर का हो भयानक रोर–

तीसरा रौरव नरक साकार
जीव जब पहुँचा-न पाता पार
महा रौरव नरक चौथा दाय
यह महा दुख का प्रदाता हाय–

पाँचवाँ है नरक शाल अमीक
रे यहां शीतोष्ण पाता जीव
और छठवाँ है असिक पत्रीक
है जहां पर शीत केवल शीत–

और अन्तिम सात कुम्भी पाक
अन्य नरकों को रहा दे मात
शीत भारी शीत भव पाता
रख न पाता ईश से नाता–

कष्ट दुगुना हर नरक में मान
एक दो द्विगुणित हुए परमान
यों नरक के भेद वर्णित आज
जान ले हे विप्र भव्य समाज

अब चलें तिर्यञ्च गति की ओर
कहे पशुगति है न जिसका ठौर
पांच इसकी हैं भयानक सैन्य
जीव को यह बांटता है दैन्य–

रौद्र ध्यानी महा आरम्भी
परम मिथ्यावान परिग्रह भी
ज्ञान पूजा आदि मद से चूर
दूसरे का अहित सोचें क्रूर–

आत्मगुण सुनना उन्हें अभिप्रेय
करें पर निन्दा कि चाहें श्रेय
चोरने में वित्त खूब प्रवीण
भोग की तृष्णा न होती क्षीण–

मांस मदिरा का करें नित सेव
और हिंसा ही उन्हें अभिप्रेय
जीव ऐसे अन्य कुछ भी और
व्याघ्र औ वनराज प्राणी घोर–

बांधते तिर्यंच का यह बांध
भोगते दुर्गन्ध नीच मदांध
शीत होती है भयंकर शीत
है जहां कोई न उनका मीत–

और भी होता प्रदाहक ताप
जो जलाकर जीव करता राख
आह प्राणी कष्ट सहता घोर
राह गहरी है न तम का छोर–

है न कुछ भी इस नरक में द्रव्य
है न कोई काल देश सुभव्य

दे सके जो प्राणियों को शान्ति
आह रे फैली यहां दिक् भ्रान्ति–

जीव पाता है यहां दीर्घायु
है नहीं पर्याप्त भी जल वायु
जीव को मिलती न मृत्यु अकाल
क्योंकि है सहना नरक की ज्वाल–

महा क्रोधी जीव जो जग में
है भरा अभिमान रग-रग में
प्राण ही जो बन रही माया
लोभ की जिन पर घिरी छाया–

डोलते रहते भंवर में पड़
और तट पाते न वे नर जड़
जन्म धारण कर रहे वे कोटि
ज्ञान की मिलती न उनको ज्योति–

जन्म लेते हैं कभी बन कीट
कभी बनते मीन जल के बीच
कभी बनते हैं हरिण औ खग
कंटकों से पूर्ण जिनका मग–

है यही तिर्यंच का बस योग
भोगना ही मात्र पीड़ा भोग
आग लगने से जले ज्यों घांस
जीव को मिलता यहीं संत्रास–

नरक चौथे से लगाकर सात
है सदा चलती यही है बात
क्षेत्र में आते न असुर कुमार
दूर से ही किन्तु करते वार–

अवधि बल से अरि परस्पर जान
आयुधों से युद्ध कर लें प्राण
अंग होते छिन्न होते भिन्न
किन्तु फिर जुड़ते न लगते छिन

क्योंकि पारे-सा कि रहता तन
आह भर कर भी न मरते जन
गर्म जल फिर सिन्धु-सा खारा
किन्तु पीते जीव यह सारा–

मृत्तिका जिसमें महा दुर्गन्ध
और भोजन पर कड़ा प्रतिबन्ध
रे यही बस मृत्ति खाता आप
क्या न भूखा छोड़ता है पाप–

रात दिन जिनको न कोई सुख
भोगना है मात्र जिनको दुख
और बनते हैं नपुंसक लोग
एक क्या ऐसे अनेकों रोग–

आह दुःशीला मिले नारी
संकटों में आयु हो सारी
सुखद चिन्तन हैं न उनके अर्थ
शान्ति जीवन में न किंचित व्यर्थ–

शत्रु सम भाई निकम्मा पूत
दुर्व्यसन में रत परम है धूर्त
प्राणनाशक और फिर परिवार
क्यों न जाये मनुज जीवन हार–

मनुज को घेरें सभी आ रोग
क्यों न भोगे फिर सभी वह भोग
और निर्धनता न छोड़े संग
पूर्व पापोदय बताता रंग–

अन्ध होना पाप ही का फल
गूंग बहरा पाप ही केवल
या कि कुबड़ा हो गया पागल
और कोढ़ी तन गया है गल–

है तनिक सुन्दर न पूर्ण कुरूप
है यही तो पाप का भव कूप

है कहां जीवन सुखद सुखहीन
हैं दुखी सुख हेतु ज्यों जलमीन–

और जो कुछ हैं मनुज के दास
पूर्ण वैभवहीन धन का नाश
कुछ मनुज हैं जन्म से दुर्बुद्धि
अविद्या अविवेक की अभिवृद्धि–

पाप कर्मों में सदा तत्पर
पाप का जो भर रहे हैं घर
पाप शास्त्रों का करें अभ्यास
काल का फिर क्यों न सिर पर हास–

यह नहीं कुछ मात्र पापोदय
काल सिर पर नाचता निर्भय
भोगते हैं नरक यह ही लोग
सहन करना है उन्हें दुख शोक–

योनि मिलती है इन्हें तिर्यन्च
है जहां सुख का न कोई रंच
और यह जो नरक पूरे सात
यन्त्रणा पीड़ा सभी हैं व्याप्त–

जन्म लेते हैं यहीं पापी
आयु जो जा सकती नहीं मापी
कुछ मनुज जो बन रहे चाण्डाल
कष्ट का पूछो न उनका हाल–

ये नरक के लोक हैं जो तीन
मध्य ऊर्ध्वा और अधरासीन
जो यहां संत्रास भारी क्लेश
पूर्व पापों का यहां आदेश–

यहीं आते सभी पापी जन
यन्त्रणा हीं है यहां का धन
एक लम्बी आयु के भागी
पाप की जलती सदा आगी–

रुक कहा भगवान ने कुछ क्षण:
पुण्य के कारण सुनो गौतम
पुण्य में है ज्योति का आलोक
छिप गये सब दुःख औ भय शोक–

पुण्य में शुभ आचरण का योग
ज्ञान औ चरित्र्य का उपभोग
अणु महाव्रत इन्द्रियां काषाय
रोकने में ही उमर लग जाय–

उचित नियमों का करें पालन
दान को ही मान जीवन धन
ध्यान पूजन में रहें अर्हन्त
भक्ति गुरु की ही करें गुणवन्त–

रहे मन में सदा सेवाभाव
औ चले सद्भावना की नाव
अध्ययन रत और प्रभु का ध्यान
कर्म पावन और जग कल्याण–

साधुजन हो साधु का ही वेश
धर्म कार्यों का रहे उपदेश
जीव पर करुणा दया हो प्रेम
जीव का कल्याण मंगल क्षेम–

नर कभी ऐसे न होते भ्रष्ट
धर्म पाते हैं वहीं उत्कृष्ट
धर्म के प्रति हैं सदा अनुरक्त
तन समर्पित और प्रभु के भक्त–

छलछलाता पूर्ण रस वैराग्य
औ तपस्या की जलाते आग
पाप से रहते सदा हैं दूर
विश्व मंगल कामना भरपूर–

आत्म चिन्तन में सदा हैं लीन
जो नहीं बनते कभी नर दीन

शास्त्र गुरु के जांचने के अर्थ
मनुज ऐसे सदा पूर्ण समर्थ–

दया ममता कृपा से परिपूर्ण
नष्ट कंटक कर करें जो चूर्ण
परस्तुति में ही मिले आनन्द
आत्म निन्दा में न पीछे कन्द–

पर बुराई से बहुत ही दूर
धर्म के उपदेश से भरपूर
वह सदा शुभ कर्म के दाता
इष्ट सत्यासत्य जग पाता–

प्राप्त करते पुण्य ऐसे जन
धर्म से है छलछलाता मन
और बन पद्मासना जो लोग
खोजते जिन भक्ति का आलोक–

सदा पूजन भाव में तत्पर
और गुरु पूजा सुव्रत को धर
वह सुपात्रों को करे नित दान
कार्य शुभ प्रति पूर्ण आस्थावान–

पूर्ण समरस पूर्ण समता भाव
पुण्य की भी वही खेते नाव
वही करते प्राप्त पुण्य महान
दे रहे जग को सुगति वरदान–

वस्तु हो जो स्वयं हेतु अनिष्ट
अन्य के हित भी वही यह नीति
पुण्य कर्मा मानते ऐसा
क्योंकि है मन कर्म ,ही वैसा–

यों अनेकों पुण्य के कारण
कर रहे द्विज सम विपति हारण
और फिर करने लगे वर्णन
पुण्य का जब उदय रस वर्षण–

सुन्दरी नारी विनय शीला
पा जिसे है मनुज गरवीला
आह रति-सी रूप का आगार
गति सुमन्थर नयन में मदभार–

प्रतिव्रता विदुषी विनत धीरा
दूर करती सतत पर पीरा
पुण्य का है उदय अभ्युत्थान
पुण्यशाली नर उसी को जान–

काम हो लज्जित जहां जाकर
पुत्र ऐसा मिले रत्नाकर
जो पिता के नाम को कर धन्य
श्रेष्ठ कर्मा धीर वीर अनन्य–

क्यों न हो फिर पिता वह कृतकृत्य
पूर्व पुण्योदय उसी के सत्य
पूर्ण होते हैं उसी के काम
फैलता है सुयश जग में नाम–

मित्रवत मिल जाय यदि भाई
कौन सी निधि है नहीं पाई
इस मनुज के है न सुख का अन्त
पुण्य भोगा जीव युग पर्यन्त–

और सुख दाता मिले परिवार
फिर सुखों का हो न पारावार
भोगता है सुख सुयश वह नर
पुण्य घट उसका गया है भर–

शील सा ऊंचा मिले गजराज
हों सफल उसके सभी वह काज
अश्व रथ मिल जाय सैन्य अपार
मुकुटमणि का हो कि सिर पर भार–

चक्रवर्ती नृपति वह सम्राट
पुण्य का ही उदय भव्य विराट

और वैभव बने जिसके गीत
भोग जग के पूर्ण पग पग जीत–

सौम्यता से भरा पूरा तन
मधुर वाणी से भरे मधु कन
दया करुणा से हृदय छलछल
रूप वैभव का मिले संबल–

और भी उपलब्ध जो दुष्प्राप्य
धन्य है वह नर स्वयं में आप
रे उसी के पूर्व पुण्योदय
बोलता है विश्व उसकी जय–

और तीनों लोक की दुर्लभ
यह धरा पाताल ऊपर नभ
वह महालक्ष्मी वनं दासी
यह मनुज ही कल्प का वासी–

पूर्व पुण्यों का उदय है जान
और इसके ही सुखद परिणाम
दिव्य जन को मात्र यह उपलब्ध
पापियों को स्वप्न केवल सब–

एक वैभव और भी उत्कृष्ट
यह कि वह जो नर बने सर्वज्ञ
भव्य जीवों को सुगति देता
सिन्धु भव की नाव है खेता–

क्या नहीं यह पुण्य का कारण
बन सका सर्वज्ञ जिससे जन
क्या नहीं उत्कृष्ट यह वैभव
क्या नहीं यह श्रेष्ठतम आसव–

भव्य पद जो इन्द्र का पाता
पुण्य के ही उदय से नाता
सकल सुर पूजित यही इन्द्रत्व
श्रेष्ठतम है विश्व का यह तत्त्व–

मनुज तन-मन से सदा जो शुद्ध
इन्द्र बन पाता वही जन बुद्ध
विश्व निधियाँ हो चरण दासी
नमित पग पर स्वर्ग के वासी–

सत्य का आलोक उत्तम तत्त्व
रे मनुज पाता वही अमरत्व
रत्न मणियों का जहाँ है कोष
हैं अपरिग्रह अहिंसा निर्दोष–

भोगता है इन्द्र बन सुख भोग
क्या नहीं यह पुण्य का ही योग
वह मनुज जिसमें कि ज्ञान विवेक
औ सुमति की खींचता है रेख–

हो न जीवन भर तनिक भी मंद
पा सकेगा नर वही देवत्व
प्राणि जो सुख की करे भव आश
पाप कर्मों का करे वह नाश–

पुण्य कर्मों में बढ़े आगे
पुण्य की ही भावना जागे
पग बढ़ें तो पुण्य पथ की ओर
पुण्य धर्मा पुण्य ध्यान विभोर–"

नत विनत होकर कहा द्विज ने
"नाथ यह भी और बतला दें
कौन सी है वस्तु जग को हेय
कौन सी फिर वस्तु है अभिप्रेय"–

"है उचित ही प्रश्न यह द्विजराज"
प्रतिध्वनित प्रभु की हुई आवाज
कौन सी है वस्तु जग में त्याज्य
कह रहा हूं मैं तुम्हें वह राज–

भव्य जन जो भी यहाँ सारे
पंच परमेष्ठी सदा प्यारे

वही रखते सदा हित का ध्यान
बन गई जो मनुज को वरदान–

निर्विकल्पी हैं कि जो मुनिजन
मुक्ति कल्पा सदा उनका मन
सिद्ध पुरुषों-सी कि उनकी वृत्ति
आत्मा ही मात्र उनकी शक्ति–

आत्मा ही शक्ति का आधार
आत्मा ही दिव्य है साकार
आत्मा से ही मिलें गुणदोष
इसलिए बस आत्मा ही कोष–

किन्तु जो व्यवहार दृष्टि विभिन्न
बुद्ध-जन समझें इसे जल मीन
कर्म जीवों से उन्हें है प्रेम
चाहते हैं सदा उनकी क्षेम–

व्यावहारिक दृष्टि से देखें
भावना हो शुद्ध फिर लेखें
तो कहें हम हेय हैं वह लोग
दृष्टि मिथ्या का जहाँ है योग–

है कि जो अज्ञान और अभव्य
विषय सुख का जो पिये आसव
है वही बस जन महापापी
धूर्तता जिस रक्त में व्यापी–

नरक गामी ये अभव्य कि हेय
ये महा विष के ज्वलन्त अजेय
है नहीं स्वीकार के ये योग्य
जीव के हित हैं विषय ये रोग–

योगि जन जो हैं विकल्पा शून्य
किन्तु उनके लिए मानद पुण्य
तत्त्व हैं जितने कि पूर्ण अजीव
हेय ऐसे ही सदा से जीव–

जीव ऐसे हैं जिन्हें प्रिय राग
पाप कर्मों के न प्रति वैराग
मानते हैं यह उन्हें आदेय
गीत छन्दों के बने ज्यों गेय–

पुण्य कर्मों का यहाँ आस्रव
बन्द करने का जहां माहंव
किन्तु रागी नर न देते छोड़
और भी सम्बन्ध लेते जोड़–

किन्तु नर जो मोक्ष अभिलाषी
इन्द्रियाँ जिनकी चरण दासी
पाप के जो बन्ध औ आस्रव
आह यह दोनों उन्हें ज्यों शव–

किन्तु यह निष्कर्ष है मेरा
पाप ने जब विश्व है घेरा
एक आस्रव और दूजा बन्ध
मानते हैं हेय ऐसे जन–

पाप से ही विविध दुख के स्रोत
पाप से ही जले दुख की जोत
पाप से ही उदित सारे रोग
रह सके कैसे कि मनुज निरोग–

अब सुनें द्विज हे सुविज्ञ महान
वस्तु कितनी ग्राह्य इनको जान
दो अवस्था निर्जरा संवर
ग्राह्य हैं सब काल हे द्विजवर–

मोक्षगामी ये अवस्था द्वय
इसलिये पाती सदा ही जय
मोक्षत्व अनष्ट और अनन्त
जलधि अक्षय सुख कहें हम सन्त–

इसलिये ये ग्राह्य हैं सर्वत्र
जन रखें केवल इन्हीं का व्रत

हेय तत्त्वों से रहे ना दूर
ग्राह्य से अनुराग हो भरपूर–

पुण्य आस्रव का सदा कर्ता
पुण्य बन्धों का बना भर्ता
हो गृहस्थी और सम्यग् दृष्टि
पूर्ण रागी पुण्य की हो सृष्टि–

है गृहस्थी संयमी वह जान
जा न पाता है जहां अज्ञान
छलछलाता हृदय पूर्ण सुराग
पुण्य कल्पा और पुण्य सुभाग–

किन्तु कुछ ले मनुज मिथ्यादृष्टि
है गृहस्थी पाप में आसक्ति
कर्म का जिनके उदय है मन्द
चाहते वह पुण्य आस्रव बन्ध–

भोगते ऐसे मनुज दुख भोग
क्यों न भोगे क्लेश-भीषण रोग
जीव जिनकी रहे मिथ्या दृष्टि
पुण्य कर्मों की न उनमें शक्ति–

जीव ऐसे ही दुराचारी
पुण्य की सब शक्तियां हारी
नीच ऐसे ही मनुज मति मन्द
बांधते वह पाप को ही अन्ध–

पाप कर्मों में सदा ही वृत्ति
पाप में रहती सदा अनुरक्ति
किन्तु योगी जन जहां केवल
मात्र सम्वर आदि जिनका बल–

तीन तत्त्वों के यही पोषक
वह जितेन्द्रिय पुण्य अन्वेषक
है नहीं मन-वचन कर्मा-शुद्ध
रत्नत्रय शोभित कि पुरुष-प्रबुद्ध–

भव्य जीवों को संवर के हेतु
शुद्ध आत्मा का उड़ाता केतु
पंच परमेष्ठी रहे नित ग्राह्य
पूर्ण होगी सिद्धि की फिर चाह–

जीव के हित ज्ञान का कारण
और फिर सम्यक्त्व का दर्शन
प्रमुख इनके तत्त्व हैं निर्जीव
जले हरदम ज्ञान का ही दीप–

पुण्य आस्रव और पुण्य सुबन्ध
हाथ में इनके विभूति सुधन्य
जीव जो समदृष्टि हैं पाते
धन्य वह अर्हन्त बन जाते–

किन्तु मिथ्या दृष्टि वाले जन
मानते हैं पुण्य आस्रव बन्ध
मात्र वे संसार के कारण
शान्ति के हित बने अवधारण–

पाप आस्रव पाप के दुर्बन्ध
ये प्रमुख अज्ञान के कारण
यही अज्ञानी मनुज अभिप्रेय
देय हैं केवल उन्हीं को देय–

रे यही संसार के कारण
जो बनाते हैं दुखी जीवन
दुःख के यह ही प्रमुख दाता
जो इन्हें ध्याता वही पाता–

मोक्ष के कारण संवर निर्जर
मोक्ष सुख का है महा सागर
पुण्य कर्मा ही इसे पाता
पाप कर्मा किन्तु रह जाता–

बोल यह प्रभु रह गये क्षण मौन
और था अब स्तब्ध बहता पौन

शीघ्र ही गूंजी गिरा गम्भीर
उठ गईं ऊपर दिशायें चीर–

"सुनो द्विज कारण पदार्थों के
और उनके फल सुखद झोंके
प्रश्न के उत्तर सुने द्विजराज
क्यों न होते सिद्ध जन के काज–

दुर्व्यसन के सुनो सात प्रकार
जीव जो करते उन्हें स्वीकार
जीव पर-नारीगमन में लीन
और पर धन पर रहे आसीन–

कार्य कर डालें सभी आरम्भ
चल पड़े उत्साह का ले दम्भ
चाहते हैं धन अतुल एकत्र
मान धन ही का रहे सर्वत्र–

और करते सदा गर्हित कार्य
पाप का भी धरें भारी भार
फिर प्रकृति से भी सदा जो क्रूर
पुण्य की नभ में उड़ाते धूर–

कार्य करते हैं नहीं उत्कृष्ट
मन वचन से भी सदा जो दुष्ट
शुष्क है मन की करुण धारा
पाप मय जीवन सदा सारा–

दया ममता का न मन में लेश
पाप मन में साधु का है वेश
देख कर मुखड़ा लगे वीभत्स
क्रूर कर्मा मन वचन सर्वस्व–

औ भयंकर कृत्य में है ध्यान
वासना मिस सतत लोलुप प्राण
धर्म मन के प्रति रहे प्रतिकूल
नीच निज कर्तव्य जाते भूल–

साधु के प्रति जो न आस्थावान
विश्व का वह क्या करे कल्याण
मात्र मिथ्या शास्त्र का अभ्यास
मात्र मिथ्या दम्भ मन में वास–

साथ चलते कई मिथ्या मत
व्यर्थ ही उद्दण्ड भारी मद
वह कुमार्गी इसी में आसक्ति
दुष्ट गुरु की मात्र वन्दन भक्ति–

हों न किंचित मात्र भी शुभ कार्य
प्रेरणा में पाप की तैयार
और ये दुर्जन कुपथ गामी
मोह के वश में रहे कामी–

पाप कर्मी औ भयानक धूर्त
धर्म के प्रति द्वेष से आपूर्त
वह दुराचारी मनुज दुःशील
पुण्य तरु की शाख देते छील–

कृष्ण लेश्या मात्र इनका रूप
पंच पापों के बने यह भूप
पाप का इनमें उदय सर्वत्र
नर्क का पाते निमंत्रण पत्र–

औ उन्हीं के मिस नरक हैं सात
दें सकल दुख यन्त्रणा आघात
नर्क की पीड़ा असह सहना
और कुम्भी पाक में रहना–

भव्य ऐसे जीव मायावी
धर्म इनमें है न कोई भी
छीनते हैं दूसरों का धन
और रहता कुटिल जिनका मन–

कुछ न कुछ खाते रहें हरदम
हैं न भोजन में किसी से कम

और है यह मूर्ख भी भारी
पाप मिथ्या सघन आचारी–

यही पशु सेवा करें दिन-रात
किसी तरु को व्यर्थ देते काट
स्नान भी करते अनेकों बार
विश्व का कल्याण अस्वीकार–

शील व्रत से सर्वथा ही शून्य
फिर खिले कैसे विवेक प्रसून
निंद्य लेश्या में रहें उन्मत्त
आर्त ध्यानी नीच कर्महित–

नीच कर्मी जीव अज्ञानी
किन्तु जब पाते यही प्राणी
चीखते हैं आर्त स्वर में नीच
सर्वदा को आँख लेते मींच–

भोगते तिर्यन्च गति गामी
नर्क है यह उग्रतम धामी
भोगते यह जीव दुख की खान
जन्म लेते और फिर प्राणान्त–

नर्क यह जिसमें न सुख का लेश
जीव है परतन्त्र भोगे क्लेश
जीव जो नास्तिक दुराचारी
धर्म तप चारित्र्य का हारी–

मानते हैं वह नहीं परलोक
हैं निरे दुर्बुद्धि मन में क्रोध
वासना औ विषय में आसक्त
और लेते उग्र मिथ्या तत्व–

जीव ऐसे पूर्ण अज्ञानी
और अविवेकी कि अभिमानी
आह मिलता हैं उन्हें गतिरोध
दुख अनन्त अपार सिन्धु निरोध–

जन्म लेते हैं यहीं आजन्म
पाप होते हैं यहीं उत्पन्न
भोगते चिर काल दुख नाना
जन्म लेकर मृत्यु को पाना–

इस तरह चिरकाल तक यह क्रम
चक्र से ही घूमते हरदम
भोगते भीषण दुखों को जीव
क्योंकि उनकी पाप की ही नींव–

किन्तु जो जन लिये श्रद्धा भाव
ज्ञानियों के ज्ञान की ले नाव
सहज करते भव जलधि को पार
जीव जीवन में न माने हार–

श्रेष्ठ गुरुजन की करें सेवा
वन्दना कर मानते देवा
और धर्मात्मा महात्मा श्रेष्ठ
हैं यही इन जीव के देवेश–

जो महाव्रत को करे स्वीकार
खोजते निर्ग्रन्थ गुरु से सार
और उपाव्रत जो करें धारण
और सदा सद्ग्रन्थ पारायण–

शक्ति भर बारह तपों को कर
और इन्द्रिय चोर को कर धर
सिद्ध कर अपराध देते दण्ड
हैं नहीं वह तनिक भी मति मन्द–

आर्त रौद्रा ध्यान का कर त्याग
ज्ञान तप की जो जलाते आग
धर्म रूपी शुद्ध ध्यान अनन्त
चिन्तना करते इसी की सन्त–

और शुभ लेश्या धरे परिणाम
धर्म का ही आचरण हर याम

कर वही सम्यक्त्व दर्शन धार
मानते यह कण्ठ हीरक हार–
ज्ञान को ही कर्ण-कुण्डल मान
और समरसता सही पहिचान
शीश पर चारित्र्य भव्य किरीट
है सदा सर्वत्र पूर्ण विनीत–
भोग का हो विषय तन संसार
हो यहां संवेग का व्यापार
आचरण भी हो सदैव विशुद्ध
इसलिए सद्भाव चिन्तन शुद्ध–
है क्षमा भी सेविका दिनरात
धर्म दश लक्षण उन्हें अवदात
और उनका ही सदा पालन
क्योंकि रत रहता इन्हीं में मन–
दें सदा सत धर्म का उपदेश
धर्म का आचरण धर्म निवेश
धर्म का यों कर उपार्जन सन्त
मोक्ष दायक मृत्यु पाते अन्त–
स्वर्ग इन्द्रिय सुख समुद्र अगाध
दिव्य वैभव दिव्य रत्न अबाध
है दुखों का स्वर्ग में क्या काम
पुण्य आत्मा पुण्य लोक ललाम–
सम्यक दर्शन अलंकृत जन
बुद्धिजीवी दिव्य लौकिक मन
है परम यह कल्प जो अति भव्य
प्राप्त करते यही स्वर्ग सुश्रव्य–
व्यन्तरादिक भवनत्रिक गतिदाय
मात्र अज्ञानी यही गति पाय
क्योंकि वे अज्ञान तप आवेश
व्यर्थ देते हैं स्वयं को क्लेश–

किन्तु जिनकी प्रकृति है कोमल
और सन्तोषी हृदय निर्मल
कार्य से वह जन सदाचारी
औ कषायी मन्द के धारी–

कर्म मन वच से सरलतम साधु
पुण्यकर्मा दान शील अगाध
धर्म के प्रति आस्था है घोर
गुरु चरण में विनत होते दौड़–

नित्य ही धर्मात्मा वन्दन
नित्य ही पूजन भजन अर्चन
आचरण अन्यान्य से है युक्त
वह किसी भी दोष से है मुक्त–

भव्य में वह जीव है उत्तम
पुण्य का फिर उदय पावनतम
यही लेते उच्च कुल में जन्म
राज्य लक्ष्मी विभव सुखसम्पन्न–

मोक्ष गति पाते यही नर श्रेष्ठ
यज्ञ पताका उड़े इनकी श्वेत
पूर्ण श्रद्धा दया मन में भर
बाँटते आहार मन भर कर–

भोगते हैं यह अपरिमित भोग
मोक्ष का इनके लिए ही योग
दिव्य-सुख वैभव इन्हीं के हेतु
मोक्ष में यह नर उड़ाते केतु–

काम सेवन से सदा अतृप्त
वासना इस नारी की अव्यक्त
और वह जो धरे कामुकवेश
रूप ज्वाला डसे जिसके केश–

शीलता का दूर जिससे धन
दृष्टि मिथ्या पूर्ण रागी मन

नारियाँ रहती सदा नारी
जन्म मृत्यु अकाल अधिकारी–

योनि स्त्री की इन्हें मिलती
वासना की आग में जलती
फिर न पाती हैं कभी भी ठौर
भोगना पड़ता उन्हें ही और–

स्त्रियां आचार पूर्ण विशुद्ध
स्वच्छ निर्मल धवल जैसे दूध
वह सदा ही कुटिलता से हीन
हैं विवेकी और पूर्ण प्रवीण–

दान पूजा में सदा तत्पर
धर्म के प्रति पूर्ण आस्था धर
अल्प सुख जो हैं विषय से प्राप्त
मानती सन्तोष इसमें आप–
छलछलाता पूर्ण दर्शन ज्ञान
है उन्हें अच्छे बुरे का भान
पुण्य पथ की ओर ही आगे
मन सदा ही धर्म में जागे–

नारियां यह मृत्यु के पश्चात
अप्सराओं से करें नित भोग
प्राप्त करती हैं मनुज का तन
भोगतीं धन धान्य पुण्य अनन्त–

किन्तु ऐसे भी अनेकों लोग
चाहते करते रहें जा बात
काम के पीछे सदा जो अन्ध
वासना मोहान्ध है मतिमन्द–

दूसरे की नारि पर पागल
रूप ज्वाला में रहे रे जल
काम क्रीड़ा में रहें तल्लीन
क्लीव के उनको मिलेंगे चिन्ह–

लादते कुछ बहुत पशु पर बोझ
और उनको भी सताते रोज
पीर पहुंचाना सदा का काम
मन वचन से साधते जो दाम

जीव पैरों से कुचल निर्मम
निर्दयी उनको कहेंगे हम
तीर्थ में जाकर कमाते पाप
ओढते सिर पर सदा अभिशाप–

यही शठ तो बनें पूर्ण अपंग
पीप बहता और गलते अंग
आर्त स्वर में वह पुकारें ईश
भोगते यह भोग ऐसे नीच–

और मिलता है न इनको मान
यह धरा पर मात्र ज्यों पाषाण
मौत भी आती न इनके पास
मात्र पाते सकल जन का हास–

जीव ऐसे भी यहाँ कुछ और
ईर्ष्या में है न जिनकी होड़
दूसरे का दोष लेते ढूंढ़
दक्ष ये पर निन्दना में मूढ़–

मात्र सुनकर मान लेते सच
पर बुराई के श्रवण में दक्ष
सुन लिया जो तनिक भी परदोष
सत्य उसको मान करते पोष–

कथा कुत्सित हो लगाते कान
हेय हो जो शास्त्र देते ध्यान
मात्र यह जिनका बना अभ्यास
धर्म ग्रन्थों का करें जो हास–

रे यही नर कान के बहरे
पातकी भी कम नहीं ठहरे

कर्म ऐसे ही मिले फिर दण्ड
कर्ण के वह द्वार होंगे बन्द–

हो किसी का झूठ या सच दोष
आँख देखा कह करेंगे पोष
क्योंकि वे छिद्रान्वेषी लोग
दूसरे के दोष का ही योग–

आँख का उपयोग काम कटाक्ष
डालते परतिय कुदृष्टि कुपांख
दृष्टि जिनकी वासना से पूर्ण
नारि अंगों पर ललकते मूढ़–

देखते ही रहे परतिय अंग
दृष्टि रहती सदा उनके संग
जो अघाते हैं न देख कु बात
अन्ध होते मूढ़ जन आपात–

बात का परनारि चर्चा ध्येय
अकथ को कहना उन्हें अभिप्रेय
पाप शास्त्रों को पढ़ें ले चाव
या पढ़ाने में न मात्र दुराव–

बोलते बन विनय श्रद्धाहीन
और वाणी भी न फिर आधीन
जो प्रतिष्ठा और यश के हेतु
बात मिथ्या का बनाते सेतु–

औ कुतर्कों में उन्हें है सिद्धि
बात शर से करें मन को विद्ध
फिर यही वाचाल बनते मूक
या कि जिह्वा के बने सौ टूक

पंच पापों में सदा हो रत
जीव हिंसा आदि का लें व्रत
विश्व में जो भी पदार्थ कि हेय
मानते उपलब्धि इनकी श्रेय–

धर्म-शास्त्र सुग्रन्थ में रे खेद
हो न सत्यासत्य में कुछ भेद
और फिर समभाव में ले पूज
ज्ञान की कुछ भी न जिनमें सूझ–

आह विकलेन्द्रिय बने यह लोग
एक क्या सौ उपजते रोग
भ्रान्ति पाते हैं सदा ही भ्रान्ति
और जीवन भर न मन में शान्ति–

साधु पुरुषों से रहें जो दूर
दुष्ट व्यसनी मित्र हों भरपूर
पाप जीवन भर सदा ही पाप
उग्रतम जब पाप बनते श्राप–

विषय सुख में रह सदा आसक्त
पूर्ण आस्थाहीन धर्म विरक्त
और तप-व्रत यम विरत होकर
विविध भोगों में लगे दुर्द्धर–

पुष्ट करते रहे मूर्ख शरीर
रात्रि भोजन करे नित्य अधीर
वस्तु जो खाने न योग्य अग्राह्य
यह इन्हीं के भोग में लग जाय–

जीव को जो दें सदा ही पीर
है कि आँखों में न जिनके नीर
निर्दयी करुणा गई है सूख
वेदना मन में न कोई हूक–

वेदना भोगे यही जन-क्रूर
सुख सदा इनसे रहेंगे दूर
वेदना भोगे अनेकों जन्म
नर्क भोगी भी न कोई कम–

मोह-ममता छोड़ जो तन की
राह जो पकड़े सघन वन की

और तपधर्मा शरण में लीन
और हिंसा पर कि सोचें भी न–

मानते सब अन्य जीव समान
एक तन है एक मन औ प्राण
प्राणियों में क्यों परस्पर भेद
सोच कर पाते बहुत ही खेद–

व्यर्थ चिल्लाते न यह अपना
या पराई आग में तपना
है सदा व्यवहार सब से एक
खींचते हैं सदा समता रेख–

वह सभी के और उनके सब
कौन फिर होगा पराया कब
रोग दुख हों दूर मिटती भ्रान्ति
रे उन्हीं को प्राप्त होती शान्ति–

जो सजाते हैं न तन को व्यर्थ
वस्त्र आभूषण न उनके अर्थ
मात्र उनको तप नियम औ योग
चाहिये उनको न कोई भोग–

क्लेश तन रूपी रखें वह व्रत
और सेवा भाव से आदृत
त्यागि तापस या महात्माजन
पात्र यह जिनका सदा पूजन–

उदय इनके ही सदा शुभ कर्म
धर्म के यह साथ इनके धर्म
प्राप्त करते हैं अलौकिक रूप
और गुण लावण्य मिलता खूब–

किन्तु कुछ पशु से सहज प्राणी
वह निरे हैं मूर्ख अभिमानी
चाहिये आभूषणों की खान
मानते हैं यही गौरव मान–

अंग के शृंगार में हो व्यस्त
पुण्य का सूरज सदा ही अस्त
हो अलंकृत दहे भूषित भव्य
चाहिये उनकी सदा ही नव्य–

कुगुरु या कि कुधर्म रथ आरूढ़
चाटुकारी करें यह ही मूढ़
रूप मिलता है भयानक आह
नर्क की खुलती उन्हीं को राह–

योगियों की भक्ति में दिन-रात
छोड़कर ममता तपाते गात
धर्म-तप नियमादि का पालन
चोर इन्द्रिय जीतते यह जन–

भाग्यशाली हैं यही तो नर
सौम्यता ठहरी यहीं आकर
मृदुल भाषी और मुख पर तेज
मोक्ष की पाते यही तो सेज–

देखकर मलयुक्त भूत शरीर
फूट पड़ती घृणा मन को चीर
क्योंकि इनके पास रूप अनन्त
अंग में यौवन भरा लावण्य–

आह मुनिजन को न छोड़ें नीच
यह उन्हीं पर ही उछाले कीच
कामना पर नारि की करते
पाप जीवन घट सदा भरते

पारिवारिक बन्धुओं से झूठ
द्वेष करते व्यर्थ उनसे मूढ़
यह दरिद्री बने आगे चल
निन्दनीया विश्व के अविकल–

दूसरों को दें सदा धोका
दें सभी को ठगी में चोंका

यह स्वयं जो है ठगी में दक्ष
पाप का रहता सदा ही लक्ष्य–

देव गुरु औ शास्त्र के आगे
शीघ्र पूजा भाव हैं जागे
हो न सत्यासत्य का निर्णय
बोलते वह अन्ध होकर जय–

मूर्ख ऐसे जीव ही होते
मूर्खता पर भी यही रोते
निन्दनीया लोक के यह जन
मूर्ख हैं दुर्बुद्धि भी भीषण–

किन्तु कुछ ऐसे विवेकी भी
बात करते हैं सदा सौंधी
राय देते हैं सदा ही नेक
गुण न उनमें एक बल्कि अनेक–

ग्रहण करते वस्तु का रस-सार
त्याग देते व्यर्थ का जो भार
चतुर ऐसे ही कि धीर सुयोग्य
भोगते हैं पुण्यकर्मा भोग–

और बनते हैं यही विद्वान
क्योंकि इनको सत असत का ज्ञान
यह विवेकी धर्म आचारी
दया ममता हृदय में भारी–

किन्तु कुछ निजज्ञान का अभिमान
दुष्ट प्रकृति का इन्हें लो जान
योग्य जन को भी न दें शिक्षा
व्यर्थ कर्मों की करें भिक्षा–

शास्त्र निन्दक और पर पीड़क
विषम कटुता के सदा धारक
धर्म हीन असत्यवादी लोग
बनें यह जड़ मूर्ख ऐसा योग–

किन्तु जो पढ़ते पढ़ाते सार
धर्म कर्मों को सदा लें धार
सत्यवादी हैं यही नरलोक
जो असत को स्वयं देते रोक–

चाहते वह विश्व का कल्याण
विश्व के सब जीव एक समान
यही बनते जगत आदरणीय
हो यही विद्वान वन्दननीय–

कई कामी कुटिल परिणामी
जो पर स्त्री हरण के हामी
चिन्तना करते यही दिन रात
विषय भोगों की सदा हो बात–

वह नहीं चाहें कभी कल्याण
वासना ही वासना में प्राण
देख दुर आचरण मन में मोद
भावना कुत्सित इसी में मोद–

अशुभ परिणामी यही होते
नर्क में जाकर यही रोते
किन्तु जो तप व्रत क्षमा के शील
ठोकते हैं धर्म की जो कील–

ज्ञान पूजा और दर्शनवर
धर्म कार्यों में सदा तत्पर
है उन्हीं की मात्र सम्यक् दृष्टि
स्वर्ग सुख की है उन्हीं को वृष्टि–

पुण्य उनके ही उदय होते
फसल पुण्यों की वही बोते
धर्म कर्मी पुण्य धर्मात्मा
रे यही बनते सुखद कामा–

मनुज जो बस धर्म सिद्धि निमित्त
हैं उन्हीं से ही उपेक्षित वित

प्राप्त धन सम्पत्ति दें ठुकरा
जा कभी रोयें न निज दुखड़ा–

जो कि जीवन में सदा दृढ़ चित्त
धर्म साधन मात्र जिनका मित्र
सम्पदा जो भोग्य की उत्तम
वही स्वामी वही भोगी क्षम्य–

हों सभी अन्याय के ही कर्म
पाप ही बस पाप कैसा धर्म
किन्तु सुख की कामना करते
भोग के पश्चात भी मरते–

चाहते बन जांय लक्ष्मीधर
रे इसी में प्राण अटके वर
मनुज ऐसे धर्म व्रत से हीन
भोगते फल यही कर्म विहीन–

किन्तु ऐसे जीव भी पामर
पाप करते स्वयं आगे बढ़
जो अलग करते परस्पर प्राण
यन्त्रणा पीड़ा करें नित दान–

बन्धु-बान्धव को करा दें दूर
मार लें पशु पक्षियों को क्रूर
बाल-बच्चों से न मिलने दें
आह छलनी-सा हृदय छेदें–

दूसरों का छीन लेते धन
दस्यु या पापी लुटेरे बन
चूसते हैं दूसरों का रक्त
फिर क्षमा करता न इनको वक्त–

रे यही दुःशील पापात्मा
काल ने आकर कि कर थामा
भोगते यह ही असह दुख भोग
नर्क भीषण का इन्हीं को योग–

जीव पशुओं पर दया करते
प्राण उनके ही लिये धरते
स्नेह की छल-छल करे गागर
प्रेम के आगार करुणाकर–

दान पूजा आदि विधि पूर्वक
धर्म का अनुष्ठान व्रत को रख
मोक्ष की ही मात्र रहती चाह
अन्य की चिन्ता न कुछ परवाह–

हों अभीप्सित भी इन्हीं के पूर्ण
औ सुवासित खिले पुण्य प्रसून
इष्ट मित्रों का इन्हें संयोग
और स्त्री-पुत्र का हो योग–

जो कृपणतावश न देते दान
वित्त को ही मानते भगवान
पुण्य कार्यों में न धन का व्यय
चाहते सम्पत्ति सुख अक्षय–

महा लोभी और अज्ञानी
हैं यही नर मूढ़ अभिमानी
नीच पाते हैं यही तिर्यन्च
पुण्य का इनको न मिलता रंच–

जो कि बनकर आत्मकायिक शुद्ध
धर्म ग्रन्थों को पढ़े नित बुद्ध
और पूजा ध्यान में हो लीन
भक्ति के जल में बने वह मीन–

प्राप्त सुख सम्पत्ति इन्हें अथाह
स्वर्ग की खुलती इन्हीं को राह
किन्तु जो निर्दय दुराचारी
पुण्य की गति है जहाँ हारी–

वंश की फूले-फले नित बेल
बस इसी के लिए रचते खेल

अन्य जीवों के सुतनु को मार
चाहते सरिता करें वह पार–

पाप के कुछ और भी दुष्कर्म
है न मन में ग्लानि या कुछ शर्म
यही इनके कर्म बनकर नाग
छोड़ते फुफकार भीषण आग–

प्राप्त हों अल्पायु वाले पूत
शीघ्र ही ले जांय यम के दूत
पातकी ऐसे सदा निर्वंश
पुण्य का पायें न कोई अंश–

अर्चना अवमानना दिन रात
चिन्तना में ही गलायें गात
पुत्र मिल जाये भले ही एक
भावना मन की न कोई नेक–

है घिरा करती यहीं पर सांझ
और स्त्री मिले इनको बांझ
हो नहीं इनको कभी सन्तान
और सन्तति को कि भटकें प्राण–

ठीक इसके किन्तु जो विपरीत
बालकों को देख झरती प्रीत
और इनको ही सुतनु निज मान
स्नेह सारा दे हृदय का दान–

हो उदय फिर इन्हीं जन के पुण्य
पुत्र वर लें यहीं आकर जन्म
प्राप्त हो जिनको महा दीर्घायु
यश सुरभि लेकर उड़े फिर वायु–

जो अहिंसा व्रत करें सेवन
पुण्य धर्मा पुण्य कर्मी जन
योगिजन की वह करें पूजा
औ तपस्या भाव ही सूझा–

किन्तु जो करते न उत्तम ध्यान
और तपस्या व्रत नहीं निर्माण
हो न जाये कहीं काया क्लेश
ध्यान दीक्षा पर न हो लवलेश–

वह सदा तप कर्म से भयभीत
पुण्य कार्यों में न उनकी प्रीत
आह ऐसे नर बनें कायर
दूसरों पर ही सदा निर्भर–

मानते वह स्वयं को असमर्थ
क्यों न हो सब दूसरों के अर्थ
किन्तु कुछ ऐसे मनुज वर श्रेष्ठ
प्राप्त करते जो उन्हें अभिप्रेत–

साहसी वह धीर वीर महान
रह सदा निर्भय करें तप ध्यान
अध्ययन रत योग में तत्पर
काय के उत्सर्ग में क्या डर–

और कैसा भी कठिन हो कार्य
पूर्ण करने का लिया जब धार
वह करेंगे क्योंकि उनमें शक्ति
धर्म के प्रति आस्था औ भक्ति–

वह करे फिर कर्म अरिदल नाश
शक्ति उनकी चूम ले नाश
और जब साहस भरा है कूट
कौनसा शुभ कर्म जाये छूट–
यही नर हों पूर्ण क्षमतावान
मोक्ष हो इनको बहुत आसान
स्वर्ग के मिल जाय सारे फल
कर्म अरिका विजित इनसे दल–

बुद्धि से जो पूर्ण विश्लेषक
इन्द्रियों पर वही अनुशासक

बुद्धि मेधा शक्ति में बलवीर
दूर जल से कर सकें वह क्षीर–

तत्त्व और अतत्त्व में कर भेद
पाप में करते सहज ही छेद
अन्धतम में ज्योति पा जाते
गीत साहस के वही गाते–

और वह लेकर विवेक अनन्त
चिन्तना करते कि बन स्वच्छन्द
पाप का उनमें निरन्तर क्षय
बोलता है विश्व उनकी जय–

और जो करते निरन्तर तीर्थ
तीर्थ में ही आयु जाती बीत
और गुरु की करें गहरी भक्ति
महापुरुषों के लिए आसक्ति–

और इनकी वन्दना अर्चन
दूर निज की प्रशंसा से बन
रख पराये दोष को गोपन
मात्र गुण को ही करें शोभन–

प्राप्त होता उच्च इनको गोत्र
और झरता है सुखों का स्रोत
मोक्ष की है जिन्हें अभिलाषा
वह अपरिग्रह मौन व्रत भाषा–

शक्ति का हो धर्म में उपयोग
धर्म कर्मी हैं वही तो लोग
पूर्ण दृढ़ सामर्थ्य पाते नर
और तन मिलता इन्हें सुन्दर''–

प्रश्न गणधर ने किये सविवेक
बन गये युग के अमिट अभिलेख
औ दिये अर्हन्त ने उत्तर
उठ उठकर फैलते थे स्वर–

प्रश्न के अनुरूप ही उपदेश
था न जिनमें कहीं कुछ आदेश
एक सीधी-सी बताते राह
चल सके कोई कि बेपरवाह–

ज्ञान का लहरा रहा था सिन्धु
ज्ञान की ले ज्योति चमका इन्दु
सुन रहे बैठे सभी चुपचाप
हो रहा था काल गति का माप–

एक क्षण रुक कर सहज बोले
मेघ से जो स्वर निकल डोले
'तुम चतुर ज्ञानी महा गणधर
प्रश्न का उत्तर यथा देकर–

मुक्ति पर भी अब कहूंगा बात
है कहीं जिसका नहीं अपवाद
चल सके इस पन्थ पर जो जन
मुक्ति का आकर करे वन्दन–

हो नहीं जिसमें कहीं शंका
दोष की कर ली दहन लंका
तत्त्व अर्थी के लिए श्रद्धा
आत्म चिन्तन में सदा शुद्धा–

शुद्ध उस व्यवहार का साधन
है नहीं सम्यक्त्व का दर्शन
मोक्ष का है एक वह भी अंग
श्रेष्ठजन का जो न छोड़े संग–

सृष्टि में कोई न सुर या नर
जो कि हो अर्हन्त से बढ़ कर
खोजता जो ज्ञान का ही पन्थ
हम उसे कहते कि गुरु निर्ग्रन्थ–

गुरु नहीं कोई कि उन-सा और
जो सके अज्ञान का मुंह मोड़

यह अहिंसा श्रेष्ठ औ उत्तम
अन्य व्रत इससे सभी हैं कम–

अंग एकादश चतुःदश पूर्व
है न कोई शास्त्र ज्ञान अपूर्व
रत्नत्रय सम्यक्त्व का दर्शन
मोक्ष का यह पंथ श्रेष्ठ सुगम–

पांच इन परमेष्ठियों में श्रेष्ठ
अन्य कोई कर न पाये हेत
भव्य जीवों का करे कल्याण
विश्व को दे सके वह ही त्राण–

दान के हित सदा उत्तम पात्र
दान ऐसा श्रेष्ठ और उदात्त
ज्ञान दाता श्रेष्ठ आत्मा ध्यान
है यही उत्कृष्ट और महान–

प्रीति हो तो साधुजन से प्रीति
महात्मा ज्ञानी कि इन्द्रिय जीत
है यही तो श्रेष्ठ मानव धर्म
और सुख दाता कि ऐसे कर्म–

कर्म अरि का कर सके जो नाश
पुण्य तप फल मिले पाप विनाश
अन्य ऐसा तप न कोई और
ला सके जो ज्ञान की नव भोर–

पंच णम का श्रेष्ठ मंत्र महान
और श्रेष्ठ प्रमाण इसका जान
कर्म इन्द्रिय-सा न अन्य प्रचण्ड
है कहीं दुख का न इसके अन्त–

सुरक्षित इससे न कोई लोक
भव्य जन पाते इसी से शोक
श्रेष्ठ दर्शन मान लें सम्यक्त्व
औ इसी के मूल कारण सब–

ज्ञान दर्शन और वह चारित्र्य
मूल में सम्यक्त्व का आदित्य
मोक्ष रूपी महल का सोपान
व्रत नियम का आदि मूल स्थान–

भव्य जो सम्यक्त्व दर्शनहीन
ज्ञान तप व्रत हीन जैसे दीन
ज्ञान तप बल हों सभी निष्फल
व्यर्थ जीवन पाप का सम्बल–

मूढ़ता शंका सभी कर दूर
प्राप्त हो सम्यक्त्व जब भरपूर
दृढ़ रहो इस पर न देना छोड़
लो स्वयं अनुरूप इसके मोड़–

हो पदार्थों का समुज्ज्वल ज्ञान
झूठ सच की हो सही पहिचान
हित-अहित औ धर्म क्या है पाप
मोक्ष पथ पहिचान लेगा आप–

मिल गया सम्यक्त्व का दर्शन
विज्ञ हो जाता सहज ही जन
धर्म गुरु औ देव की पहिचान
तब करा देता सहज यह ज्ञान–

पंच पापों का सदा हो त्याग
जल न पाये तनिक हिंसा आग
त्याग की त्रय गुप्ति का पालन
समिति पाँचों का सही दोहन–

मोक्षदायक है यही चारित्र्य
खींचता है योग सक्रिय चित्र
कई कर्मास्रवों का अवरोध
शुभ फलों का दे यही नव-बोध–

यह नहीं तो कहाँ कर्म संवर
बिन संवर के कहाँ मोक्ष सुघड़

और तप भी व्यर्थ सारे व्यर्थ
है नहीं अक्षय परम सुख अर्थ–

जब स्वयं त्रैलोक्य शीश किरीट
इन्द्रियाँ जिनके समक्ष विनीत
वह स्वयं भी जब बिना चारित्र्य
प्राप्त कर सकते न गति वैचित्र्य–

मुक्ति नारी का कठिन दर्शन
दूर उनसे मुक्ति वैभव धन
हो न शोभित गज बिना ज्यों दन्त
और बिन चारित्र्य जीवन अन्त–

इसलिए मेरा यही उपदेश
मान लें चाहे इसे आदेश
भव्य जन चारित्र्य ही उज्ज्वल
चन्द्र-सा उज्ज्वल धवल निर्मल–

धारना होगा उन्हें तप त्याग
दुख परीक्षा की जलाये आग
पर उन्हें निर्भीक हो बढ़ना
चरित के गिरि शृंग पर चढ़ना–

और यह सम्यक्त्व गुण की खान
आत्मरूपा और श्रद्धा वान
कल्पना से हीन यह दर्शन
है यही सम्यक्त्व का जीवन–

ईश के भीतर भरा जो ज्ञान
ज्ञान से जिसकी सही पहिचान
ज्ञान निश्चय का पड़ा है नाम
स्वर्ग सुख का एक मात्र विधान–

भव्य जन जो मोक्ष अभिलाषी
काट दे यह मोह की फांसी
रत्नत्रय का फिर चलें अनुष्ठान
बन सके जीवन कि दिव्य महान–

धर्म द्वय का हो कि फिर पालन
एक मुनि का है सकल जीवन
दूसरा है धर्म श्रावक का
इस तरह यह धर्म द्वय जग का
धर्म मुनि का कठिन ज्यों असिधार
धर्म श्रावक का न कठिन विचार
श्रेष्ठियों इसकी कि हैं ग्यारह
व्यसन धारा में न जायें बह–

द्यूत आदिक व्यसन पूर्ण निषेध
मूल गुण भी आठ इनका भेद
शुद्ध हो सम्यक्त्व दर्शन पूर्ण
खिले दर्शन के कि पुण्य प्रसून–

पांच अणुव्रत तीन हों गुणव्रत
चार शिक्षा व्रत सभी अधिकृत
इस तरह बारह व्रतों का खेल
धर्म श्रावक से रखे यह मेल–

प्रथम अणुव्रत है अहिंसा नाम
त्रस्त जीवों की सुरक्षा काम
श्रेष्ठ गुण का है यही आगार
आदि कारण धर्म का साकार–

सत्य अणुव्रत नाम है दूजा
सत्य ही की हो जहाँ पूजा
झूठ निन्दा वचन का हो त्याग
झूठ को समझें कि विषधर नाग–

सत्य से यश धवल जाता फैल
कला-विद्या से सदा हो खेल
हो विवेकी चतुरता अभिवृद्धि
है यही तो सत्य की नव सिद्धि–

तीसरा अणुव्रत अचौर्य सुकाम
दूसरे धन पर न जाये ध्यान

धर्म यदि मिल जाय मग चलते
बिन्दु भर भी जो नहीं डलते–

एक अणुव्रत ब्रह्मचर्य विधान
है यही तो अणुव्रतों में प्राण
सर्पिणी है दूसरे की नारि
हो सदा मन में कि सुदृढ़ विचार–

जो स्वयं की पत्नि से सन्तुष्ट
भावना उसकी सदा ही पुष्ट
खेत-गृह धन-धाम दासी-दास
वस्त्र शय्या पात्र आसन वास–

बाह्य परिग्रह है यही तो दस
जो करे इनको सदा निज वश
है यही तो परिग्रही परिमाण
पांचवां अणुव्रत इसी को जान–

लोभ आशा का करे यह नाश
धर्म औ सन्तोष का हो वास
सम्पदा सुख प्राप्त हो अक्षय
वह मनुज जग में सुखी निर्भय–

दश-दिशा आवागमन की बात
योजना बनती कुशलता साथ
है यही दिग्व्रत प्रथम अणुव्रत
सुनो गौतम यही मेरा मत–

कार्य कर देते कई प्रारम्भ
और फिर करते अचानक बन्द
दण्डव्रत यह और पूर्ण अनर्थ
और इसके पांच भेद समर्थ–

पाप का उपदेश हिंसा दान
दुःश्रुति के साथ है अपध्यान
औ प्रमादी आचरण भी एक
फिर न मिट पाता विधाता लेख–

पांच इन्द्रिय शत्रु पर जय हेतु
भोग या अपभोग का हो सेतु
है यही गुणव्रत कहें भव लोग
जो धरे उसको न दुख या शोक–

एक शिक्षाव्रत व्रतों का भाग
भोग के प्रति पूर्ण हो वैराग
त्याग लेश्या का करे नित वह जाप
और जप व्रत में निरत हो आप–

इस तरह मन वचन कायिक शुद्धि
दोष से हो रहित निर्मल बुद्धि
और जो अणु पूर्ण व्रत धारक
हों कि इन्द्रिय कर्म के मारक–

आयु का जब उत्तरार्ध समीप
वह करे प्रज्वलित त्याग प्रदीप
छोड़ दें काषाय औ आहार
हो सुगम भव सिन्धु उतरे पार–

रात्रि में आहार का परित्याग
दिवस मैथुन पूर्ण घृत की आग
सुजन ऐसे ही महान अनन्य
हैं वही श्रावक सुनाम कि धन्य–

मोक्ष का इनको कि पूर्ण सुयोग
भोगते यह पूर्ण शुचितम भोग
मातृवत् समझे सदा पर नारि
लीन ब्रह्मात्मा रहे कामारि–

छोड़ देते वह अशुभ व्यापार
क्यों करें वह व्यर्थ निन्दाचार
मात्र तन पर वस्त्र हो धारण
अन्य सारे पाप के हारण

पापकर्मा परिग्रहों को त्याग
मन-वचन-तन शुद्धि में अनुराग

देव द्वारा पूज्य वह श्रावक
अहर्निश तप की जले पावक–

कहीं कैसा भी चले गृहकार्य
या स्वयं का हो कहीं आहार
यन्त्रणा में दें न अपनी राय
मौन रहने में परम सुख पाय–

त्याग देते कुधन अन्नाहार
मात्र भिक्षा अन्न ही स्वीकार
त्याग ही बस एक जीवन बिन्दु
पार करने त्याग का भव सिन्धु–

हैं यही उत्कृष्ट श्रावक जन
त्याग ही हो मात्र जीवन धन
स्वर्ग सुख सोलह करें उपभोग
छू नहीं पाते इन्हें भव रोग"–

श्रेष्ठ श्रावक धर्म का उपदेश
दे रहे अर्हन्त प्रभु देवेश
और फिर मुनि-धर्म पर आये
भूमि पर सुख के जलद छाये–

और फिर कहने लगे योगीश
मूल गुण मुनि-धर्म अट्ठाईस
औ अहिंसा के महाव्रत पाँच
औ समिति ईर्यादि जैसे काँच–

पंच इन्द्रिय रख विषय में दूर
लोंच लेते केश बन कर क्रूर
औ निरत षट कर्म में अविरत
हों दिगम्बर और इसका व्रत–

भूमि शय्या स्नान का परित्याग
दन्त धावन का चले फिर राग
और हो परिवर्जना का ध्यान
करें भोजन एक बार सुजान–

औ खड़े हो कर करें भोजन
पूर्ण वैरागी कि हो तन मन
है यही मुनि धर्म मात्र सुवेश
भव्य जीवों के लिए उपदेश–

प्राण पर खेलें न देवें छोड़
कष्ट कितने ही न लें मुंह मोड़
सम्पदा त्रैलोक्य पावें नर
श्रेष्ठ उत्तम धर्म मुनि का वर–

परिषहों पर विजय आतापन
लो सघन उपवास तप का प्रण
मौन धारण भी परम है श्रेष्ठ
है यही मुनि धर्म पर उपदेश–

योगियों के धर्म लक्षण दश
पूर्ण पालन हो प्रथम सर्वस्व
सत्य उत्तम क्षमा मार्दव शौच
त्याग आर्जव तप नि:संकोच–

ब्रह्मचारी पूर्ण आकिंचन
धर्म के गुण प्रमुख उत्पादन
मिले मुनि जन को इन्हीं से सिद्धि
मोक्ष का पथ खले मन की शुद्धि–

धर्म मुनि का सर्वतो भावेन
लोक का कल्याण इसकी देन
भव्य जन का बन्धु सुत दारा
धर्म ही सर्वस्व है प्यारा–

मौन रह क्षण एक फिर बोले
पुण्य ने निज पंख ज्यों खोले
और फिर जैसे बहे रस गंध
हो चली वाणी सुखर मृदु-मन्द–

'कह चुके जब धर्म पर गौतम
काल पर भी क्यों न बोलें हम

काल का सम्बन्ध है षट् काल
उचित ही जो कहें इनको व्याल–
यह हमारा देश आर्यावर्त
यह भरत का देश भारतवर्ष
है यहाँ षट् काल का ही योग
क्षेत्र ऐरावत यहाँ के लोग–
एक है उत्सर्पिणी का काल
दूसरा अवसर्पिणी बल व्याल
उत्स का है शब्द सार्थक रूप
रूप बल में वृद्धि-पूर्ण अनूप–
आयु सुख तन की सदा अभिवृद्धि
कार्य की सब काल होगी सिद्धि
काल में उत्सर्पिणी है भूत
दस महा सागर इसे लो कूत–
काल है जो वर्तमानक आज
है यही अवसर्पिणी का राज
आयु औ बल रूप का अवसान
लो इसे अवसर्पिणी फिर मान–
औ छह अवसर्पिणी के भेद
दस महा सागर परिधि साकेत
आह सुखमा प्रथम इसका काल
चार सागर तक चले यह चाल–
आर्यजन का उदय जब प्रारम्भ
सूर्य सम तेजस्विता का क्रम
स्वर्ण-सी पीताभ तन की कान्ति
देख तन को स्वर्ण की हो भ्रान्ति–
पल्यत्रय की आयु ज्यों गिरि शृंग
और तन भी है त्रिकोशक तुंग
उदित रवि-सा लाल मदरीपाल
है यही आहार इनका बल–

तीसरे दिन ही करें आहार
फिर नहीं मल-मूत्र का नीहार
कल्पतरु के भेद दस लो जान
मद्य-तूर्य अभूष फिर मालांग–

ज्योत वीणा भोज भाजन वस्त्र
और गृह ये कल्प के दस वृक्ष
ये सभी सम्पत्ति सुख दाता
है जहां यह वह सभी पाता–

और उत्तम पात्र को हो दान
भोग उत्तम भूमि पाता मान
फिर विकलत्रय का यहां क्या काम
और पन्चेन्द्रिय बने निष्काम–

काल सुखमा की सलौनी बात
तीन सागर तक कि इसका घात
आयु हो दो पल्य तन दो कोस
वर्ण उज्ज्वल चन्द्र-सा निर्दोष–

चन्द्र किरणों-सा सुशीतल तन
कान्तिमय हो स्वच्छ निर्मल मन
यहां जन दो दिन लिए अन्तर
धात्रि फल आहार पर निर्भर–

और इससे ही इन्हें हो तृप्ति
है यही आहार इनकी शक्ति
भोग वसुधा के सभी साधन
है इन्हें उपलब्ध पोषित जन–

सुख असुख का तीसरा है काल
सिन्धु दो-तक घूमता यह व्याल
आयु है इक पल्य तन है कोस
आंवला आहार करता पोष–

स्वर्ण-सी आभा मनुज की पीत
भोग वसुधा-सी चले वह रीत

कल्पतरु का प्राप्त आशीर्वाद
सुख विभव पर हो न पाता वाद–

काल चौथा है कि दुख-सुख का
कर्म का आरम्भ फिर लुटता
हो शलाका मनुज की उत्पत्ति
एक सागर से अधिक है शक्ति–

आयु इनकी वर्ष एक करोड़
और ऊँचे शृंग से ले होड़
पांच रंगों की मिले नर-देह
नित्य ही इक बार भोजन–पेय–

और तिरसठ शलाका नर श्रेष्ठ
हाथ में लेकर धवल यश केतु
प्रकट धरती पर हुए इस काल
हो गया युग का समुन्नत भाल–

और फिर चौबीस तीर्थंकर
नत चरण में सभी सुर आकर
अजित सम्भव ऋषभ अभिनन्दन
पद्म प्रभु औ सुमति चन्द्रानन–

पुष्पदन्त श्रियांश औ शीतल
वासुपूज्य अनन्त धर्म विमल
शान्ति कुन्थु सुव्रत मल्लि अरह
नमि: नेमि सुपार्श्वनाथ, सु-वह–

धर्म के यह हैं प्रवर्तक आदि
विश्व के स्वामी सकल गुण अब्धि
और बारह चक्रवर्ती नृप
सगर मघवा भरत तापस तप–

शान्ति कुन्थु सुभूम सनत्कुमार
अर्हनाथ कुमार जय अरि क्षार
महापद्मा और श्री हरिषेण
ब्रह्मदत्त सुधन्य भू की रेणु–

और नौ बलभद्र लीला धाम
विजय धर्म-सुप्रभा-अचल सुकाम
नन्दि नान्दी मित्र पद्म सुदर्शन
और श्री बलदेव पुण्योत्कर्ष—

और नौ युग श्रेष्ठ नारायण
स्वयं भू पुरुषोत्तमा आरण
दत्त लक्ष्मण पुण्डरीक ललाम
पुरुष केहरि कृष्ण योगी धाम—

सभी नारायण सुनृप वर धीर
और ये त्रैलोक्यपति बल वीर
इसी युग में दैत्य नौ दुर्जेय
त्रस्त करता विश्व को अभिप्रेय—

धर्म चक्री ये सभी दुर्धर्ष
कौन जाने जिये कितने वर्ष
फिर कहा प्रभु ने कि अद्योपान्त
जन्म से लेकर मरण वृत्तान्त—

है पुराणों में विशद वृत्तान्त
जान पाये मनुज अद्योपान्त
आयु और सम्पत्ति वैभव बल
प्राप्त होगा पद उन्हें केवल—

एक क्षण वाणी हुई कुछ शान्त
धुल गई कलुषित सभी मन भ्रान्ति
और फिर बोले सुनो गणधर
पाँचवाँ है काल दुख का घर—

हो सुखी कोई नहीं मानव
ढो रहे ज्यों एक जीवित शव
आयु इसकी है हजारों साल
लोग कहते हैं इसे दुख काल—

और जब इस काल का प्रारम्भ
आयु पाता है यहाँ मरु कल्प

हो न इनकी अधिक ऊंचाई
देह में बल भी न हो भाई–

बुद्धि इनकी मन्द तन रूखा
शक्ति हीना पेड़ ज्यों सूखा
हो नहीं सुख का यहाँ भी लेश
आह मन मस्तिष्क में हो क्लेश–

नित्य भोजन हो अनेकों बार
भूख का फिर भी न पावे पार
है सदा इनका कुटिल परिणाम
पुण्य का भी है न कुछ भी काम–

हो दिनों दिन बुद्धि बल तन न्यून
आयु का खिलता न दीर्घ प्रसून
है तभी प्रारम्भ दुखमा काल
रे खड़ा फुफकारता ज्यों व्याल–

मनुज ऊँचा मात्र ही दो हाथ
और घूँए-सा कि काला गात
काल यह रे धर्म-कर्म विहीन
बुद्धि बल तन आयु में हो क्षीण–

और दुख देता मनुज को घोर
त्रस्त करता विकल स्वर में जोर
नग्न तन रहते वसन से हीन
क्लान्त काया हर कदम पर दीन–

और होता काल का जब अन्त
डूबता नर दुख जलधि आकण्ठ
और ऊँचाई बहुत ही कम
आयु भी निश्चेष्ट जाती थम–

घूमते पशु वृत्ति वाले लोग
निन्दनीया हों कुगति का योग
हो नहीं अवसर्पिणी ज्यों-ज्यों
पर बढ़े उत्सर्पिणी त्यों-त्यों–

आह दुर्गति मृत्यु के पश्चात
ज्यों उतरती है धरा पर रात
मनुज हों सब धर्म कर्म विहीन
ज्ञान और विवेक सारे क्षीण–

फिर न होती प्रजा औ राजा
अराजकता बजाती बाजा
बहिन पत्नी में न जाने भेद
नष्ट होता धर्म–सारे वेद–

और आता काल का जब अन्त
हों धरा पर प्रलय दृश्य अनन्त
हो सतत भूकम्प वर्षा घोर
टूट कर तारे गिरें हो शोर–

मुँह खुलें ज्वालामुखी के घात
सिन्धु की लहरें उठातीं हाथ
खण्ड हो भूधर गिरे जल में
प्राण हों जीवित न जल थल में–

बह उठे फिर जलधि सीमा तोड़
लहर नाशक लें गगन से होड़
हो प्रलय फिर सृष्टि का विध्वंश
रह न पाये कहीं जीवित अंश–

यह चले उत्पात दिन उनचास
जलधि में डूबे धरा हो नाश
एक चित्रा भूमि बचती शेष
एक छोटी भूमि निर्जन देश–

शर्करा-सी मृत्तिका बरसे
प्राण प्राणों में यहां सरसे
काल सर्पिणि का यही है रूप
जो सुने तर जाय सिन्धु अनूप–

यों अयोध्या का हुआ जय गान
औ सुरों ने भरे आकर प्राण

मृत्तिका ने दिया उनको अन्न
हो गये नागरिक सुख सम्पन्न–

है यही उत्सर्पिणी का काम
वृद्धि सुख समृद्धि आठों याम
कहा प्रभु ने एक क्षण भर थम
लोक का वर्णन सुनो गौतम–

लोक का जो है कि निचला भाग
वेत का आसन सजाता साज
बीच में ज्यों हो टंगी झालर
दूर से लगती अधिक मनहर–

और ऊपर है मृदंगाकार
सृष्टि का बस है यही तो सार
जीव आदिक छः इसी में द्रव्य
दीप का आकार अतिशय भव्य–

'लोक जो पाताल धरती स्वर्ग
जातियाँ हैं विविध इनके वर्ग
वर्तमानक और भविष्यत् भूत
एक क्रम है एक इनका सूत्र–

औ शुभाशुभ का यहाँ जो क्रम
ज्ञान से ही जान पायें हम
है अलोकाकाश इनके भिन्न
सकल ऋतुएँ भी चले निश दिन–

ज्ञान से ही जान पायें भेद
ज्ञान से ही हो रहस्योच्छेद
भव्य जीवों के कि कल्याणार्थ
कह रहा कल्याण कारी बात–

विश्व में हो धर्म का वर्द्धन
इसलिए उपदेश यह वर्णन
बनी द्वादश अंग ही वाणी
विश्व के हित बने कल्याणी–

चन्द्रमा से ज्यों सुधा का स्राव
तैरती हो ज्यों लहर पर नाव
कान से सुनकर कि वचनामृत
हुआ गौतम का सफल वह व्रत–

ज्ञान का उपदेश अमृत स्राव
विप्र गौतम ने पिया भर चाव
मोह मिथ्या विष उगल डाला
शान्त थी अब मोह की ज्वाला–

हो गये सम्यक्त्व दर्शन युक्त
पूर्ण भव वैराग्य बन्धन मुक्त
भोग से हो गये गौतम दूर
ज्ञान घट उनका भरा भरपूर–

हुए गौतम पूर्ण वैरागी
भावना वैराग्य की जागी
आह फलता व्यर्थ मिथ्या मार्ग
मैं जलाता रहा मद की आग–

मूढ़ था मैं मूढ़ मन मेरा
भ्रम मुझे अब तक रहा घेरा
कूप में गिर जाय जैसे अन्ध
और दुख पाये सदा मति मन्द–

अन्ध मैं मिथ्यात्व में गिर मूढ़
पाप पंकों में रहा मैं बूढ़
सर्प को मैंने समझ माला
हो भ्रमित निज कंठ में डाला–

पालता ही रहा अब तक पाप
पाप को वरदान समझा आप
है यही मिथ्यात्व मारग हेय
और जड़मति के लिए अभिप्रेय–

है यही मिथ्यात्व अरि भीषण
शत्रु इसके जान सम्यक् कण

जीव को डसता यहीं विषधर
पाप इसका अस्त्र है खरतर–

ज्यों न गौ का सींग देता दूध
चाहते घी जैसे मथन से मुग्ध
दुर्व्यसन हों किन्तु यश चाहें
व्यर्थ चलते धर्म की राहें–

एक तो हो कृपण फिर नर नीच
जोड़ कर रखता सदा धन भींच
चाहता वह धर्म यश पायें
धर्म-धन-यश हाथ से जाये–

यह प्रबल मिथ्यात्व का अरिदल
क्यों न सम्यक् रूप का ले बल
हाथ ले सम्यक्त्व की तलवार
काट कर हलका करे भू-भार–

दूर गौतम की निराशा-तम
दूर था मिथ्यात्व का मद-भ्रम
सोचने गौतम लगे आगे
पुण्य क्षण उनके सभी जागे–

'धन्य हूँ मैं' धन्य यह जीवन
धन्य मैं प्रभु के मिले दर्शन
पुण्य का है उदय आज अनन्य
मिल गये गुरु-वीर-ज्ञानी धन्य–

जो दिया देवेश ने उपदेश
और क्या कहना उन्हें अवशेष
है सरल मत श्रेष्ठ यह मानें
मोक्ष का दाता यही जानें–

हो गया अज्ञान का तम दूर
ज्ञान की नव ज्योति है भरपूर
धर्म का अब पा लिया है पथ
चल पड़े अवशेष करने कृत्य–

धर्म के जो उत्तमोत्तम फल
चिन्तना को दे रहे थे बल
और समरसता बढ़ी फैली
ज्ञान की किरणें उतर फैली–

आह परमानन्द था अब प्राप्त
ज्ञान था कैवल्य मन में व्याप्त
बाहरी दस परिग्रहों का त्याग
भीतरी चौदह हुआ वैराग–

ज्यों अमर में सुशोभित सुरराज
विप्र गौतम बने गणधर आज
पद दिया प्रभु ने उन्हें गणधर
आज गौतम श्रेष्ठ अब मुनिवर–

थी हृदय में प्रबल हर्ष तरंग
पूर्ण प्रमुदित आज गौतम अंग
विप्रवर गौतम कि पूर्ण विरक्त–
भावनाएं किन्तु थीं अव्यक्त

और दृढ़ मन में हुआ संकल्प
है यही बस मात्र एक विकल्प
क्यों न हो मिथ्यात्व मूलोच्छेद
मोहतम को क्यों न दें हम भेद–

किन्तु इसको एक मात्र उपाय
जैन दीक्षा ही ग्रहण की जाय
मोक्ष होगा प्राप्त दुर्लभ मोक्ष
और अक्षय सुख कि प्राप्य परोक्ष–

मन वचन काया हुई फिर शुद्ध
विप्र थे अब शुद्ध बुद्ध प्रबुद्ध
संग ले अब अनुज द्वय प्रियवर
दिगम्बर मुद्रा कि धारण कर–

थे दिगम्बर पूर्ण अब गौतम
ज्ञान के आलोक का आगम

शिष्य लेकर पांच सौ प्रिय साथ
ज्यों सुशोभित गगन में निशिनाथ–

दे दिया उपदेश तत्त्व स्वरूप
ज्ञान का आलोक तत्त्व अनूप
दूर था अज्ञान तम अब दूर
घट हुआ वैराग्य का अब पूर–

और परिग्रह द्वय किया परित्याग
बन गये मुनि जली तप की आग
राज कन्याएं वहां जो थीं
पा गईं वह ज्ञान का मोती–

अर्जिकाएं बन गईं सारी
मुनिव्रता मुनि कर्म आचारी
और कुछ नर नारियों के साथ
बन गये श्रावक खिला नव प्रात–

सिंह मृग में मित्रता का भाव
शेष हिंसा का न कोई दाव
देव औ देवियां नर किन्नर
प्रभु सुधा उपदेश को पीकर–

दूर कर मिथ्यात्व विष की ज्वाल
धर लिया सम्यक्त्व मन में पाल
भक्ति श्रद्धा रस सहज घोले
इन्द्र गणधर से विनत बोले–

धन्य तुम हे विप्रवर गणधर
पूजते हम सब तुम्हें सुर नर
वन्दना नत युग चरण में आज
मोक्ष का तुमने सजाया साज–

तुम बने युग के अमर ज्ञानी
पूज्य तुम बन गये सम्मानी
है तुम्हारा नाम अब स्वामी
इन्द्रभूति सुमोक्ष के कामी–

विश्व में होगा यही अब नाम
धन्य तुम हे इन्द्रभूति ललाम
श्रावणी की प्रतिपदा पावन
हो गई मन शुद्धि मन भावन–

मधुर मंगल प्रात की बेला
ज्ञान का आलोक नव फैला
बुद्धि के थे प्रकट सारे अंग
मोह की थी पूर्ण निद्रा भंग–

प्राप्त गणधर को कि चारों ज्ञान
हो गया प्रारम्भ अंग विधान
उदित था अब धर्म फल सम्पूर्ण
हुई द्वादश अंग रचना पूर्ण–

प्रथम रचना हुई आचारांग
दूसरी थी पूर्ण सूत्र कृतांग
तीसरा स्थानक चतुर समवाय
पंच व्याख्य प्रज्ञप्ति का समुदाय–

औ उपासक अध्ययन चलता
सातवीं थी पुण्य ज्ञातृ लता
आठवीं अन्तः कृतः गुण अंग
अनुत्तर नवमां सुराट प्रसंग–

दशम प्रश्ना व्याकरण के साथ
औ विपाका सूत्र दृष्टिः बाद
पूर्ण रचना हुई द्वादश अंग
धर्म का यों हुआ गहरा संग–

हो गया उपदेश पूर्ण समाप्त
दिव्य वाणी भी रुकी लो साथ
या कि वाणी पा गई विश्राम
शान्त कोलाहल सुशान्ति ललाम–

एक ऐसा स्वप्न था साकार
आज पाकर धन्य था संसार

बह उठी वैराग्य की धारा
धर्म का आलोक नव प्यारा–

इन्द्र ने देखा मुदित मन मोद
हर्ष का प्रस्रवित निर्मल स्रोत
प्रभुचरण नतशिर कि बांधे हाथ
और इन्द्राणी प्रिया थी साथ–

कर रहे प्रभु का विनत वन्दन
और पूजा भाव था अर्चन
'तीर्थंकर हे जगत स्वामी
मोक्ष पथ के तुम सहजगामी–

अब करो हे मोक्ष का उपदेश
दो बता वह धर्म पथ देवेश
मन वचन औ काय की है शुद्धि
धर्म का उपदेश ही अभिवृद्धि–

तुम गुणों की खान गुण आगर
धर्म ध्वज तव हाथ में फर फर
आज की स्तुति जो करे भरपूर
पाप मल उसके सभी हों दूर–

और सम्यक् ज्ञान जब हो प्राप्त
शुद्ध नव वैराग्य मन में व्याप्त
पुण्य फल तुमने दिये सब काल
कट चुका है मोह तम का जाल–

ज्ञान का तुमने उगाया चन्द्र
भव्य प्राणों से हुए निर्बन्ध
पाप अरिदल नष्ट कर तत्काल
तुम बने अरि कर्म भीषण काल–

जगत ईश महेश तीर्थंकर
विश्व के उपकार का व्रत धर
करें आर्यावर्त पुण्य विहार
धर्म का उपदेश कर उपकार–

तीन लोकों के कि परम प्रवीण
तुम गुणों की खान पाप विहीन
साथ केवल ज्ञान को लेकर
वचन अमृत की लिये गागर–

जगत के सब हो अनाथ सनाथ
विश्व का देखो झुका है माथ
आप प्रभु अब करें परम विहार
ज्ञान संबोधन बहे रस धार–

विश्व तत्वों का कि परम प्रकाश
पाप संशय का करो हे नाश
भव्य तव उपदेश को गहकर
हाथ में तप की खडग को धर–

और हिय में धरे बल अक्षय
पाप कर्मों का करे वह क्षय
मोक्ष पद पाये वही अभिराम
हो उसे उपलब्ध सुख की खान–

धर्म के उपदेश से तव नाथ
दूर मिथ्यातम-खिले नव प्रातः
धर्म कर्मों का करे उपदेश
विश्व का दुख दूर हो देवेश–

त्रस्त है यह आज भव का जन
तुम हरो पीड़ा सकल भव घन
विश्व समता का पढ़ाओ पाठ
तुम विनत जन का उठाओ माथ–

आर्त जन को तुम बँधाओ धीर
तुम बहा दो सघन करुणा नीर
तुम तृषित को बनो शीतल जल
बनो चातक हेतु शशि शीतल–

देश का हर वर्ण है मृत प्राय
तुम बढ़ो जीवन कि वह पा जाय

धर्म के प्रिय चक्र का अभियान
सुन रहे क्या नहीं अब-आह्वान–
आप ले निज चरण द्वय-भूतल
कर चले ले-धर्म घट छल छल
चले अब वह धर्म चक्र विहार
नष्ट हो भू का कलुष व्यापार–

शीश हिला दी महावीर ने
स्वीकृति मौन उदार
और धरा को दिया श्रेष्ठतम
पावन तम उपहार–
अब बिहार मुद मंगलकारी
होगा प्रभु का जान
धर्म कर्म उपदेश सुधा से
जीवित जन के प्राण–
काल चक्र की गति में आया
आज अचानक मोड़
मानव गति के कालचक्र में
थी गरबीली होड़–
लौट गये सुरराज देव सब
सफल कार्य को जान
और हो गया धर्म चक्र का
पावन तम अभियान–

सातवाँ सर्ग

सातवाँ सर्ग

मैं गिर गिर पड़ता था
जब पथ में थक कर
तुम पात्र सुधा का
ले आते थे भर भर–

मैं हो निराश जब
कलम रोक लेता था
तुम भर देते थे त्वरित
भक्ति के अक्षर–

अब गलद अश्रु नयनों
में कण्ठ रुका है
तव चरण कमल में
मेरा शीश झुका है–

फिर क्यों बिलम्ब है
उठो दौड़ते आओ
करुणाकर, आओ
आओ मुझ उठाओ–

मंजिल की यद्यपि
नहीं अधिक कुछ दूरी
पथ में थकने की
आदत भी मजबूरी–

इसलिए आश में
हाथ उठा है ऊपर
अपनी ही गाथा
करो स्वयं तुम पूरी–

तुमने विलम्ब कर
दिया कहीं हे प्रभुवर
तो देह न रह पायेगी
जीवित क्षण भर–

फिर प्रभु गीता स्वर
निकल सकेंगे कैसे
तुम पकड़ हाथ ले चलो
मुझे मंजिल पर–

देर क्या चले त्रिलोकी नाथ
चरण में झुका धरा का माथ
हुआ प्रभु का विहार प्रारम्भ
पाप के नष्ट हुए सब दम्भ–

कि जब उपदेशामृत का दान
विश्व का हो अवश्य कल्याण
हो रहा था मिथ्या मत दूर
कि ज्यों तम रवि किरणों से चूर–

इधर थे चरण गमन के हेतु
गिर पड़ा समोशरण का सेतु
रिक्त जो पथ में मिलता स्थान
पूर्ति करते जाते भगवान–

सभा चलती थी बारह संग
धर्म के मानों द्वादश अंग
हो रहा था प्रभु का जयकार
सिन्धु में उठता मानों ज्वार–

धर्म औ चमर बनाते रेख
ध्वजाएँ उड़ती वहाँ अनेक

लोक कल्याण हेतु भगवान
कर रहे थे विहार अभियान–

हुआ मंगलमय जहाँ विहार
कर्म अरिदल का होता क्षार
फैलती जाती सुख समृद्धि
लोक वैभव की होती वृद्धि–

अन्नगारों में जलते दीप
न आ पाता दुर्भिक्ष समीप
शुष्क सरवर में भरता जल
कि खिलने लगते नील कमल–

बहाती थी रस धारा प्रीत
फसल के उठते मधुमय गीत
दृष्टि में प्रभु के सभी समान
दीन दुर्बल प्रति प्रेम महान–

सदा समता का रहता भाव
न मन में कोई व्यर्थ दुराव
और करुणा की खींच लकीर
पीड़ितों की हरते थे पीर–

पीर पहुंचाता वर्ण विभेद
देख कर होता भारी खेद
आह जो पीड़ित देख विकल
नयन से झरता जल छल-छल–

तृषित पाते थे उनसे नीर
विश्व के दुख से विकल अधीर
मनुज वैषम्य बीज बोता
न कोई बड़ा और छोटा–

छोड़ते चले नगर औ गाँव
मार्ग में मिले शीत औ घाम
नित्य ही खिलता मधुमय प्रात
सरोवर में खिलते जलजात–

पन्थ में वन उपवन आते
खेत फसलों से लहराते
कहीं सरिता का निर्मल जल
आह कितना मीठा शीतल–

एक क्षण कर लेते विश्राम
और फिर चलने का अभियान
प्रिष्य कर उठते जय जयकार
धूलि चरणों की उड़ी अपार–

पवन देता था पन्थ बुहार
जलद बरसाते मन्द फुहार
भरे अँजलि में सरसिज फूल
दौड़ कर आती लहरें कूल–

छेड़ती कोकिल मधुमय तान
तुम्हारा स्वागत हे भगवान
भ्रमर गुन गुन की उठा अलाप
मिटाते थे पथ का श्रमताप–

बैठती सभा जहाँ जिस ठौर
मोद का कोई ओर न छोर
बैठते थे पुरजन आकर
सभी ग्रामीण सुजन नागर–

धर्म का देते प्रभु आदेश
तारकों में जैसे राकेश
सुधामय झरती थी वाणी
सकल जन जन की कल्याणी–

लोक भाषा का चलता दौर
मागधी भाषा थी चितचोर
भाव भाषा थे पूर्ण सरल
मधुर निर्मल ज्यों गंगाजल–

देववाणी से मुखरित स्वर
हृदय में बना रहे थे घर

धर्म का करते थे उपदेश
कर्म अरिदल का रहे न लेश–

दूर करते सारे सन्देह
सकल जन जन के बने विदेह
विश्व का जन हो सुखी अनन्त
यही अभिलाषा करते सन्त–

ज्ञान का फैला दिव्य प्रकाश
हो रहा मिथ्या तप का नाश
चल रहा धर्म चक्र अभियान
स्वर्ग से उतरा स्वर्ण विहान–

दिशायें हो जाती थीं स्वच्छ
पाप धुल जाते थे प्रत्यक्ष
दीन दुखियों को मिलता त्राण
कि पा जाते थे मानों प्राण–

घूमता धर्म चक्र अविराम
कोटि आरों वाला छविधाम
कि कर अज्ञान तिमिर विच्छेद
केतु उड़ रहा धर्म का श्वेत–

बढ़ रहे पग ज्यों ज्यों आगे
धरा के भाग और जागे
उतरता गया पाप का भार
मोक्ष का खुलता जाता द्वार–

कि प्रभुवर करते हुए विहार
धर्म के थे मानो अवतार
रुक गये विपुलाचल सप्रीत
राजगृह के अत्यन्त समीप–

राजगृह भारी नगर विशाल
धरा ने पहिना हीरक माल
नगर को घेरे थे प्राचीर
दीखती थी पुरजन की भीड़–

नृपति का था प्रासाद विशाल
भव्य ज्यों हो धरती का भाल
खंड भी एक न बल्कि अनेक
राजपथ चला खींचता रेख–

पण्यशाला की लगी कतार
विविध सामग्री भरी अपार
वणिक विक्रेता मृदुभाषी
कार्य रत वहाँ दास दासी–

सुसंस्कृत क्रेता पूर्ण सुसभ्य
नागरिक भी ऐसे ही सब
वहाँ वैभव का ओर न छोर
देख कर होती दृष्टि विभोर–

सौध ऊँचे जैसे गिरि शृंग
कान्त थे कामिनियों के अंग
चलें तो कटि सौ-सौ बल खांय
रूप के सम्मुख रति बलि जाय–

एक था मात्र श्रेष्ठि का वर्ग
दूसरा दलितों का अपवर्ग
वर्ण में था सुस्पष्ट विभेद
आह मानवता का उच्छेद–

मनुज का बना मनुज ही दास
तृषित की कैसे मिटती प्यास
दासता की थी करुण पुकार
क्षत्रियों का शासन व्यापार–

पूर्ण अस्पृश्य रहा चण्डाल
घृणा का ही था मानो काल
ब्रह्मवादी ब्राह्मण का धर्म
उन्हीं तक सीमित उनका कर्म–

और क्षत्रिय उनके आधीन
चाहते सत्ता लेते छीन

वणिक भी फिर कैसे पीछे
चल रहे थे आँखें मींचे–

कि नर का नर के प्रति अन्याय
नयन में आँसू भर भर जाँय
कौन जो उन्हें बंधाये धीर
कौन जो करे दूर वह पीर–

ले रहा युग करवट बेचैन
रोष से भरे हुए थे नैन
क्रान्ति भी विस्फोटक अवरुद्ध
क्षत्रियों को तो केवल युद्ध

युद्ध के विषधर की फुफकार
इसी से होता नर संहार
नृत्य था हिंसा का खुलकर
आह थी पशु बलि मंगलवर

खेलते थे नृपजन आखेट
रक्त पर बाँध रहे थे सेतु
जीव हिंसा ही मात्र विधान
रहे रक्षक केवल भगवान–

नगर के बाहर विपुलाचल
हिमालय का सुरम्य अंचल
प्रकृति का वहाँ खेल साकार
धन्य वह विपुलाचल सौ बार–

कहा प्रभु ने "कुछ क्षण विश्राम
करें हम जहाँ प्रकृति छवि धाम
प्रकृति को देखें आँखें खोल
कौन दे पाया इसका मोल–

प्रकृति का यह साकार स्वरूप
सरल आकर्षक भव्य अनूप
देखते हैं हम जितनी बार
रूप उतना ही दिव्य अपार"–

कहा जो प्रभु ने - था आदेश
और क्या धर्म रह गया शेष
भक्त गण ने की जय जयकार
मोद मुद मंगल की रस धार-

संघ के सहित किया विश्राम
सभा प्रभु की लगती अविराम
आगये सेवा में ऋतुराज
सजा गया फल फूलों का साज-

कोकिला गाती थी मधु गीत
भ्रमर करते कलियों से प्रीत
किया फूलों ने नव शृंगार
उड़ी लेकर रसगंध बयार-

नवल कलिका अवगुण्ठन खोल
भ्रमर से करती थी मधु बोल
धरा ने पाया नव यौवन
प्रकृति का था हर्षित कनकन-

बैठती वहीं सभा वरवेश
किया करते प्रभुवर आदेश
दिव्य वाणी उठती गम्भीर
उठें स्वर सघत घनों मन्द्र को चीर-

तत्व रस के स्वरूप पर बोल
कर्म के बन्धन देते खोल
कभी होती समता पर बात
दीन जन पीड़ा पूर्ण सुज्ञात-

अछूतों का करना उद्धार
दलित वर्गों को सके उभार
पीड़ितों की पीड़ा कर दूर
उन्हें दे स्नेह प्रेम भरपूर-

सत्य से रहें न आँखें मींच
नहीं कोई समाज में नीच

कोढ़ में फैले वर्ण विभेद
धर्म का इनसे मूलोच्छेद–

एक ही ईश्वर की सन्तान
सभी होंगे फिर एक समान
किन्तु यह होता आज न खेद
हुआ मानव मानव में भेद–

भोगता एक विभव का भोग
दूसरे को दुख का है योग
किसी के पास वित्त भरपूर
और सत्ता मद में है चूर–

दास सेवा रत जहाँ अनेक
दासियों पर न दृष्टि भी नेक
किन्तु इस पर भी बुझे न प्यास
चाहते छू लेना आकाश–

सौध का करवाते निर्माण
फैलता जाता स्वर्ण वितान
राज्य की लिप्सा इन्हें न कम
स्वार्थ साधन में रत हर दम–

एक है धन का दावेदार
यही है श्रेष्ठि वर्ग साकार
कि लक्ष्मी तहखानों में बन्द
द्रव्य को धर्म मानते मन्द–

धर्म के बनते यही महन्त
कर्म का इनसे होता अन्त
मानते यही दलित को हेय
बूंद भर करुणा इन्हें न देय–

रंग जो देख रहे हो लाल
मात्र हिंसा का यहाँ कमाल
हवन में पशु बलि का आह्वान
आर्त स्वर सुन पाते क्या कान–

पीड़ितों पर यह अत्याचार
धर्म पर करते मर्म प्रहार
जरा सी बात उठे तलवार
और बह उठती शोणित धार–

मूक पशु का हिंसक आखेट
नृपति के मनोरंजन की भेंट
चाहिये सुरा सुन्दरी नृत्य
आह रह गये मात्र यह कृत्य–

चलो धारण कर लें हम सत्य
अहिंसा जीवन का हो व्रत
अपरिग्रह लें जीवन में ठान
उठ चले ब्रह्मचर्य का गान–

प्राण सम जीवन में अस्तेय
एक व्रत यही एक हो ध्येय
नहीं हो अन्य वस्तु पर दृष्टि
करुण रस की केवल हो वृष्टि–

वृत्ति हो सब की सरल उदार
सभी के साथ स्नेह व्यवहार
सुखी हो भव का जन प्रत्येक
खींच दें हम समता की रेख

हमारा सब का एक समाज
रहें हम सब मिलकर अविभाज्य
एक खाता हो रोटी सेक
दूसरा रहे न उसको देख–

धर्म में रहे हमारी प्रीति
कि लें हम कर्म शत्रु को जीत
तत्त्व का हम स्वरूप लें जान
समय का सार सकें पहिचान–

जले घर घर में तप की आग
करें स्वीकार एक व्रत त्याग

त्याग तप से जीवन हो शुद्ध
मोक्ष पथ पर बढ़ चले प्रबुद्ध–

पाप के अन्धकार का नाश
ज्ञान का दीपक करे प्रकाश
गगन में उड़े धर्म का केतु
करें निर्माण प्रेम का सेतु–

झरा करती अजस्र वाणी
विश्व हित बहती कल्याणी
सभा होती थी सुनकर धन्य
न उन-सा कोई धन्य अनन्य–

पुण्य का इन्हें मिल रहा फल
तपन में गलद अश्रु के जल
भक्ति की उठती प्रबल तरंग
भाव रोमांचित होता अंग–

चरण में गिरकर मानों फूल
शीश पर धर लेता था धूल
व्यजन बन जाता मन्द समीर
बोल उठते जय कोकिल कीर–

दिव्य वाणी लेती विश्राम
सभा का होता पूर्ण विराम
गूँजता प्रभु का जय जयकार
मोक्ष का खुल जाता था द्वार–

सुयश लेकर बह उठी बयार
गई श्रेणिक नृप निकट उदार
नृपति की सेवा में आ दौड़
कहा वनमाली ने कर जोड़–

नाथ विपुलाचल पर जिनराज
साथ ले भारी शिष्य समाज
वहाँ पर करते हैं विश्राम
सभा भी चलती है अविराम–

दिव्य वाणी में नव सन्देश
सभा को करते नित उपदेश
धन्य हो जाता लोक समाज
धर्म का सजता है नित साज–

भक्त जन करते जब जय गान
धर्म का चलता है अभियान
पूर्ण योगीश्वर तीर्थंकर
विजित है जिनसे सचराचर–

नाथ! वह पूर्ण त्रिलोकीनाथ
वन्दना करता उनकी प्रात
पवन देता है पन्थ बुहार
रात देती है मोती वार–

अनाथों को वह करें सनाथ
चरण में आ नत शत शत माथ
करुण धारा बन कर साकार
धरा का चले मिटाने भार–

अहा वह करते पुण्य विहार
आज आ गये राज के द्वार
साथ ले धर्म चक्र अभियान
आ गये महावीर भगवान–

विराजे विपुलाचल पर वीर"
नृपति रख सके न मन में धीर
हर्ष का मन में भारी ज्वार
दिया वनपालक को उपहार–

उल्लसित था श्रेणिक का मन
हो गया धन्य आज जीवन
'अहा प्रभु आये मेरे द्वार
चलें लेकर प्रभु को उपहार–

बजा दो भेरी था आदेश
सजे सब राज नगर वर वेश

अश्व गज रथ पदाति हों साथ
कहें सब से चलने की बात–

चलें सब मंत्री श्रेष्ठिक वर्ग
चलें परिजन सारा उपसर्ग
नहीं कोई रह जाय अशेष"
नृपति की वाणी में आवेश–

बज गई भेरी थी हलचल
राज्य की जनता सजी सकल
हुआ लो चलने का अभियान
गगन भेदी जयकार महान–

चले सब से आगे नृपराज
सैन्य दल था परिवार समाज
चल पड़ी प्रजा जनों की भीड़
चले आलोक अन्ध को चीर–

प्रजा करती जाती जयकार
गगन तक उठता घोष अपार
बादलों की ज्यों चले कतार
सिन्धु में उठता है ज्यों ज्वार–

वाहिनी जैसे चले विशाल
धरा का उन्नत करती भाल
प्रजा में भरा हर्ष उन्माद
मात्र थी प्रभु दर्शन की बात–

जा रहे नृपति प्रजा पीछे
धूलि पथ की उड़ती नीचे
चले सेवा में लेकर भेंट
ध्वजा उड़ रही धर्म की श्वेत–

पर्व था विपुलाचल पर आज
यहाँ आ पहुँचे जब नृपराज
प्रजा का लहरा जन सागर
भक्ति की लहर उठी हर हर–

नृपति ने किया प्रथम जय घोष
प्रजा को आया मानों होश
हुआ सब का अनुकरण उदार
कोटि कंठों का जय जयकार–

विनत नृप का चरणों में माथ
धर रहे थे करुणाकर हाथ
भक्ति रस में डूबा जन जन
धन्य था धरती का कन कन–

चढ़ा चरणों में भेंट प्रथम
कहा प्रभु के चरणों में हम
करें यह भेंट तुच्छ स्वीकार
लोक पर इतना हो उपकार–

अष्ट द्रव्यों से कर पूजन
अर्घ्य जल देते नयन सघन
लगे करने वन्दन नृपवर
गूंजने लगे वन्दना स्वर–

—वन्दना—

धन्य भाग जगे आज
धन्य दिवस आया–

जै जै त्रैलोक्य नाथ
तुम से जन हों सनाथ
दर्शन सौभाग्य मिला
पुण्य कमल सहज खिला

दूर हुआ पाप तिमिर
नव प्रकाश छाया
धन्य भाग जगे आज
धन्य दिवस आया–

ब्रह्मचर्य व्रत सुधार
वन्दन पद बार बार

करुणा के सिन्धु अगम
कर्मनाश किया सुगम

नमो शान्त रूप देव
पाप नाश भाया
धन्य भाग जगे आज
धन्य दिवस आया—

इन्द्रिय पर सुदृढ़ जयी
कर्म शत्रु सकल क्षयी
मुक्ति कामिनी सुकन्त
ज्ञान ध्यान हे अनन्त

विश्व वंद्य विनत ईश
दिव्य सकल काया
धन्य भाग जगे आज
धन्य दिवस आया—

काटो भ्रम दुर्ग जाल
नष्ट हो विपत्ति व्याल
दहन करो दुःख दोष
जय का उठ चला घोष

जन्म मरण जाल विद्ध
करो पूर्ण दाया
धन्य भाग जगे आज
धन्य दिवस आया—

जिसने ले लिया नाम
पूर्ण हुए सकल काम
चिन्ता दुःख नष्ट सकल
अन्तर मति शुद्ध नवल

भक्ति भाव जग हिताय
तुम्हें खींच लाया
धन्य भाग जगे आज
धन्य दिवस आया—

पावन ले अष्ट द्रव्य
पूजन जन करें भव्य
पद की ले चरण धूल
अर्पित हम करें फूल

भक्ति गीत सहज बने
जिसने जो गाया
धन्य भाग जगे आज
धन्य दिवस आया–

भव का सागर अपार
डूब रहे बार बार
भव के तुम महायान
पार करो हे महान

निर्विकार सन्त ज्ञान
दीप को जलाया
धन्य भाग जगे आज
धन्य दिवस आया–

भव्य सुखद दाता हे
धर्म के प्रदाता हे
गुरुवर तुम तीन लोक
दूर करो कर्म शोक

जप तप व्रत तत्त्वरूप
विश्व को सुनाया
धन्य भाग जगे आज
धन्य दिवस आया–

सफल हाथ छुए चरण
दर्शन कर सफल नयन
मुखरित मुख सुयश गीत
काया तप से पुनीत

तुमने योगीश महा
मोह से जगाया
धन्य भाग जगे आज
धन्य दिवस आया–

वन्दना अर्चन के उपरान्त
नृपति ने प्रभु को किया प्रणाम
हृदय उद्वेलित भक्ति तरँग
बन्धु बान्धव को लेकर सँग–

श्रवण करने प्रभु का उपदेश
सभा में बैठे नृपति सुवेश
और उपदेशामृत का पान
रहे करते नृपवर धर ध्यान–

सभा में थे गणधर वागीश
नृपति ने उन्हें झुकाया शीश
विनत नृप बोले हे मुनिवर
मिलें जिज्ञासा के उत्तर–

तत्व पर कहें विप्र कुछ और
करें उत्तर से मुझे विभोर
बतायें श्रावक का क्या धर्म
यती को कितना करना कर्म–

पुराणों के कितने क्या नाम
किया किसने कितना गुण गान
चक्रवर्ती कितने सम्राट
धरा पर किसका कितना राज–

सुनाये देव कथा हरिवंश
लोक नायक ज्योतिर्मय अँश
कौन थे तीर्थंकर के तात
बहिन भाई दारा सुत मात–

रहे जो कामदेव अवतार
कथा की बहे सरस रस धार
और नारद का भी दें ज्ञान
रुद्र गण का क्या रहा प्रमाण–

पुरुष वह भी दे देव न छोड़
मुक्ति ने वरा स्वयं आ दौड़
जला कर जीवन तप की आग
कर्म अरि के मिस भीषण नाग–

कौन नर गये स्वर्ग की ओर
धरा पाकर हो गई विभोर
ज्ञान की जली कि जिनसे जोत
पाप का रहा न किंचित खोट–

स्वर्ग में होता जिनका गान
तपस्वी योगी व्रती महान
धरा पर ठोक धर्म की मेख
खींचते चले ज्ञान की रेख–

कौन दुर्जन पापी कामी
अन्त में बने नरक गामी
हो गया जिनके कुल का नाश
तोड़ जो सके न यम का पाश–

प्रश्न गम्भीर और गुरुतर
चाहते थे समुचित उत्तर
दिव्य मुखरित सहसा वाणी
जान पाये केवल ज्ञानी–

जानने में समर्थ गणधर
कहा सुनिये उत्तर नृपवर
सत्ताइस जग के तत्व अनूप
दिव्य जग के साकार स्वरूप–

तत्व में जिनकी गहरी नींव
कहें हम उनको जीव अजीव

तत्त्व की फैलाते जो गंध
संवर आस्रव हैं ये दो बंध–

तत्त्व भी हैं दो और परोक्ष
निर्जरा प्रथम दूसरा मोक्ष
मानते धर्म यती भी दो
यही श्रावक को भी कह लो–

कि जिनमें श्रेष्ठ हुए चौबीस
पुराणों ने माना है ईश
इन्हें हम कहते तीर्थंकर
तपस्वी योगी शुचि व्रतधर–

लोकनायक थे यही सुसेव्य
वन्दना करते जिनकी देव
दया ममता करुणा सागर
मोक्ष गामी सब हुए सु-नर–

चक्रवर्ती इनमें बारह
सुयश कहती धारा बह बह
बना था जिनका पुण्य चरित्र
स्वयं गाथा लिख गये पवित्र–

पुराणों में जिनका है नाम
गीत गाये जाते हर याम
पूर्ण महिमा मण्डित नृप राज
कर गये तीन लोक पर राज–

हुए नौ हरि भी देव वरेण्य
रहा जिनको कुछ नहीं अदेन्य
देवगण में जो उत्तम श्रेष्ठ
दूर था इनसे जग का क्लेश–

विश्व के ज्ञान धर्म धारक
प्रबल असुरों के सँहारक
धर्म का जब जब होता क्षय
धरा को मिलता बल अक्षय–

धर्म का इनसे अभ्युत्थान
ज्ञान का जलता दीप महान
धरा का करते हलका भार
कर्म अरिदल का सकल निवार–

इन्हीं की बनती गुण गीता
धर्म का हुआ न घट रीता
प्रेम समता की बहती धार
दया ममता के करुणागार–

हुए जो तीर्थंकर चौबीस
धरा पर उतरे ज्यों रजनीश
तेज मुख जैसे सूर्य सतेज
कान्ति तन द्युति की दस्तावेज–

काम जिनके सम्मुख नत माथ
ताम्र-सा जिनका चमचम गात
यशस्वी गाते जिन्हें पुराण
देव करते जिनका गुण गान

और नौ नारद का उल्लेख
पुराणों में हो रहा विशेष
रुद्र भी ग्यारह हुए प्रबल
असाधारण बलवीर सकल–

हो रहा प्रश्नोत्तर संवाद
सभा में व्यापक मौन अगाध
पूछते प्रश्न नृपति गम्भीर
दे रहे उत्तर गणधर धीर–

अन्त में बोले नृपति उदार
कहें हे विद्या के अवतार
दया कर पूर्व जन्म वृत्तान्त
कि सुनकर हो जाये भ्रम शान्त–

प्रश्न था पूर्व जन्म की बात
कृपा कर कहें सभा में नाथ

एक क्षण छाया मौन गंभीर
लहर ज्यों रुके सरित के तीर–

सुनें श्रेणिक नृपवर हो शान्त
स्वयं का पूर्व जन्म वृत्तान्त
हो गये पूर्व जन्म जो तीन
उन्हें ही सुनिये नृपति प्रवीण–

यही तो आर्यावर्त पुनीत
विश्व में गूँजे जिसके गीत
धर्म में है सबका सिर मौर
रश्मियाँ लेकर उतरे भोर–

इसी में विंध्या चल गिरिराज
प्रकृति का सजता अनुपम साज
गगन को चूम रहे गिरि शृंग
सुयश गाते गुनगुन कर भृंग–

कि दक्षिण में वर कूट विशाल
मन्द होती समीर की चाल
सघन वन का विस्तृत वन देश
सजाती वन बालायें वेश–

सघन गिरि और तरुण तरुदल
सघन प्रकृति का बन अंचल
झरें झरझर कर घोर निनाद
नहीं रह पाता तनिक विषाद–

वन्य पशु हिंस्रक जहाँ अनेक
सरल शुचि वनवासी भी नेक
सुबह होती थी होती रात
वहीं रहता था एक किरात–

कि उसका खदिरसार था नाम
सदा हिंसा से रहता काम
शौर्य बल तन में भरा अगाध
लिया साहस को जिसने साध–

मांस ही जिसका प्राणाधार
खेलता रहता सदा शिकार
जा रहे दिन जीवन के बीत
हो रही यों हीं आयु व्यतीत–

उमर की ज्यों-ज्यों ढलती सांझ
दिवस का काजल देती आंज
मिला उसको अवसर उपयुक्त
मिल गये उसे समाधी गुप्त–

श्रेष्ठतम मुनि थे ज्ञान अगाध
धर्म की बहती सरित अबाध
तपस्वी यति थे गुण आगार
सौम्यता शुचिता पूर्ण अपार–

विनत नत मुनि को किया प्रणाम
हृदय में श्रद्धा पूरित काम
धन्य मैं बोला वह मुनिराज
सफल है मेरा जीवन आज–

चलें कुटिया में पाँय प्रसाद
हमे दें मुनिवर आशीर्वाद
झुकाया कह मुनिपद में माथ
कहा 'मुनि ने शुभमस्तु किरात'–

जगे अनुराग धर्म की ओर
पाप से लो अपना मुँह मोड़
जीव हिंसा में जगे विरक्ति
धर्म प्रति विकसित हो आसक्ति–

एक क्षण हतप्रभ हुआ किरात
धर्म क्या नहीं तनिक भी ज्ञात
बतायें मुनिवर है क्या धर्म
और क्या कैसा इसका मर्म–?

धर्म के कार्य और कारण
पाप का कैसा संहारण

जगी जिज्ञासा मन में आज
शान्त कर दें कृपया मुनिराज–

एक क्षण हुए नेत्र युग बन्द
दूसरे क्षण थे मधुमय छन्द
भव्य हे सुनो पूर्ण धर ध्यान
इसी में हो तेरा कल्याण–

धर्म अत्यन्त सरल हो मान
छोड़ दो पूर्ण सुरा का पान
माँस का भक्षण कर दो बन्द
धर्म का हो तब ही आनन्द–

त्याग दो मधु का भी सेवन
पाप का रह न सकेगा धन
जीव की हिंसा पाप कठोर
भव्य दें पूर्ण रूप से छोड़–

यही तो पूर्ण धर्म का लाभ
यही तो है जीवन अमिताभ
पुण्य के भागी सहज सकाम
स्वर्ग का पथ मिलता अभिराम–"

भील लेकिन था बहुत निराश
पाप का कैसा होगा नाश
'किन्तु क्योंकर संभव मुनिनाथ
त्यागना सहज न कोई बात–

भला यह सुरा पान मधु माँस
देह जीवित रखती ज्यों साँस
यही तो मात्र हमारा भोज
भला फिर कहाँ पाप का बोझ–

असम्भव पूर्ण असम्भव त्याग
भला क्या बुझी पेट की आग
बतायें कोई अन्य उपाय
हाथ से धर्म न जाने पाय–

उचित ही तुमने कहा किरात
छोड़ दें इस क्षण यही विवाद
किया क्या काक मांस भक्षण
भील ने कहा 'नहीं' तत्क्षण–

कहा मुनि ने फिर बने नियम
काक का मांस न लेंगे हम"
भील ने बात सहज मानी
बात यह मन ही मन ठानी–

काक का मांस न अब खायें
भले ही प्राण चले जायें
और फिर होकर भाव-विभोर
गिरा मुनि के चरणों में दौड़–

'भव्य यह रखना मन में ध्यान
नियम के बिना न होगा त्राण
नियम ही व्रत का है पर्याय
पुण्य का यह ही मात्र उपाय–

नियम के बिना न कोई अर्थ
पुण्य की बात सोचना व्यर्थ
भील था पूर्णतया सन्तुष्ट
हुआ संकल्प और भी पुष्ट–

और कर मुनि का अभिवादन
चल दिया अपने वन्य सदन
सोचता जाता मन में भील
नियम में होगी कभी न ढील–

चल पड़ा जीवन सरित प्रवाह
एक था लक्ष्य एक ही राह
भूल सा गया बात भी और
किन्तु मन में संकल्प हिलोर–

अहा लेकिन कुछ दिन पश्चात
उठा जीवन में झंझावात

शीश पर चढ़ आया दुर्भाग्य
भर गया तन में रोग असाध्य–

रोग से त्रस्त हो गया भील
घेरती भू को तम की झील
कि जीवन से हो पूर्ण निराश
एक दिन गया वैद्य के पास–

वैद्य ने देख उसे कुछ देर
कहा यह मात्र समय का फेर
रोग का है अब यही निदान
काक का माँस बचाये प्राण–

उसी का ही सेवन उपयुक्त
करेगा यही रोग से मुक्त
और कुछ है अब नहीं उपाय
मृत्यु से आकर तुम्हें छुड़ाय–

भील का मानस लेकिन खिन्न
भावना मन की पूर्ण विभिन्न
शुष्क अधरों पर फीका हास
वैद्य ! तुमने कर दिया निराश–

काग का माँस करूँ भक्षण
नहीं खाने का पाला प्रण
एक ही जीवन मिलता एक
मिटे क्यों कर यह प्रण का लेख–

सुने मम दारा सुत परिवार
और अब जीवन अस्वीकार
नहीं छोड़ूंगा दुर्लभ व्रत
हाथ से जाने दो अमृत–

छोड़ता व्रत जो जीवन अर्थ
मूर्ख वह करता महा अनर्थ
व्यर्थ पावन पुरुषों का संग
बजाता काल शीश पर चंग–

जन्म तो पा ही जाता प्राण
किन्तु व्रत शुभ आचरण महान
कि विरला ही कर पाता प्राप्त
अन्य को मिले काल का घात–

करूं व्रत आह व्यर्थ क्यों भंग
पाप का और चढाऊँ रंग
इसलिए चढ़ा प्राण का अर्घ्य
क्यों न मैं पाऊँ अपना स्वर्ग–

नर्क में जाते पापी लोग
चाहते पाप कर्म का भोग
उन्हीं को जीवन से अनुराग
भला वह कर पाये क्या त्याग–

खदिर का पावन दृढ़ संकल्प
खोज पाया कुछ नहीं विकल्प
फैलती गई बात यह दूर
पवन के संग उड़े ज्यों धूर–

सुयश गाथा बन गई अजान
मलय ने किया दूर गुण गान
सुना जिसने भी हुआ प्रसन्न
कह उठे धन्य खिदिर है धन्य !

गई सारसपुर तक यह बात
हुआ यह भद्र नेमि को ज्ञात
खिदिर का था वह मित्र अभिन्न
हो गया उसका हृदय विषण्ण–

मित्र को हो असाध्य जब रोग
और फिर जीव मृत्यु का योग
चल पड़ा मित्र मिलन के हेतु
टूट जाये न मित्रता सेतु–

हृदय में भर चिन्ता तूफान
जा रहा था बनकर गतिमान

प्रार्थना करता जाता मन
मित्र की कुशल करें भगवन–

सखा वह मेरा जीवन प्राण
मित्र की कुशल करें भगवान
समर्पित उसके हित तन-मन
तुच्छ है मेरा सारा धन–

कौन हो सकता मित्र समान
मित्र की कुशल करें भगवान
मुझे क्या नहीं गया वह भूल
हृदय को यही सालता शूल–

दूर कैसे हो उसका ध्यान
मित्र की कुशल करें भगवान
मिले भी बीत गया है काल
जान कैसे पाता फिर हाल–

रुक गई चिन्ता की धारा
नष्ट हो गया स्वप्न सारा
हो गया भीषण वन प्रारम्भ
जगा मन में स्वाभाविक दम्भ–

भील का वन ही होता धाम
भला फिर भय का कैसा काम
जा रहा गति लेकर सामान्य
पड़ा लेकिन सहसा व्यवधान–

भील ने देखा आगे चल
एक बैठी तरुणी तरु तल
बह रहे थे आँसू झर-झर
सिसकियों के ये केवल स्वर–

हुआ हतप्रभ क्षण भर को भील
ठोंक दी गति में किसने कील
आह यह कौन यहाँ क्या काम
रो रही निर्जन में क्यों वाम–

निकट जा कर पूछा तत्काल
बताओ रमणी अपना हाल
कौन तुम कह दो अपना नाम
और माँ बाप कहाँ है धाम–

सघन भीषण वन में किस हेतु
सदन का उड़ा रही हो केतु
आह सिसकी उठ अम्बर पार
कर रही है विचलित संसार"–

सिसकियाँ हुई एक क्षण बन्द
गीत के रुक जाते जब छन्द
नयन के ऐसे मुक्ता कोष
धरा पर बिखरे जैसे ओस–

मौन रह कर बाला क्षण भर
एक क्षण देख नयन भर कर
कहे कुछ रुक-रुक कर यों बोल
शब्द में मानों मधु रस घोल–

आह क्या तुम्हें बताऊँ बात
यक्षिणी हूँ इस वन की ज्ञात
यहीं इस वन में सदा निवास
एक मन में आशा विश्वास–

"भील वह खदिर तुम्हारा मित्र
स्वप्न में रहता जिसका चित्र
आज वह ही है मरणासन्न
आह मेरा वह जीवन धन–

जा रहे जहाँ मिलन के काज
मृत्यु आ निकट खड़ी है आज
काग का मांस न वह खाये
मौत फिर आती है आये–

मृत्यु में नहीं तनिक सन्देह
छोड़ देगा जब तन का गेह

जन्म लेगा जब दूजी बार
आह बह लेगा मुझे सँवार–

माँग में मेरे भर सिन्दूर
प्यार देंगे मुझ को भरपूर
हृदय में युग-युग के वासी
बनायेंगे मुझको दासी–

किन्तु जा रहे मित्र के पास
खिलाने चले काग का माँस
क्या न जाकर तोड़ोगे प्रण
यही तो रोने का कारण–

स्वप्न क्या नहीं जायगा टूट
नहीं क्या लोगे मुझको लूट
विनय है उन्हें न करना बाध्य
रोग है यद्यपि पूर्ण असाध्य–

पुण्य का उदय हुआ है आज
पाप का सधे न कोई काज
काग का खायें कहीं न माँस
तुम्हीं पर टिकी एक यह आश–

भील भी समझा मन की पीर
हो रही थी यक्षिणी अधीर
देख नयनों के मुक्ता कन
आह भर आया उसका मन–

कहो : दो रुदन सर्वथा छोड़
पा गया हूँ जीवन में मोड़
मुझे समझो अपना विश्वस्त
स्वप्न का सौध न होगा ध्वस्त–

निराशा की जल सके न आग
मिलेगा तुम्हें अपेक्षित भाग
माँग में हो अक्षय सिन्दूर
कामना मंगल है भरपूर–

बिदा दो चलूँ मित्र के पास
हुआ जीवन से पूर्ण निराश
और देखूँ जा उसका हाल
लिया जो पूर्ण सुव्रत को पाल–"

माँग कर बिदा चल दिया भील
रही चिन्ताएँ पल पल लील
कि गति में भरे प्रभञ्जन चाल
पहुँचने में कुछ लगा न काल–

कि व्याकुल हुआ मित्र को देख
अमिट था किन्तु विधाता लेख
वैद्य की लो औषधि हे मित्र
बने जीवन का सुन्दर चित्र–

सभी थे घर में चिन्ताकुल
देख कर देह बन रही धुल
मौत की छाँह रही थी फैल
दीप में रहा न बाकी तेल–

सभी चिन्तित परिवार सदस्य
किसी का रहा न कुछ भी वश
कि सुख की चली जलाने आग
फटने चले सभी के भाग–

पुंछा जा रहा माँग सिन्दूर
काल हँस रहा भील पर क्रूर
जलेगा क्या स्वर्णिम परिवार
आह यह छोटा-सा संसार–

खदिर ने कहा : रुको हे मित्र
तोड़ते हो क्यों नियम पवित्र
जीव तो पाये जन्म हजार
किन्तु व्रत भँग एक ही बार–

शीश पर होगा भीषण पाप
भस्म कर देगा पश्चाताप

पाप का करो न परिणामी
बनाते व्यर्थ नर्क गामी–

धर्म का करो न मेरे नाश
ले रहा हूँ जब अन्तिम श्वास
धर्म की चर्चा ही हो मीत
सुनाओ भक्ति प्रेम का गीत–

चाहता करे न कोई शोक
सुधर जाये मेरा परलोक
आह हिंसा में बीते दिन
पाप जीवन के हैं अनगिन–

दीखते हैं मुझको यमराज
साथ में ले जाने के काज
क्यों न फिर चलूँ साथ हो लूँ–
भक्ति के बीज और बो लूँ–

खिदिर का यह दृढ़ निश्चय देख
धर्म की ओर आस्था नेक
धन्य तुम मेरे प्यारे मित्र
आस्था जागृत हुई पवित्र–

किया जो काग मांस परित्याग
धन्य तुम धन्य तुम्हारे भाग
तुम्हारे लिए स्वर्ग का द्वार
खुलेगा एक नहीं सौ बार–

शेष है यद्यपि जीवन अल्प
किन्तु यह पावनतम संकल्प
मोक्ष सुख का दाता साकार
पाप हो जाय स्वयं ही क्षार–

मिलेगा अक्षय सुख कल्पान्त
दिव्य अक्षय निधि विभव महान
दिव्य फल पाओगे सप्रीत
अप्सरायें गायेंगी गीत–

हुआ जब शात धर्म परिणाम
जीव को मिला तनिक विश्राम
हो गया अणुव्रत में तत्पर
स्रवित मन में प्रकाश निर्झर–

दीप की लौ का था अवसान
खिदिर भी छोड़ रहा था प्राण
प्राण भी छोड़ रहा था देह
देह से छूट रहा था स्नेह–

मच रहा था घर में कुहराम
शोक की घिर आई थी शाम
मिल गई पंच भूत में देह
शेष रह गई भूमि पर खेह–

मिला सौधर्म ऋद्धि का स्वर्ग
दिव्य जीवन का पहला सर्ग
खिदिर रह गया न मात्र किरात
स्वर्ग का देखा दिव्य प्रभात–

खिदिर की हुई इधर जब मौत
मित्र भी गया व्यथित मन लौट
राह में मिला वही फिर वन
वही वनदेवी वही विजन–

उसी तरु तल पर थी आसीन
मौन मुख पर वेदना असीम
विधाता की थी भारी भूल
कि मुरझाया असमय ही फूल–

विनत नत हो कर अभिनन्दन
भील ने पूछा विस्मित मन
'मिला क्या नहीं अपेक्षित भाग
गीत को मिला न कोई राग–

शोक की छाया मुख पर व्याप्त
हुआ क्या नहीं तुम्हें वर प्राप्त

हो गई वनदेवी क्या भूल
शूल से बिंधा हुआ क्यों फूल"–

उठी हलकी फीकी मुसकान
कहा वनदेवी ने हो म्लान
"धन्य तुम शूर वीर हे धन्य
मित्र का कार्य किया सम्पन्न–

कि तुमने किया पुण्य है कार्य
तुम्हारा मान रही आभार
कराया तुमने पावन काज
पुण्य के भागी तुम भी आज–

कि उनका पूर्ण माँस का त्याग
माँस के प्रति पावन वैराग
पाप कर्मों का नाश समूल
मिल गया स्वर्ग सरित का कूल–

देव बन हुआ स्वर्ग में वास
दिव्य धन वैभव उनके दास
भले बन सके न वह भरतार
तोष है मन में यही अपार–

उन्होंने पाया अक्षय स्वर्ग
रहेगा मुझे यही तो गर्व
यही क्या कम है मेरा भाग्य
स्वर्ग सुख उनका मेरा त्याग"–

हो गई वनदेवी कह शान्त
हुई अन्तर पीड़ा से क्लान्त
नयन से झर-झर जाता नीर
भील का हृदय रहा था चीर–

विचारों की उठती हिल्लोर
झाँकता कहीं दूर से चोर
सोचकर सहसा हुआ विमुग्ध
रह सका हर्ष नहीं अवरुद्ध–

आह क्या ऐसा ही परिणाम
सुव्रत से मिले मोक्ष का धाम
दिव्य सुख मिलता है परलोक
नहीं फिर सका स्वयँ को रोक–

नर्क को भोग रहे व्रत हीन
माँगते भव सुख बन कर दीन
कीट बन लेते जन्म अनेक
पाप का लिखते अपना लेख–

दौड़ कर गया जहाँ मुनिनाथ
विनत हो झुका चरण में माथ
देव हो मेरा भी उद्धार
दूर हों सारे विषय विकार–

पाप का ही भोगा है भोग
पुण्य का कभी न पाया योग
कर्म अरि का कर नाश समूल
पा सकूँ प्रभु चरणों की धूल–

मुझे दीक्षा दें सुव्रत ललाम
पाप से पाऊँ पूर्ण विराम
धर्म का ढूँढ सकूँ मैं पन्थ
मोक्ष का भागी बनूँ अनन्त–

कहा मुनि ने : 'तथास्तु हे भव्य
तुम्हें दूँगा अमूल्य मैं द्रव्य
बन गया संप्रति श्रावक धन्य
मोक्ष का पाओ पुण्य अनन्य–

स्वर्ग का चलो खोल लो द्वार
धरा पर स्रवित धर्म की धार
विश्व का करो बढ़ो कल्याण
धार लो श्रावक धर्म महान–

अहिंसा ब्रह्मचर्य अस्तेय
अपरिग्रह सत्य तुम्हारे गेय

पंच अणुव्रत जीवन में ढाल
धर्म का ले हे दीपक बाल–

विनत हो कर मुनि का अर्चन
चल दिया भील कि हर्षित मन
चला जीवन भी अपनी चाल
काल का रहा फैलता चल–

नियम व्रत का करता पालन
कर्म अरि पर करता शासन
पूर्ण श्रावक का धर्म संभाल
कि गति के साथ दे रहा ताल–

सघन तम ले घिर आई रात
मौत ने धरा शीश पर हाथ
गया रे वह भी स्वर्ग सिधार
पूर्व ही खुले मोक्ष के द्वार–

बना द्विज वही मृत्यु उपरान्त
नाम था अर्हदास प्रिय कान्त
प्राप्त था उसको सुख सामान्य
किन्तु वह था समाज में मान्य–

काल जब लगा बजाने तूर्य
लगा ढलने जीवन का सूर्य
छोड़कर मिथ्या मत का वाद
जगी श्रद्धा मुनि धर्म अगाध–

और की जिन मुद्रा स्वीकार
कर्म अरिदल ने पाई हार
तपस्वी बना किया तप घोर
सुयश की उठने लगी हिलोर–

आगई सहसा मृत्यु समीप
बुझ गया वह जीवन का दीप
पुण्य बल उसका रहा अगम
जा सके उसे न लेकर यम–

अन्त में जाकर पहुँचा स्वर्ग
दूर था उसके पथ से नर्क
रहा करता अनन्त सुख भोग
भील को मिलना था यह योग–

सुनो अब खदिर सार का वृत्त
ध्येय जिसके जीवन का सत्य
मोक्ष सुख पाता रहा अनन्त
एक क्या दो सागर पर्यन्त–

मोक्ष की अवधि गई जब बीत
मचलने लगे छन्द के गीत
पुण्य का अब भी शेष प्रभाव
नृपति के घर में जन्मा जाय–

नृपति उप श्रेणिक वीर महान
धर्म का जिन्हें पूर्ण था ज्ञान
और रानी इन्द्राणी धन्य
न उनसा कोई और अनन्य–

तुम्हारे वही पिता औ मात
सूर्य को देता जन्म प्रभात
बने तुम श्रेणिक उनके पूत
यही तव पूर्व जन्म का सूत–

हुए इतना कह गणधर शांत
रुका मलयज दौड़ा उद्‌भ्रान्त
नृपति का रोमांचित था अंग
भक्ति की उठने लगी तरंग–

जगा श्रद्धा का भाव अनूप
दौड़ कर गिरे चरण में भूप
कहा विनती के स्वर में 'नाथ!
भला कैसी विचित्र यह बात–

धर्म कर्मों के प्रति उन्मेष
हृदय में श्रद्धाभाव विशेष

किन्तु व्रत हुआ न कोई प्राप्त
मान लूं क्यों न नियति का शाप–

हृदय में यही चिन्तना एक
यही क्या होगा जीवन लेख
धर्म का उड़ा न पाये केतु
पाप का रहे बाँधते सेतु–

कहा तब इन्द्रभूति ने 'भूप!
बहुत गहरा है भव का कूप
छोड़ तुम सके नहीं मिथ्यात्व
आह हिंसा के पाँचों पाप–

विषय में रखा स्वर्ग को लिप्त
क्यो न होता विवेक विक्षिप्त
बौद्ध-गुरु प्रति श्रद्धालु अगाध
धर्म तुम सके न कोई साध–

किया तुमने नरकायुक बंध
देख कर भी आँखें की बन्द
असंभव हैं व्रत नियम विधान
धर्म का कैसे हो अभियान–

किन्तु देवायु कि जिनके पास
जीव वह क्यों रह सके निराश
उन्हें व्रत दो प्रकार अभिप्रेत
बसाते वही धर्म का क्षेत्र–

मोक्ष का भव्य राज्य प्रासाद
दिव्य वैभव से पूर्ण अगाध
पहुँचने के मारग हैं दस
प्रथम सोपान बनी सम्यक्त्व–

कि आज्ञा मार्ग और उपदेश
जीव विस्तर सुकर्म संक्षेप
और अवगाढ़ परम अवगाढ़
दसों का है सम्यक्त्व सु-धार–

कि होता जब सर्वज्ञादेश
सुरुचि होती उत्पन्न विशेष
द्रव्य षट् में लग जाता मन
वही सम्यक्त्व श्रेष्ठ उत्तम–

अपरिग्रह पूर्ण वस्त्र हीना
मात्र अंजलि में जल पीना
वही तो मुनिवर श्रेष्ठ वरेण्य
नहीं छू पाता उनको दैन्य–

यही मुनि रूप मोक्ष का मार्ग
जलाता चलता तप की आग
उसे हम कहें मार्ग दर्शन
धर्म में करता उन्मुख मन–

तत्त्व का यह भी एक रहस्य
भेद कर लोगे मन का मत्स्य
कर्म का तुम्हीं करोगे बँध
युगों तक फैले सुयश सुगंध–

किन्तु वह पूर्व कर्म का दोष
अभी तक छोड़ न पाया रोष
नर्क को पाओगे कुछ काल
करेंगे तुमको पीड़ित व्याल–

कर्म फल का होगा जब भोग
कि होगा आयुनाश का योग
काल उत्सर्पिणि का प्रारम्भ
तुम्हारा होगा भव में जन्म–

और तुम महापद्म गुणधर
यशस्वी पहिले तीर्थंकर
धर्म का तुम से हो उत्थान
विश्व का होगा मंगल गान–

नृपति तुम बनो पूर्ण निर्भय
तुम्हारी होगी निश्चय जय

तुम्हारे गूँजेंगे जय गान
धरा को होगा हर्ष महान–

सुनी नृप ने आगे की बात
हुआ मन में भारी परिताप
यही क्या जीवन का निष्कर्ष
नर्क से करना है संघर्ष–

पूर्व का आह भोगना भोग
बाँटता है सुख-दुख यह लोक
नियति है देती हमें उदार
करें फिर हम सहर्ष स्वीकार–

किया गणधर को पुनः प्रणाम
विनत स्वर कहा ज्ञान के धाम
नगर है मेरा पुण्य प्रसिद्ध
भक्त जन ज्ञानी ध्यानी सिद्ध–

तनिक यह भी बतला दें नाथ
नहीं क्या और चलेंगे साथ
मुझी पर मात्र नियति का कोप
राज्य दे रहा नर्क को सौंप–

राज्य में अन्य नागरिक कौन
करेंगे साथ साथ सह गौन
मिटा दें कहकर कुछ सन्ताप
पाप तो रहे अन्ततः पाप–

कहा गणधर गौतम ने भूप !
प्रश्न है उत्तम और अनूप
सुनें इसका उत्तर भी आप
दूर होगा मन का परिताप–

नगर में रहता है चाण्डाल
काल शौकरिक नाम ज्यों काल
नीच कुल में है वह उत्पन्न
पाप से बाँध आयु का बंध–

स्मरण सात भवों का पूर्व
उसे हो आया सहज अपूर्व
तर्क मन में जागा है एक
ठोकता है कुतर्क की मेख–

जीव का पाप पुण्य सम्बन्ध
पुण्य के बिना भला क्या जन्म
पाप के साथ पुण्य सहचर
जीव चलता दोनों पग धर–

इसलिए पाप पुण्य का सार
मूढ़ करते हैं व्यर्थ विचार
विषय सुख को ही जीवन मान
क्यों न फिर करें स्वयं कल्याण–

बनाकर यह जीवन का ध्येय
मानता मांसादिक अभिप्रेय
किया करता हिंसा का काम
चला पथ में निर्भय अभिराम–

भुगतना भी तो है परिणाम
पाप हो या कि पुण्य सुख धाम
पाप का पाना है दुष्फल
पुण्य की सुख सरिता कल-कल–

काल ले चले पकड़ कर खींच
नीच वह लेगा आँखें मींच
सातवाँ नरक भोगना भोग
यही है उसका निश्चित योग–

एक द्विज कन्या भी है अन्य
नाम शुभ लेकिन विषयाजन्य
इन्द्रियों के वश में वह वाम
लम्पटा विषयासक्त सकाम–

परम दुःशीला भ्रष्ट विवेक
देखकर भी न सके गुण देख

कोप की मन में तामस वृत्ति
पाप की करती है उत्पत्ति–

और यह शुभा मृत्यु पश्चात
नरक का सहन करेगी घात
नर्क तमप्रभा छठा दुखभाग
मिलेगा उसे डसेंगे नाग–

यही होना है शुभ का अन्त
पाप का बाँधा जिसने बंध
भोगने पड़ते हैं परिणाम
पापके दुखद पुण्य सुखधाम–

कहा श्रेणिक ने: विप्र उदार
पुत्र यह मेरा अभयकुमार
कहें कुछ पूर्व जन्म का वृत्त
रहा इसका कैसा क्या कृत्य–

कहें गणधर गणपति भगवान
अभय के जीवन का आख्यान
आप तो हैं सर्वज्ञ त्रिकाल
कहें कुछ पूर्व जन्म का हाल–

बढ़ी जिज्ञासा मन की और
झाँकने लगा हृदय का चोर
अनुग्रह होगा नाथ महान
लगा दें तट पर जीवन यान–

कहा गणपति ने नृपति सुजान
अभय का सुने पूर्व वृत्तान्त
पूर्व में भी यह भारतवर्ष
परम धन वैभव का उत्कर्ष–

पूर्व में द्विज का एक कुमार
नाम सुन्दर तन से सुकुमार
किन्तु ब्राह्मण होकर भी नीच
छानता रहा सदा ही कीच–

अध्ययन और मनन अभ्यास
किया करता था जो सायास
किन्तु रखता था मिथ्या दृष्टि
पाप की करता रहता सृष्टि–

धर्म का नहीं वास्तविक ज्ञान
किन्तु उथले पन का अभिमान
इस तरह चला आयु का क्रम
किन्तु मिट सका न मन का भ्रम–

एक दिन अर्हदास के साथ
खिला जब भू पर स्वर्ण प्रभात
चला जा रहा निकट के गाँव
सघन पीपल तरु मग में छांव–

वहीं था कुछ पत्थर का ढेर
देख कर रुका वहाँ कुछ देर
लगा श्रद्धायुत करने ध्यान
देवता पाषाणों को मान–

हँस उठा अर्हदास यह देख
मूढ़ता का साकार कु - लेख
अधिक क्या इससे हो अज्ञान
मानते पत्थर को भगवान

एक क्षण हुआ हृदय विक्षुब्ध
पत्थरों में इतना मन मुग्ध
नष्ट है इतना हाय विवेक
पत्थरों का करता अभिषेक–

धर्म का कितना उथला ज्ञान
नहीं क्या हो पाई पहिचान
मूढ़ता ने तोड़े तट बन्ध
हुआ मानव इतना मतिमन्द–

मूढ़ता हो कैसे यह दूर
भला कैसे समझे यह मूढ़

पढ़ाना होगा उत्तम पाठ
सोच पीपल पर मारी लात–

टूट कर लता गिरी भू पर
हुई ध्वनि हलकी चरर चरर–
लता थी वहीं एक कपरोस
पतित होकर भी थी निर्दोष–

इसी को नतशिर किया प्रणाम
कहा: 'यह है मेरी भगवान
एक क्षण को ली आंखें मींच
रहा वह मानों जल से सींच–

भेद कुछ समझा नहीं कुमार
क्रोध में ली वह लता उखाड़
लगी चलने खुजली सर्वांग
हो गये व्याकुल उसके प्राण–

कहा फिर अर्हदास से : 'मित्र!
देव वास्तव में बहुत विचित्र
देव यह नहीं मुझे सन्देह
चढ़ा लूँ मैं मस्तक पर खेह–

कि द्विज का करता-सा उपहास
विहँस कर बोला अर्हदास
मित्र छोड़ो अपना अज्ञान
भला हो कैसे तरु भगवान–

वृक्ष को देव समझना भूल
धूल तो सदा रहेगी धूल
ईश पर श्रद्धा रखो प्रगाढ़
नहीं कुछ सकते वृक्ष बिगाड़–

एक ही तो है श्री अर्हन्त
कि जो सारे अगजग भगवन्त
भव्य जीवों को देते मोक्ष
भोग भी देते वही परोक्ष–

करें सचराचर उन्हें प्रणाम
वही हैं ज्ञान धर्म के धाम
एक क्षण समझा विप्रकुमार
तरँगायित थे विविध विचार–

मूढ़ता हुई अचानक दूर
ज्ञान का था प्रकाश भरपूर
रहा वह और न अब मतिमन्द
ज्योति पा जाता जैसे अन्ध–

चले फिर दोनों मित्र सुजान
किया उस थल से सहज प्रयाण
और चलते चलते कुछ बाट
बाट में आया गंगा घाट–

विप्र कुछ रुक कर बोला मित्र
नीर गंगा का परम पवित्र
और कर दर्शन मज्जन पान
बैठ कर किया नमन नत ध्यान–

पुनः वह अर्हद्दास सहास
मित्र को देने ज्ञान प्रकाश
कहा: लो पाओ कुछ भोजन
रहे क्यों व्यर्थ बुभुक्षित हम–

पात्र में जल भर परम पवित्र
और कुछ भोजन भी उच्छृष्ट
कहा : लो आओ करो ग्रहण
भूख का कर लो तनिक शमन–

क्रोध से हुआ ब्राह्मण लाल
'आगया पापी तेरा काल
अरे मैं ब्राह्मणपुत्र विशिष्ट
भला क्या खाऊँगा उच्छृष्ट–

मित्र तुम छोड़ो अपना रोष
नहीं कुछ मानो इसमें दोष

तुम्हें यह भोजन तो अग्राह्य
किन्तु जल पावन समझा हाय! –

स्नान से होती तन की शुद्धि
मनुज की है कैसी जड़ बुद्धि
अपावन आकर मिलता नीर
पिया करते जल शूकर तीर–

मूढ़ता का कैसा अतिक्रम
छोड़ना होगा कोरा भ्रम
तीर्थ जो समझ रहे हम जल
मूढ़ता को मिलता है बल–

मनुज का तन तो है अपवित्र
भला फिर कैसे पावन मित्र
मात्र यह जीव सदा निर्मल
और पावन ज्यों गंगा जल–

नीर को पावन लेते मान
क्यों न ले वही मत्स्य को जान
चलो फिर आओ करें नमन
मोक्ष का देंगे यही गमन–

मछलियों को क्यों देते मार
मक्र का करते व्यर्थ शिकार
क्यों नहीं इन पर करुणा दृष्टि
जीव यह भी तो ईश्वर सृष्टि

एक ही हैं केवल अर्हन्त
पाप का कर सकते जो अन्त
जीव का कर सकते कल्याण
मोक्ष-स्वर्गादिक करें प्रदान–

उन्हीं का वचनामृत भरपूर
करे सब पाप रूप मल दूर
शुद्धि देने में वही समर्थ
और मिथ्यात्व दोष सब व्यर्थ–"

कह चुका जब यह अर्हद्दास
हुआ द्विज मन में ज्ञान प्रकाश
हुआ अज्ञान तिमिर सब दूर
ज्योति लेकर उग आया सूर्य–

गया सारा मिथ्यामद भूल
डूबते ने पाया ज्यों कूल
हुआ मैं उपकृत हे प्रिय मीत
हो गई तेरी निश्चित जीत–

होगया अर्हद्दास विनम्र
'कहा: यह तो था मेरा धर्म
पाप में यदि हो कोई लिप्त
और हम देखें वन विक्षिप्त–

पाप का भोगें हम भी भाग
डसेगा प्रायश्चित का नाग
किया जो भी था मानव धर्म
मानता उचित हुआ है कर्म–

बढ़े आगे दोनों के पैर
साँझ घिरने में लगी न देर
सघन वन पड़ा मार्ग में एक
बनी पगडंडी धुँधली रेख–

सघन-वन-वीहड़ पथ सुनसान
मित्र दोनों पथ से अन-जान
और अब बढ़े कहाँ किस ओर
साँझ के तम में डूबे छोर–

भटकने लगे छोड़कर लीक
अन्ध में रहा न कुछ भी दीख
भयानक वन विस्तृत विकराल
सामने खड़ा दीखता काल–

मिला जब कहीं नहीं जल-अन्न
हो गये दोनों मित्र विषण्ण

प्राण की रही न आशा शेष
किया धारण सन्यासी वेश–

जानकर नाशवान यह तन
त्याग दी ममता लगान क्षण
उदर के भरने को आहार
दीखने लगा व्यर्थ व्यापार–

शेष कुछ रहा न और समक्ष
मात्र रह गया मोक्ष का लक्ष्य
हृदय में भरा धैर्य विश्वास
कि तन से सहे भूख औ प्यास–

छोड़कर अग-जग की सब व्याधि
बन गई उनकी पुण्य समाधि
कि तन को छोड़ चल पड़े प्राण
मोक्ष में सुनने को जय गान–

मिल गई पँच भूत में देह
धरा से मिली धरा की खेह
ले चले स्वर्ग लिवा कर दूत
धरा के दोनों पावन पूत–

आचरण अन्तिम पुण्य प्रभाव
स्वर्ग तट पर जा पहुँची नाव
स्वर्ग सुख रहे भोगते सन्त
न जाने कितने युग पर्यन्त–

दिव्य वैभव को भोग अनन्त
देवता बन कर सुर के वन्द्य
अन्त में उदय हुए जब पुण्य
पुण्य की महिमा सदा अनन्य–

और महिमा का प्रबल प्रभाव
जीव का होता भू-पर स्राव
उसी सुन्दर ब्राह्मण का जीव
धरा पर पाने पुण्य अतीव–

तुम्हारे यहाँ हुआ उत्पन्न
तुम्हारा पुत्र बना सम्पन्न
प्रबल तप से कर्मों का नाश
इसी से होगा पुण्य विकास–

मोक्ष को सहज करेगा प्राप्त
सुयश होगा अगजग में व्याप्त
यशस्वी होगा पुत्र महान
गगन में गूँजेगा जय गान–

इतना कह वाणी
मौन हुई गम्भीरा
क्षण रुक लेता विश्राम
कि मनुज शरीरा–

गणधर ने कह कर
काल सभा को जीता
बन गई यही वाणी
युग-युग की गीता–

थी सभा मौन भावन
हिलोर उठती थी
महिमा अनन्त भक्ति
की वहाँ लुटती थी–

नृप श्रेणिक भी मन से
विमुग्ध मुद पाते
अब विदा माँग प्रासाद
ओर वह जाते–

उठ रही चरण की धूलि
धरा से धीरे
लहरें लहराती चलीं
नदी के तीरे–

लहरों के पीछे चली
हवा भी दौड़ी
कोकिल ने मीठी
तान रसीली छोड़ी–

□

आठवाँ सर्ग

आठवाँ सर्ग

वन्दना

मैंने मग में थे रखे पैर
डरते डरते–
अन्तिम पड़ाव आगया बात
करते करते–
कुछ और तनिक लो पकड़ हाथ
मंजिल आये–
जब चली लेखनी सुयश गीत
गाती जाये–
गीतों के वन्दनवार सजाऊँगा
जा कर–
तुमको चलना है नाथ समझ
निर्धन का घर–
तुम चले चलो कुछ दूर और
अन्तर्यामी
मैं थक कर कहीं न रुक जाऊँ
पथ में कामी–
जो लिया हाथ में कार्य उसे
करना ही है–
जब बढ़े-पन्थ की ओर पैर
धरना ही है–

लहरों की कश्ती चीर चले
आगे आगे
छन्दों में नूतन गीत और
जागे जागे–

तो चलो साथ में और बनो
पथ के साथी
दोनों ही मंजिल पहुँच-
जलायेंगे बाती–

तुम बैठ एक क्षण श्रम-जब
दूर भगाओगे
अपनी ही गाथा पादपद्म
में पाओगे–

यों बिदा माँग कर प्रभु से
चरणों में शीश झुकाकर
प्रासाद भवन को लौटे
हर्षित हो मन में नृप-वर–

चल पड़े नृपति के पीछे
वे पुत्र-पुत्रियाँ दासी
उनके पीछे चलते थे
कुछ श्रेष्ठि-वर्ग पुरवासी–

पग ठीक नहीं पड़ पाते
खोये खोये से लगते
ठग लिया किसी ने उनको
या रहे स्वयं को ठगते–

नृप के मन में रह-रहकर
झंझा झकोर उठती थी

चिन्तन की प्रबल तरंगें
उठती गिरती या मिटतीं–

प्रासाद सहज आ पहुंचे
कब राह हो गई पूरी
नृप जान न पाये कैसे
आ गई सरक कर दूरी–

सहसा ही नृप ने दृढ़ हो
अपने मन को समझाया
कर्तव्य पन्थ को लौटे
छोड़ा चिन्तन का साया–

जा व्यस्त हुए श्रेणिक भी
निज राज-काज में भारी
कर रही नियति भी अपनी
कुछ दूर बैठ तैयारी–

लगती थी विपुलाचल पर
प्रभु सभा नित्य सरसाती
वह दिव्य ज्ञान की अपनी
नित जला रहे थे बाती–

वह उषा सुन्दरी नित ही
आती थी नीलाम्बर पर
हलकी बासन्ती आभा
देती उड़ेल निज घट भर–

नित ही होता अरुणोदय
मधुमय प्रभात था खिलता
पुष्पों से हाथ मिलाने
शीतल मलयज आ मिलता–

भंवरे गुन-गुन कर गाते
प्रभु की प्रशस्ति गुण गाथा
कोकिल का स्वर मिलने से
कैसे पीछे रह पाता–

धरती पर उतर-उतर कर
किरणें भी राग रचाती
बिखरे मुक्ता दल लेकर
प्रकृति का साज सजाती–

अमराई के मधुवन में
खिल उठी और मतवाली
लालिमा उतर धरती पर
भरती सुहाग की लाली–

यों सूर्योदय होता था
घिरती थी संझा श्यामल
नित रात उतर धरती पर
आंजती धरा के काजल–

आंचल समेट कर अपना
जब रात लौट कर जाती
वे तरल नयन मुक्ता कन
जाती जाती बिथराती–

सूरज समेट लेता था
गोदी में रोज सबेरे
वर्षा आती घिर जाते
नभ में घन सहज घनेरे–

रे धूप-छाँह की होती
रहती थी आँख मिचौली
शृंगार धरा का करती
मधु ऋतु बन कर हमजोली–

गीतों की बाँसुरिया पर
उठती रागनियाँ प्यारी
प्रियतम को बुला रही ज्यों
छन्दों की राजकुमारी–

यों काल चक्र का चलता
रहता अबाध आवर्तन

ऋतुएं आती जाती थीं
दिखला कर अपना नर्तन

प्रभु के उपदेशामृत का
नित बहता रहता निर्झर
शिष्यों के द्वारा होता
रहता था पान निरन्तर–

जब सभा बीच आ प्रभुवर
आसनासीन हो जाते
निज ध्यान मयी मुद्रा में
जब क्षण भर को खो जाते–

मुख दिव्य ज्योति के आगे
शत शत अनंग न्यौछावर
देखते खड़े रह जाते
क्षण भर जंगम स्थावर–

छल छल कर वीर्य छलकता
महिमा मण्डित था आनन
जिसने त्रिकाल को जीता
उनका करुणा प्लावित मन–

गौतम गणधर से प्रभुवर
कर कृपा एक दिन बोले
ज्यों मेघ मन्द्र से कोई
उठ निकल रागिनी डोले–

यह स्थान छोड़ना होगा
गणधर हमको अब अपना
कुछ और बढ़ चलें आगे
अब और नहीं रह सकना–

हमको विहार करना है
जब धर्म कर्म परिव्राजक
हम रहें घूमते चलते
बन जन के मंगल साजक–

है यही तपस्या अपनी
धरती को स्वर्ग बनायें
हम जग हिताय धरती पर
वह स्वर्ग खींच कर लायें–

अब कहीं नहीं रुकना है
बढ़ चलना होगा आगे
मन में अपार भव जन की
कल्याण कामना जागे–

गणधर ने नत मस्तक हो
आदेश सहज स्वीकारा
क्यों बहे न और धरा पर
प्रभु की करुणा रस धारा–

प्रस्थान हो गया प्रभु का
चल पड़े शिष्यगण आगे
धरती के सोये सपने
बस आज अचानक जागे–

आगे आगे चलता था
मलयज बुहारता पथ में
प्रभु महावीर थे पीछे
आसीन ज्ञान के रथ में–

शत भक्त कंठ से उठता
प्रभु महावीर जयकारा
अनुगुंजित दिशा दिशा को
करती निनाद स्वर धारा–

ऐसा लगता धरती पर
उमड़ा अपार जब सागर
चलने वाले को कैसा
विश्राम कहीं भी क्षण भर–

जिस गाँव चरण पड़ जाते
वह गाँव धन्य हो जाता

आगे आगे चलती थी
वह विमल सुयश की गाथा–

जिस क्षण प्रभु का हो जाता
उपदेश जहाँ जिस थल पर
वह धरा धन्य हो जाती
उन चरण युगल को छूकर–

प्रभु के उपदेशामृत को
पीते थे सब नर नारी
सब पाप नाश हो जाते
सौधर्म स्वर्ग अधिकारी–

वह जाति भेद के नाशक
समता का पाठ पढ़ाते
बढ़ चले पन्थ में आगे
दुखियों को गले लगाते–

वह करुणाकर करुणा का
लहराता मन में सागर
वह प्यासे जन को बनते
ठंडे पानी की गागर–

मानव होकर मानव को
क्यों ऊँच नींच कर माने
क्या नहीं धर्म पर अपने
हम कालिख चले लगाने–

कहते थे खुले हृदय से
सब सृष्टि एक है भाई
सबका है एक नियामक
यह देह सभी ने पाई–

ये नहीं नीच या छोटे
इनमें स्वरूप प्रभु पाओ
सब नीच कर्म से बनते
तुम इन्हें नहीं ठुकराओ–

है प्रबल कर्म का अरिदल
रे नष्ट इसे ही करना
छाया अज्ञान तिमिर है
पथ ज्ञान ज्योति से भरना–

पथ में जाने अनजाने
जब लोग कहीं मिल जाते
प्रभु पावन दर्शन पाकर
मन कमल सहज खिल जाते–

चरणों में गिर गिर पड़ते
बोला करते जयकारा
नयनों से अविरल झरती
पावनी भक्ति रस धारा–

चलते चलते जब प्रभुवर
जा पहुँचे किसी नगर में
हलचल सी मच जाती थी
उस पुर के डगर-डगर में–

आबाल वृद्ध नर नारी
दर्शन हित दौड़ लगाते
मेला-सा लग जाता था
आते थे कोई जाते–

पुरजन में फिर चर्चा की
यह बात मात्र बन जाती
प्रभु स्वयं जगाने आये
लो आज ज्ञान की बाती–

जब सभा बैठ जाती थी
प्रभुवर की पुर के बाहर
लगता अंबर में बैठे
तारक दल संग सुधाकर–

जब कोटि कोटि जन मस्तक
चरणों में आ झुक जाते

अम्बर से हर्षित सुरगण
मन्दार पुष्प बरसाते–

वह नगर धन्य हो जाता
वह धरा धन्य हो जाती
उपकृत होते पुरवासी
घर-घर दीवाली आती–

आता वसन्त उपवन में
हर कली कली मुसकाती
लेने सुगन्ध फूलों से
लो हवा दौड़कर आती–

सरिता में उठी तरंगें
उठ चली कूल से मिलने
उतरा प्रभात धरती पर
पग गति भी लगी मचलने–

लो गूँथ किरण की माला
आया सूरज बन माली
पहिले भर माँग धरा की
फिर माल कंठ में डाली–

भंवरों ने गीत अलापा
पिक ने मधु तान लगाई
सिर हिला-हिला तरु दल ने
चरणों में डाल झुकाई–

उपदेश हेतु जन वाणी
जब प्रभु की मुखरित होती
ऐसा प्रतीत होता था
झर रहे ज्ञान के मोती–

पापों को जला रहे थे
वह ज्ञान ताप से अपने
होते थे आज धरा पर
साकार मोक्ष के सपने–

प्रज्ज्वलित हुई घर-घर में
तप और त्याग की ज्वाला
सब ने मिल सत्य अहिंसा
का दीपक घर में बाला–

अब ब्रह्मचर्य की महिमा
का सार समझ में आया
सब बने अपरिग्रह वादी
अस्तेय गान नव गाया–

इस तरह काल के रथ का
पहिया घूमा गति गामी
युग ने भी करवट बदली
गति रोक रुक गये स्वामी–

रमणीक सघन तरु दल से
पावन पावापुर थल था
देखती रह गई आँखें
मानो निर्बल का बल था–

था एक विशाल सरोवर
जल भरा हुआ था निर्मल
जल पर विकसित थे अगणित
वे रक्त कमल दल के दल–

कैसी विशाल थी शोभा
आकर्षक और मनोहर
वर्तुलाकार मृदु लहरें
रह रह उठती थीं जल पर–

किलने कपोत पारावत
जल केकी क्रीड़ा करते
बक खड़े ध्यान मग्ना हो
भव की श्रम पीड़ा हरते–

मछलियाँ उछल कर गिरतीं
गिर जल में दौड़ लगातीं

या लुका छिपी का जल में
कुछ अनुपम खेल रचाती–

जल में प्रतिबिम्बित होती
मानव की मंजुल काया
रह गया वही जीवन भर
जो कहीं एक क्षण आया–

थी दूर-दूर तक फैली
खेतों की रम्य कतारें
हर रोज सबेरे सूरज
किरणों से रूप सँवारे–

खेतों की फसल सुनहली
बिखरा हो जैसे सोना
आ निकट दूब को चरता
कोई स्वर्णिम मृग छौना–

ऊँचे नभ छूते तरु दल
करते नभ से दो बातें
धर पैर उन्हीं के सिर पर
उतरा करती थी रातें–

तारे टिम टिम कर देते
रातों को सहज बिदाई
धरती को गीत सुनाने
चाँदनी उतर कर आई–

सूर्योदय के होते ही
मुख कमल खोलते अपना
जो अभी नींद से जागे
कुछ देख रहे थे सपना–

या खोला रवि के सम्मुख
प्रिय छन्दों का अवगुण्ठन
भँवरों ने आकर छेड़ा
मधुमय गीतों का गुनगुन–

लहरों का दोल बनाकर
मलयज ने झूला झूला
क्षणभर भी जिसने देखा
वह देश काल को भूला–

पावापुर में प्रकृति का
ऐसा विराट था वैभव
वह दृश्य बदलते रहते
उस पुण्य थली में अभिनव–

प्रभु ने थल को जब देखा
वह मुग्ध कर गया मन को
मन बोल गया कानों में
स्वीकार करो अर्पण को–

रुक जाने की इच्छा से
प्रभु ने गणधर को देखा
गणधर ने तत्क्षण खींची
आज्ञा पालन की रेखा–

आदेश जहाँ हो प्रभु का
हो गया उसी क्षण पालन
प्रभु के जय जयकारों से
गूँजे धरती गगनांगन–

हो गया धन्य पावापुर
औ भाग धरा के जाग
कुछ निकट ग्राम के वासी
आये स्वागत को आगे–

चरणों में नत-मस्तक थे
श्रद्धा पूरित नर-नारी
'हम धन्य होगये' कहकर
विधिवत आरती उतारी–

कर अष्ट द्रव्य से प्रभु के
चरणों का वन्दन पूजन

प्रार्थना गीत के स्वर में
था श्रद्धामय आराधन–

आसनासीन थे प्रभुवर
था दीप्तिमान मुख मंडल
थे मौन नयन उन्मीलित
तप और ज्ञान के सम्बल–

फिर नित्य सभा लगती थी
नीले वितान के नीचे
आसनासीन योगीश्वर
रहते थे आँखें मींचे–

गणधर गणपति सेवा में
रहते थे सदा उपस्थित
औ शेष सभाजन करते
प्राणों की श्रद्धा अर्पित–

बैठे बैठे ही मुख से
जब मुखरित होती वाणी
वह सभा मौन सुनती थी
लिखता इतिहास कहानी–

आते थे वृद्ध सभा में
आते थे सब नर-नारी
वह धनकुबेर आते थे
भिक्षुक हो या परिवारी–

रे जात-पांत को प्रश्रय
कण मात्र नहीं मिल पाता
पाता समान आसन ही
इस सभा बीच जो आता–

उपदेश यही था प्रभु का
मानव मानव ही भाई
मानव के बीच घृणा की
क्यों व्यर्थ खोदते खाई–

है वह ही सफल अहिंसा
हो व्याप्त व्यक्ति जीवन में
हम ही समाज निर्माता
हम ही हैं राष्ट्र भुवन में–

हों सत्य अचौर्य प्रबलतम
इन्द्रिय संयम हो दृढ़तर
हो युक्त अपरिग्रह से फिर
जब बहे अहिंसा निर्झर–

सब पाप स्वयं बह जाते
मानसिक संतुलन होता
उत्कर्ष स्वयं उठता है
पुरुषार्थ बीज है बोता–

हर एक दृष्टि को हम सब
सम्पूर्ण सत्य क्यों मानें
जो दृष्टिकोण औरों का
उससे मिल चलना जानें–

इससे ही सुख है मिलता
दुख स्वयं नष्ट हो जाता
मन का भ्रम मिट जाता है
सुख शान्ति गीत है गाता–

सम्पत्ति भूमि पर बिखरी
या है विशाल वैभव धन
क्या सच्चा सुख है पाता
क्षण भर भी बैठ कहीं मन–

वह मंत्र अपरिग्रह जिस क्षण
जिसने भी है स्वीकारा
लहरायेगी जीवन में
सुख और शान्ति की धारा–

पनपेंगे सत्य अहिंसा
जिस क्षण मानव के मन में

विस्तारवाद लिप्सा की
हों नष्ट आंधियाँ क्षण में–

हो विश्व शान्ति का नारा
हो विश्व धर्म सम्मेलन
गूंजे हर दिशा-दिशा में
खिल उठे धरा का कन-कन–

रह जाये दुखी न कोई
सुख की फसलें लहरायें
बंधुत्व विश्व के प्राणी
नव गीत सभी मिल गायें–

समभाव भरो जन-जन में
जन-मन को शुद्ध बनाओ
तप और त्याग के जाकर
घर-घर में दीप जलाओ–

जब रात्रि और दिवसों का
धरती पर होता अतिक्रम
तप पात वृक्ष के पीले
होकर गिर जाते गौतम–

यह जीव पूर्ण करता जब
भव की आयु - मर्यादा
तन त्याग कूच कर देता
तब रोक न पाती बाधा–

ज्यों अग्र भाग पर कुश के
यह ओस बिन्दु है क्षण भर
क्षण भर का मानव जीवन
फिर क्यों प्रमाद हो विषधर–

फिर फैल धरा पर जाता
सँझा का काला आँचल
आँजती रात धरती के
नयनों में हलका काजल–

विश्राम सहज ले लेती
वह दिव्य वीर की वाणी
लेकिन वाणी की धारा
बहती रहती कल्याणी–

इस तरह साँझ घिरती थी
आती थी रात सलौनी
खेलता धरा से चन्दा
लुक छिपकर आँख मिचौनी–

नीड़ों में अपना कलरव
कर बन्द विहग सो जाते
अम्बर में तारक लेकर
चन्दा नित रास रचाते–

गोदी में श्याम निशा की
थक कर दुनियां सो जाती
रजनी भी थपकी देकर
लोरी के गीत सुनाती–

लेकिन प्रकृति का कोई
क्या काम बन्द रह पाता
अदृश्य रूप से कोई
मायावी जाल बिछाता–

यों काल रथी का पहिया
अनवरत घूमता रहता
जैसे सरिता कल-कल जल
तेजी से रहता बहता–

जो हो त्रिकाल का दर्शी
औ विजय काल पर पाई
जीवन की अन्तिम संझा
चुपचाप सरकती आई–

जो लक्ष्य बना जीवन का
हो चुका सभी था पूरा

रह गया न कोई बाकी
था कोई कार्य अधूरा–

गणधर को पास बुलाकर
प्रभु सहज भाव से बोले
मन के रहस्य के बन्धन
यों धीरे-धीरे खोले–

आ गई साँझ जीवन की
मेरे द्वारे पर गणधर
मुझ को ले जाने आई
वह मेरा हाथ पकड़कर–

याचक द्वारे पर आकर
कैसे खाली जा पाये
इच्छानुसार पायेगा
जो भी चाहे ले जाये–

आई है इच्छा लेकर
मैं क्यों न साथ में जाऊँ
जब मुझे गीत गाना ही
मैं क्यों न मौत के गाऊँ–

यह मौत नहीं कुछ केवल
हम बदलें वसन पुराना
या एक देश से हमको
दूसरे देश है जाना–

जब काल साथ जाने की
आ गई हमारी पारी
तो हमने भी कर ली है
अब जाने की तैयारी"–

रो उठे फफक कर गौतम
सुन प्रभु की अन्तिम वाणी
क्या सुन न सकेंगे आगे
यह जन वाणी कल्याणी–

गौतम के युगल नयन से
झर रही अश्रु धारायें
घिरने वाली थी भू पर
अब काली काल घटायें–

धरती माता की होगी
क्या आज न गोदी सूनी
क्या और तपस्या की वह
कुछ रम न सकेगी धूनी–

कार्तिक कृष्णा की मावस
आई लेकर दिन काला
उतरा उदास मुख लेकर
पीला सा प्रात उजाला–

रुक गई दिव्य वाणी थी
सब अंग हो गये निष्क्रिय
लेकिन प्रतिमा का अब भी
वह योग चल रहा सक्रिय–

फिर शुक्ल ध्यान का लेकर
प्रभु ने वह दृढ़तर सँबल
कर नष्ट कर्म अरि दल को
रह गये ऊर्ध्व गति केवल–

जब पूर्ण हो गये निर्मल
खुल गया मोक्ष का द्वारा
चल पड़ा हँस वह उड़ कर
तोड़ी शरीर का कारा–

रह गई शेष धरती पर
धरती की केवल माटी
जग को आलोकित करती
बुझ गई धरा की बाती–

धरती माता ने देखा
ले चला लाल जब कोई

वह लगी पीटने छाती
वह आज बिलख कर रोई–

सूरज ने छिपा लिया मुख
बादल को ओट बना कर
रो उठे दिशा वन उपवन
रो उठा विकल हो अम्बर–

होकर अनाथ विकला–सी
वह शिष्य मण्डली रोई
दुख के अपार सागर में
वह मूढ़ बनी–सी खोई–

जो नाथ अनाथों के थे
दाता निर्बल के बल थे
बाँटा करते थे करुणा
जो पथ में चलते-चलते–

देखा पीड़ित को पथ में
पीड़ित हो हृदय लगाया
करुणाकर का करुणा से
वह हृदय सहज भर आया–

अब कहाँ गये करुणाकर
निर्धन के दाता दानी
शीतलच्छाय से, जाकर
छिप गये कहाँ वह ज्ञानी–

था वज्रपात धरती पर
धरती का आसन डोला
कह सके व्यथा जा किससे
कुछ गया न उससे बोला–

बरसे नयनों से आँसू
हो गया अचानक कम्पन
सब दिशा दिशायें डोलीं
था शोकपूर्ण जन जीवन–

जन-जन अनाथ बन रोये
लिखते थे अश्रु कहानी
तप की आगी ठंडी थी
उठ गया ज्ञान का दानी–

निर्वाण हो गया प्रभु का
सुरराज इन्द्र ने देखा
अपने अपने वाहन में
आ गये बनाते रेखा–

अन्तिम कल्याणक प्रभु का
सम्पन्न और होना था
प्रत्यक्ष आज धरती पर
था देव मनुज का नाता–

आ गये देवगण सारे
लो पावापुर उपवन में
गति और नृत्य-उत्सव के
पावनतम आयोजन में–

जैसे कर्पूर हवा में
कण कण कर क्षय हो जाता
माटी का तन माटी में
क्रमशः जा रहा समाता–

नख और केश अब प्रभु के
अवशेष रह गये भू पर
लेकर सुरेन्द्र ने उनको
तन रचा सहज निश्चय कर–

शिविका में रखा सजाया
कर भक्ति भाव से पूजन
जल अष्ट द्रव्य को धर कर
कर्पूर अगरु औ चन्दन–

फिर अग्नि देव ने बढ़कर
श्रद्धानत शीश झुकाया

लो अग्नि तेज उठ प्रभु के
शव में जा सहज समाया–

क्षण भर में लगी दहकने
शव में धू-धू कर ज्वाला
ज्वाला ने शव क्षण भर में
लो भस्मभूत कर डाला–

भस्मीकृत था वह सरवर
उठती सुगन्ध रह रह कर
उठता सुर कण्ठों से था
जय महावीर तीर्थंकर'–

सुरराज इन्द्र ने पहले
मस्तक पर भस्म चढ़ाई
वन्दना भस्म की होती
यज्ञ ध्वजा और लहराई–

झुक गये शीश सुरगण के
सहसा वन्दन हित भू पर
पावन करता धरती को
बह उठा नयन का निर्झर–

क्षिति पहुँच चुकी थी क्षिति में
जल में विलीन अब जल था
पावक पावक में पहुँचा
नभ में नभ मिला प्रबल था–

रहता समीर क्यों पीछे
जाकर समीर में डोला
'जय महावीर तीर्थंकर
कण कण धरती का बोला–

वह जला चुके थे ऐसी
तप और त्याग की बाती
आँधी तूफानों में भी
जो कभी नहीं बुझ पाती–

युग आयेंगे जायेंगे
होगा संसृति परिवर्तन
इस महाकाल का होगा
धरती पर भीषण नर्तन–

ऐसी मशाल वह जिसमें
है धर्म क्रान्ति की ज्वाला
रे रूढ़िवाद तम धोकर
फैलेगा ज्ञान उजाला–

प्रभु वर का परिनिर्वाण हुआ
गणधर को केवल ज्ञान हुआ
अब गंध कुटी की थी रचना
फैलाने ज्ञानालोक घना–

लेकर शिष्यों को साथ चले
करुणा समता के दीप जले
प्रभुवर जो जला गये बाती
अब सृजन गीत पल-पल गाती–

पूजन को विधिवत थाल सजे
मन्दिर में घंटा शंख बजे
कंठाध्वनियाँ उठतीं झर-झर
जय महावीर जय तीर्थंकर–

पावापुर सर की लहर-लहर
कमलों को अँजलि में भर-भर
मन्दिर सोपानों के नीचे
रख चली कमल आँखें मींचे–

मलयानिल लेकर गंध फूल
हर लहर दोल में झूल-झूल
कहता उपवन में ठहर-ठहर
'जय महावीर जय तीर्थंकर'–

पावापुर धरती का कन कन
बन गया तीर्थ जन का पावन
हिल मिल कर तरु दल पद्म लता
प्रभु की समाधि यह रहे बता–

बह चला भक्त जन का जो दल
नयनों में भर प्रभु छवि केवल
जय-जय से गूंजे भू-अम्बर
जय महावीर जय तीर्थंकर–

□

गीत

बीते ढाई हजार साल
लेकर विद्रोह की मशाल

भ्रष्ट रूढ़िवाद के विरुद्ध
उदित हुए तम-पथ में शुद्ध
वर्ण-भेद बढ़ रहा अपार
मानवता पर पड़ा तुषार

पीड़ा की छाँह से सघन
पीड़ित जन को लिया सँभाल
बीते ढाई हजार साल
लेकर विद्रोह की मशाल

प्यासों के लिए बने नीर
करुणा की खींच दी लकीर
आँचल से पोंछ नयन जल
समता की धार बन प्रबल

चलते जब कोटि चरण साथ
बाँध सके नहीं देश-काल
बीते ढाई हजार साल
लेकर विद्रोह की मशाल–

जग हिताय छोड़ा धन-धाम
हे विरक्त योगी निष्काम
अन्तर में भरे शीत ताप
दीन दुखी के रक्षक आप

ऐसे उगे न हुए अस्त
उन्नत कर दिया धर्म भाल
बीते ढाई हजार साल
लेकर विद्रोह की मशाल–

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर

शुभनाम—वर्द्धमान, महावीर, अतिवीर, सन्मति, वीरप्रभु, वैशालिक, वैदेहिक, निग्गण्ठनात पुत्त,

जाति–क्षत्रिय

गोत्र–काश्यप

वपु:कान्ति–स्वर्ण

वंश–ज्ञातृ वंश

धर्म–अर्हन्त

चिह्न–सिंह

पितृ नाम–सिद्धार्थ

जननी–त्रिशला (प्रियकारिणी)

गर्भावतरण–आषाढ़ सुदी ६, उत्तर हस्ता नक्षत्र, शुक्रवार १७ जून, ५९९ ई. पू.

जन्म कल्याण–चैत्र सुदी १३. उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र, सोमवार, २७ मार्च ५९८ ई. पू.

जन्म स्थान–कुण्डग्राम वैशाली

व्रत–पंच महाव्रत

दीक्षा–ज्ञातृ खण्डवन, उत्तर हस्ता नक्षत्र, मगशिर कृष्ण १०, सोमवार, २९ दिसम्बर ५६९ ई. पू.

तप कल्याण–शाल वृक्ष के नीचे, वैशाख सुदी १०, उत्तर हस्ता नक्षत्र, रविवार, २६ अप्रैल ५५७ ई. पू.

केवल ज्ञान कल्याणक–ऋजुकूला नदी तट

गणधर–गौतमादि एकादश

प्रधान श्रोता–बिम्बसार श्रेणिक

निर्वाण स्थल–मध्यमा पावा नगर

आयुष्य प्रमाण–बहत्तर वर्ष

वैराग्य निमित्त–अनिमित्तिक

निर्वाण तिथि–शक संवत् ६०५ वर्ष पूर्व, स्वाति नक्षत्र, मंगलवार, १५ अक्टूबर ५२७ ई. पू.

निर्वाणोत्सव–हस्तिपाल राजा की उपस्थिति में

आन्विक्षिकी–गणतन्त्र

प्रधान श्रमणा–चन्दना सती

सिद्धान्त–स्याद्वाद (अनेकान्त)

विशद काल (निर्णय)

कुमार काल :	१९ वर्ष	७ माह	१२ दिन	
तप काल :	१२ वर्ष	५ माह	१५ दिन	
देशना काल :	२९ वर्ष	५ माह	२० दिन	
योग निरोध :	–	–	२ दिन	
	७० वर्ष	६ माह	१८ दिन	
गर्भ काल :	–	९ माह	७ दिन	१२ घंटे
	७१ वर्ष	३ माह	२४ दिन	१२ घंटे